इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

# BHDC - 132
# मध्यकालीन हिंदी कविता

*''शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतन्त्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।''*

*– इन्दिरा गाँधी*

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

*"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."*

*– Indira Gandhi*

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

**BHDC 132**
**मध्यकालीन हिंदी कविता**

खंड

# 1

# मध्यकालीन हिंदी कविता


इकाई 1
भक्तिकाव्य का स्वरूप और विकास 7

इकाई 2
रीतिकाव्य का स्वरूप और विकास 37

इकाई 3
कबीर का काव्य 58

इकाई 4
रविदास का काव्य 78

इकाई 5
जायसी का काव्य 95

इकाई 6
मीराबाई का काव्य 115


ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. निर्मला जैन
ए–20 / 17, डी.एल.एफ., सिटी, फेज–1,
गुड़गांव–122002, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
बीडी / 8ए, डी.डी.ए. फ्लैट, मुनिरका
नई दिल्ली–110056

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादम्बरी अपार्टमेंट, सेक्टर–9,
रोहिणी, दिल्ली–110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

**संकाय सदस्य**

प्रो. सत्यकाम (समकुलपति, इग्नू)
प्रो. जवरीमल पारख (सेवानिवृत्त)
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी (पाठ्यक्रम संयोजक)
प्रो. जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव

## पाठ्यक्रम निर्माण समिति

| इकाई लेखक | इकाई सं. |
|---|---|
| डॉ. पूर्णमासी राय<br>लक्ष्मीनारायण शर्मा | 1, 2,<br>8 एवं 9 |
| डॉ. अमिताभ राय, दिल्ली | 3 एवं 5 |
| प्रो. रामबक्ष, नई दिल्ली | 4 |
| डॉ. कल्याण सिंह शेखावत,राजस्थान | 6 |
| डॉ. अनिल कुमार राय, नई दिल्ली | 7 |
| डॉ. प्रभाकर सिंह, वाराणसी | 10, 11 एवं 12 |

**पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन**
**प्रो. स्मिता चतुर्वेदी**
हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

**सचिवालयीय सहयोग**
श्री नवल कुमार
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

**आवरण**
सुश्री अरविन्दर कौर
ए.डी.ए. ग्राफिक्स, नई दिल्ली

## सामग्री निर्माण

श्री के. एन. मोहनन
सहायक कुंलसचिव (प्रकाशन)
सा.नि.एवं वि.प्र, इग्नू, नई दिल्ली

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा.नि.एवं वि.प्र, इग्नू, नई दिल्ली

दिसम्बर, 2019

*© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019*

ISBN : 978-93-89668-62-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

*इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से संबंधित सूचना प्राप्त करने के लिए इसके मैदान गढ़ी, नई दिल्लो –110 068 स्थित कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।*

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर कम्पोजिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, V-166A, भगवती विहार, उत्तम नगर, (नजदीक सैक्टर 2, द्वारका), नई दिल्ली–59

मैसर्सः राज प्रिंटर्स, ए–9, सैक्टर बी–2, ट्रॉनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद (यू.पी.)

# पाठ्यक्रम परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम 'मध्यकालीन हिंदी कविता' का पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम में पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) तथा उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) का अध्ययन कराया गया है। हिंदी साहित्य में भक्तिकाल देश व्यापी भक्ति-आंदोलन की देन है। हिंदी के भक्तिकाल की विशेषताओं को समझने के लिए भक्ति-आंदोलन को समझना जरूरी है। साथ ही इस धारणा से भी मुक्त होना होगा कि मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया के रूप में भक्ति-आंदोलन का प्रसार हुआ, क्योंकि भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात यहाँ तुर्कों-पठानों के आक्रमण से बहुत पहले हो गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भक्ति-आंदोलन का प्रसार उत्तरी भारत से पहले दक्षिण भारत में हुआ और वहाँ मुसलमानों का शासन नहीं था। दक्षिण भारत के भक्ति-आंदोलन की व्यापक शक्ति को लेकर दक्षिण के आचार्यगण उत्तरी भारत में आए और उन्होंने उत्तरी भारत में नवीन लोक-जागरण किया। मूलतः यह भक्ति-आंदोलन पुरोहितवाद, शास्त्रज्ञान के दम्भ, अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह, लोकभाषाओं के उदय तथा तत्कालीन समाज व्यवस्था में जनता का सामंतवाद-विरोधी सांस्कृतिक आंदोलन था। इस आंदोलन ने पहली बार समाज को दिशा दृष्टि देने वाले अपने संत कवि पैदा किए। यहाँ इन संतों, भक्तों, सूफ़ियों तथा कवियों को अलग करके देखना तर्कसंगत न होगा। इसका कारण यह है कि ये सभी भक्त कवि रूढ़िवाद-विरोधी हैं तथा प्रेमतत्व इन सभी का आधार है। निर्गुण ज्ञानमार्गी, निर्गुण प्रेममार्गी, सगुण कृष्णभक्ति धारा और सगुण रामभक्ति धारा के सभी हिंदू-मुसलमान कवियों ने एक साथ मिलकर अंधपरंपरावाद, धार्मिक कट्टरता तथा सामंतवाद का विरोध किया। भक्तिकाव्य को इस लोकजागरणवादी धारा से अलग करके देखने पर उसका जनता में व्यापक प्रसार उसकी गरिमा, उसका ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्व आंखों से ओझल हो जाता है। प्रश्न उठता है कि संत कौन थे ? संत और भक्त एक ही थे- या अलग? निर्गुण-सगुण धारा का उद्देश्य क्या था ? भक्तों की सामाजिक भूमिका लोकहितकारी थी या जन विरोधी ? इस तरह के अनेक प्रश्न भक्तिकाव्य और भक्ति-आंदोलन से जुड़े संत कवियों पर एक साथ उठ खड़े होते हैं। इन प्रश्नों के संदर्भ इस पाठ्यक्रम में विचार किया गया है तथा उन कवियों के साहित्य की विशिष्टताओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। जनता की समस्याओं-चुनौतियों को जनता के सामने जनता की भाषा में रचना-शक्ति के साथ रख देना इन भक्त कवियों को इष्ट रहा है।

भक्तिकाल के बाद हिंदी में रीतिकाल का आगमन हुआ। भक्ति काव्य के नवजागरणवादी स्वर से इतर रीतिकालीन साहित्य का सृजन हुआ। हिंदी रीति काव्य हिंदी भाषी प्रदेश के सामंत वर्ग की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा के स्रोतों से उपजा सृजन है। बहुत पहले से यह काव्य परंपरा संस्कृत साहित्य में मिलती है। यही कारण है कि इस काल के कवियों और कवि आचार्यो ने संस्कृत से अपने सिद्धांत मात्र ही नहीं लिए अपितु उनके कथ्य और रूप शिल्प आदि भी संस्कृत की देन हैं। ध्यान देने की बात यह है कि जिस समाज में यह साहित्य सृजित हुआ उसका नेतृत्व सामंतों के हाथ में था। उन्हीं के राज-दरबारों में अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए यह साहित्य निर्मित किया गया। इन सामंतों में वे जमींदार और भू-स्वामी थे, जो किसान के श्रम पर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीते थे। स्वयं को ईश्वर का अवतार कहकर धर्म के रक्षा के नाम पर सामंती व्यवस्था को दृढ़ किए हुए थे। स्पष्ट है कि रीतिकाव्य परंपरा ऐसी ही विशेष स्थिति परिस्थिति की देन है।

रीतिकाव्य में विषय वस्तु सीमित थी परंतु रचना कौशल का समृद्ध विकास हुआ। इस कला कौशल की विशेषता यह है कि इस काल के कवियों ने शास्त्र पहले लिखा और कविता बाद में। इस काल में चित्र की सजीवता से ज्यादा उपमानों की विचित्रता पर ध्यान

केन्द्रित किया गया। रीतिकाल में तीन काव्य धाराएँ दृष्टिगत होती हैं : रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त। इस काल की अधिकतर रचना मुक्तक के रूप में हुई। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की दृष्टि शृंगार, रस और नायिका भेद की रही है। इन दोनों धाराओं के कवि शास्त्र की चर्चा में रमे हैं। परन्तु रीतिमुक्त कवियों ने कविता को शास्त्र बंधनों से मुक्त किया है। ह्रदय की स्वच्छंद भावानाओं का प्रकाशन इन्हें लोक जागरण की परंपरा की ओर ले जाता है।

इस पाठ्यक्रम में दो खंड है जिनमें 12 इकाइयाँ हैं। इन इकाइयों में आप भक्ति काव्य और रीतिकाव्य के स्वरूप एवं विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे। साथ ही मध्यकाल के प्रमुख कवि कबीर, रविदास, जायसी, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, रहीम, बिहारी, घनानंद तथा भूशण के साहित्य की विशेषताओं के संदर्भ में गहराई से अध्ययन करेंगे। कवियों से संबद्ध इकाइयों में स्थान-स्थान कविता के अंश दिए गए हैं और इकाई के अंत में काव्य वाचन के अंतर्गत कुछ कविता के अंशों की व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। इनका अध्ययन आपको उस कवि को गहनता से समझने में सहायक होगा। दिए गए व्याख्यांशों से सत्रांत परीक्षा में प्रश्न में भी पूछे जा सकते हैं। अतः इनका गंभीरता से अध्ययन करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# खंड 1 का परिचय

'मध्यकालीन हिंदी कविता' के अंतर्गत यह खंड पूर्व मध्यकालीन साहित्य के कुछ प्रमुख कवियों कबीर, रविदास, जायसी, तथा मीराबाई पर आधारित है। कबीर, रविदास तथा जायसी निर्गुण काव्यधारा के कवि हैं और मीराबाई सगुण काव्यधारा की। मध्यकालीन कवि व्यापक लोक मंगल के संस्थापक और रक्षक हैं। कर्मकांड, धर्मशास्त्र, पुराणवाद, कट्टर आचार–विचार, अंध विश्वास और आडंबर की रीति नीति के विरुद्ध मूलतः ज्ञान और प्रेम की शक्ति से मानव मुक्ति के पक्षधर हैं। ये सभी कवि जनभाषाओं में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। जनता की समस्याओं और चुनौतियों को जनता के सामने, जनता की भाषा में अभिव्यक्ति देना इन भक्त कवियों को इष्ट रहा है।

इस खंड में प्रथम दो इकाइयाँ मध्यकाल के दो प्रमुख काल भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्यों के स्वरूप और विकास पर आधारित हैं। इकाई 1 'भक्तिकाव्य का स्वरूप और विकास' है। इस इकाई में भक्ति का अर्थ, स्वरूप, भक्तिकाव्य की विशेषताएँ तथा भक्ति काव्य की प्रमुख चार शाखाओं पर विचार–विमर्श किया गया है। इकाई 2 'रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास' है। इस इकाई में रीति का अर्थ एवं परिभाषा बताते हुए रीतिकाव्य की विशेषताओं तथा मूल प्रवृत्तियों की जानकारी दी गई है। इकाई 3 'कबीर का काव्य' है। इस इकाई में कबीर के काव्य की विशेषताएँ बताई गई हैं तथा उनकी भक्ति एवं दर्शन पर विचार किया गया है। इकाई 4 'रविदास का काव्य' है। इस इकाई में रविदास की कविता की विशेषताओं एवं उनकी भक्ति के विशिष्ट पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इकाई 5 'जायसी का काव्य' है। इस इकाई में सूफी कवि जायसी के साहित्य के विविध पक्षों पर विचार किया गया है। इकाई 6 'मीरा का काव्य' है। इस इकाई में कृष्ण भक्त कवि मीरा की रचनाओं और उनके काव्य सौंदर्य का विवेचन किया गया है।

कवियों पर आधारित इकाइयों के अंत में उनकी कविता के कुछ अंश भी अध्ययन हेतु दिए गए हैं। कुछ अंशों की व्याख्या भी आपकी जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई है। इकाइयों में बीच–बीच में बोध प्रश्न दिए गए हैं। उनका उत्तर स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए। ये बोध प्रश्न इकाई को समग्रता से समझने में आपके सहायक होंगे। जाँचने के लिए इकाई के अंत में बोध प्रश्नों के उत्तर भी दिए गए हैं। इस प्रकार यह खंड संपन्न होता है।

**शुभकामनाओं के साथ!**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

# इकाई 1 भक्तिकाव्य का स्वरूप और विकास

## इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भक्ति काव्य की पूर्व परंपरा

1.3 भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि

1.4 भक्ति का स्वरूप

1.4.1 भक्ति का अर्थ

1.4.2 भक्ति का स्वरूप

1.5 भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.5.1 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

1.5.2 निर्गुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

1.5.3 सगुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

1.6 भक्ति काव्य का शिल्प-विधान

1.6.1 काव्य भाषा

1.6.2 काव्य रूप

1.6.3 छंद विधान

1.6.4 अलंकार

1.6.5 काव्य रस

1.7 भक्ति काव्य का विकास

1.7.1 ज्ञानाश्रयी शाखा

1.7.2 प्रेममार्गी (सूफी) शाखा

1.7.3 कृष्ण भक्ति शाखा

1.7.4 राम भक्ति शाखा

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

## 1.0 उद्देश्य

यह 'हिंदी काव्य' के दूसरे खंड की पहली इकाई है। इस इकाई में आप भक्ति काव्य के स्वरूप और हिंदी में उसके विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भक्ति शब्द का अर्थ बता सकेंगे;
- हिंदी के भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- भक्ति काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- भक्ति काव्य की भाषा और शिल्प पक्ष की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे; तथा
- भक्ति काव्य के विकास का वर्णन कर सकेंगे।

## 1.1 प्रस्तावना

इस खंड की यह पहली इकाई है। इस इकाई में आपको हिंदी भक्ति काव्य के स्वरूप और विकास के संबंध में जानकारी दी जाएगी। बाद की इकाइयों में आप भक्ति काव्य धारा से जुड़े कुछ प्रतिनिधि कवियों के काव्य का अध्ययन भी करेंगे।

भक्ति काल हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इसी काल के दौरान कबीर, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, रहीम जैसे महान कवि हुए जिनकी रचनाओं ने लाखों नर-नारियों को प्रभावित और प्रेरित किया। इस युग के उक्त रचनाकारों की काव्य रचनाओं का अध्ययन करने से पहले यह जरूरी है कि आप इस युग की विशेषताओं को ठीक से समझें। भक्ति काव्य का लेखन क्यों आरंभ हुआ ? भक्ति क्या है? उस युग की परिस्थितियाँ क्या थीं? भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन-कौन-सी हैं? इन प्रवृत्तियों की कौन सी प्रमुख विशेषताएँ हैं? भक्ति काव्य का विकास कैसे हुआ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानना आपके लिए जरूरी है। भक्ति काव्य के स्वरूप और विकास का पर्याप्त परिचय प्राप्त कर लेने से आपको इस खंड में सम्मिलित कवियों को समझने में मदद मिलेगी।

भक्ति काव्य पर विचार करें तो हम इस बात को आसानी से पहचान सकते हैं कि सामान्यतः सभी भक्त कवियों का काव्य भक्ति भावना से प्रेरित है। लेकिन इन कवियों के काव्य की अपनी अलग-अलग पहचान भी है। उदाहरण के लिए, कबीर और तुलसी या जायसी और सूर के काव्य में काफी भिन्नताएँ हैं। ये भिन्नताएँ कौन-कौन-सी हैं और इनका आधार क्या है, इन पर हम इस इकाई में विचार करेंगे। इसी संदर्भ में भक्ति के भेदों और उनसे संबंधित काव्य रूपों, निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, कृष्ण भक्ति, राम भक्ति, सूफी मत, प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य आदि को लेकर कई प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होंगे। हम इन पर विचार-विमर्श करेंगे ताकि आगे की इकाइयों को समझने में सहायता मिले।

## 1.2 भक्ति काव्य की पूर्व परंपरा

धर्म के क्षेत्र में ईश्वर की प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए हैं : ज्ञान, भक्ति और कर्म। ज्ञान का संबंध ईश्वर संबंधी तत्वचिंतन से है। जबकि भक्ति का संबंध ईश्वर के प्रति निष्ठा और प्रेम द्वारा उसकी प्राप्ति से है। कर्म का संबंध उन आचार-विचारों से है, जिनका पालन करके व्यक्ति अपने को ईश्वर की प्राप्ति के योग्य बनाता है। एक अन्य मार्ग योग है जिनमें कठोर साधना और तप पर बल दिया गया है।

विद्वानों ने भक्ति का उद्‌गम वेदों से माना है। वेदों में ऐसे बहुत से सूक्त और मंत्र हैं जिनमें कष्टों और दुखों से मुक्त करने की प्रार्थना ईश्वर से की गई है तथा यह कामना की गई है कि ईश्वर बल, ओज और सहनशक्ति प्रदान करें। ईश्वर या विभिन्न देवताओं के प्रति आराधक की इस तरह की प्रार्थनाओं में हम भक्ति का मूल तत्व पा सकते हैं। भक्ति के इस तत्व को हम उपनिषदों में भी पाते हैं, लेकिन इसका वास्तविक विकास 'भगवद्‌गीता' में मिलता है जो प्रख्यात महाकाव्य 'महाभारत' का एक अंग है। 'भगवद्‌गीता' में ईश्वर के प्रति गहरी निष्ठा को जीवन का लक्ष्य बताया गया है। गीता में ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए हैं- कर्म, ज्ञान और भक्ति। गीता के अनुसार ये सभी मार्ग समान रूप से

फलदायक हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी गीता का आदर्श यही है कि जो ईश्वर को जिस रूप में भजता है, ईश्वर उसे उसी रूप में प्राप्त होते हैं। भक्ति के स्वरूप की विस्तृत चर्चा बाद में कई पुराण ग्रंथों में भी मिलती है जिनमें 'श्रीमद्भागवत पुराण' का विशेष महत्व है।

**दक्षिण भारत में भक्ति साहित्य** : भक्ति साहित्य का उदय सबसे पहले दक्षिण में हुआ। दक्षिण में भक्ति का प्रभाव ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी से दिखाई देने लगता है। इससे पूर्व वहाँ बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव था। किंतु बाद में वैष्णव और शैव धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा। इन दोनों के बढ़ते प्रभाव ने भक्ति के प्रसार में योग दिया। तमिल साहित्य में अडियारों तथा आलवारों की परंपराओं का संबंध भक्ति साहित्य से है। आलवार संतों की परंपरा ईसा से 100-200 वर्ष पूर्व से आरम्भ होकर बारहवीं शताब्दी तक दिखाई देती हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, 'ये भक्त कवि अधिकतर निम्न वर्ग के व्यक्ति थे और उनमें से अधिकाश अशिक्षित भी थे, किंतु इन्होंने ही भक्ति को सर्वप्रथम सामान्य जन-जीवन के भी स्तर तक ला दिया। भक्ति के द्वारा अनुप्राणित हो इन्होंने अपने हृदय के सच्चे एवं भावपूर्ण उद्‌गार प्रकट किए और उनके कारण ये अपने परवर्ती कवियों के लिए पथ-प्रदर्शक भी बन गए। अडियारों के इष्ट देव शिव थे और उनकी भक्ति-साधना में विशेष अंतर नहीं था। उनका लक्ष्य एक समान था, उनके भावों में अपूर्व सादृश्य था।' (भारतीय साहित्य में भक्ति-धारा पृ. 10) इन भक्त कवियों में महिलाएँ भी शामिल थीं।

भक्ति साहित्य केवल तमिल भाषा तक ही सीमित नहीं था बल्कि मलयालम, तेलुगु में भी इसका प्रणयन हुआ। कन्नड़ भाषा में भी भक्ति साहित्य की रचना हुई। दक्षिण में विद्यमान भक्ति की परंपरा ही 13वीं-14वीं सदी में अखिल भारतीय आंदोलन के रूप में विकसित हुई।

**भक्ति साहित्य पर अन्य प्रभाव** : भक्ति साहत्य की परंपरा में बौद्ध, सिद्ध और नाथ साहित्य का भी योगदान रहा है, विशेष रूप से भक्ति की निर्गुणवादी परंपरा पर सिद्धों और नाथों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। धर्म की ब्राह्मणवादी परंपरा से अलग बौद्ध साहित्य में धर्म की लोकवादी परंपरा दिखाई देती है। इसमें धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकांडों का विरोध किया गया है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को भी अस्वीकार किया गया है। नाथों और सिद्धों ने अपने साहित्य में इस परंपरा को आगे बढ़ाया और बाहय धार्मिक आचारों की तुलना में ईश्वर के प्रति हृदयगत निष्ठा को अधिक महत्व दिया।

13वीं 14वीं सदी के इस भक्ति आंदोलन पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव भी था। इस्लाम की एक शाखा सूफी मत में निहित प्रेम तत्व और उदारतावाद ने भक्ति आंदोलन को और अधिक व्यापक तथा लोकप्रिय बनाया। कई सूफी कवियों ने प्रबंध काव्यों की रचना कर इस युग के काव्य को और अधिक समृद्ध किया। इनके प्रबंध काव्यों में फारसी और भारतीय परंपरा का सुंदर संयोग दिखाई देता है।

## 1.3 भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भक्तिकाल का समय वि.सं. 1375 (सन् 1318) से वि.सं. 1700 (सन् 1643) तक माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी भक्ति काव्य का आरम्भ विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी से मानते हैं लेकिन वे भी इसका विस्तार 1700 तक ही स्वीकार करते हैं। शुक्लजी के काल-विभाजन को ही स्वीकार कर लिया गया है इसलिए हम भी भक्तिकाल का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सत्रहवीं शताब्दी तक मान सकते हैं।

प्रश्न यह है कि ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनके कारण भक्ति आंदोलन का उद्‌भव हुआ। इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि मुस्लिम शासकों का राज्य स्थापित होने के कारण हिंदू जनता में जो हताशा फैल गई थी, उसी के कारण भक्ति साहित्य का उदय हुआ। उन्हीं के शब्दों में, 'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भाक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?' (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 43)

हम पहले बता चुके हैं कि भक्ति और भक्ति साहित्य दोनों की भारत में लंबी परंपरा रही है। अगर हम राजनीतिक स्थिति से स्वतंत्र सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन करें तो भक्ति साहित्य के उदय के कारण को ज्यादा बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

दक्षिण में उत्पन्न हुए शंकराचार्य (आठवीं सदी) के अद्वैतवाद का देश व्यापी असर पड़ा था। अद्वैतवाद के अनुसार ईश्वर की सत्ता ही सत्य है, यह जगत् मिथ्या है। माया के वशीभूत होने के कारण ही हम जगत को सत्य समझ लेते हैं शंकराचार्य के मत ने ईश्वरीय भक्ति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ आदि आचार्यों ने ईश्वर, जीव और जगत के पारस्परिक संबंधों की नए ढंग से व्याख्या की और भक्ति के महत्व की पुनः स्थापना की। शंकराचार्य का समय आठवीं शताब्दी माना जाता है और रामानुज का समय ग्यारहवीं शताब्दी। रामानुज ने भक्ति को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आलवार संतों की लंबी परंपरा तो पहले से ही विद्यमान थी, इसलिए यह कहना बहुत उचित नहीं लगता कि जनता राजनीतिक पराजय से हताश होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हुई थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का स्पष्ट मत है कि 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ.1) भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय आंदोलन था। मध्य भारत में कबीर, नानक, जायसी, रैदास, सूरदास, तुलसीदास, दादूदयाल तो पश्चिम में नामदेव, नरसी, मीरा, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, चंडीदास और दक्षिण में आलवार आदि नायनार संत कवि हुए। इस भक्ति आंदोलन में समाज के निम्न समझे जाने वाले तबके भी शामिल थे। संपूर्ण भक्ति साहित्य में करुणा और अनुरक्ति का स्वर तो है, लेकिन अवसाद और पराजय का स्वर कहीं नहीं है। दूसरे इस भक्ति आंदोलन में हिंदू तथा मुस्लिम दोनों ही शामिल थे और नामदेव, नानक, कबीर, रैदास, चैतन्य, जायसी आदि ने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया। इसलिए यह कहना बहुत उचित नहीं लगता कि भक्ति साहित्य मुस्लिम शासकों के अत्याचारों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ।

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि भक्ति साहित्य में जनता के सांसारिक कष्टों के तत्व नहीं हैं। गरीब हिंदू और मुस्लिम जनता राजनीतिक उत्पीड़न, धार्मिक कट्‌टरता, सामाजिक भेदभाव और रूढ़िबद्धता से परेशान थी। भक्ति आंदोलन उनके इन्हीं कष्टों और दुःखों को अभिव्यक्ति दे रहा था। 12वीं-13वीं सदी के राजनीतिक-आर्थिक परिवर्तनों ने निम्न समझी जाने वाली कारीगर जातियों की स्थिति में सुधार को संभव बनाया। इससे इन जातियों में आत्मसम्मान का भाव उत्पन्न हुआ।

इन्हीं परिस्थितियों में भक्ति के प्रचार ने इन वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया क्योंकि भक्ति के क्षेत्र में हृदयगत निष्ठा को अधिक प्रधानता दी गई थी। धार्मिक कर्मकांडों और सामाजिक रूढ़ियों को भक्ति के मार्ग की बाधा माना गया था। भक्ति वस्तुतः धार्मिक उपासना के क्षेत्र में समानता और उदारता को स्वीकारती है और इसी विशेषता ने भक्ति को लोकप्रिय बनाया और कवियों ने इसे अपने काव्य का विषय बनाया।

## 1.4 भक्ति का स्वरूप

भक्ति साहित्य ईश्वर के प्रति भक्त की निष्ठा और भावना का ही प्रतिफलन नहीं है, फिर भी भक्ति वह केन्द्रीय तत्व अवश्य है जो उनके काव्य में अंतः धारा की तरह सर्वत्र प्रवाहित दिखाई देता है। भक्त कवि पहले भक्त थे बाद में कवि। उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं की थी बल्कि सभी भक्त कवियों ने ईश्वर के प्रति अपने हृदय के उद्‌गारों को ही वाणी दी थी, इसलिए उनके भाब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग स्पष्ट परिलक्षित होता है। कबीर, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी आदि सभी भक्त और कवि दोनों थे, लेकिन उनके काव्य में भक्ति के अतिरिक्त अन्य बातों में एकरूपता नहीं है। भक्ति के स्वरूप में भी इनके यहाँ कुछ न कुछ भेद अवश्य है जैसे सूरदास की भक्ति सख्य भाव की है, तुलसी की हास्य भाव की और कबीर तथा जायसी की दाम्पत्य भाव की। भक्ति के ऊपरी भेदों की व्याख्या हम यथावसर करेंगे, इससे पहले हम भक्ति के अर्थ को समझने का प्रयास करें।

### 1.4.1 भक्ति का अर्थ

'भक्ति' शब्द की निष्पति 'भज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है- सेवा कराना। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ 'सेवा' शब्द तक ही सीमित नहीं है। भक्ति में ईश्वर का भजन, पूजा, प्रीति और अर्पण सभी शामिल हैं। दूसरे शब्दों में, भक्ति ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम की अभिव्यक्ति है। 'भक्ति' की परिभाषा नारद ने अपने 'भक्ति सूत्र' में की है उनके अनुसार, 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।' अर्थात् भक्ति भगवान के प्रति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है। भक्ति में ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति (प्रेम) पर विशेष बल दिया गया है। भक्ति का यह केंद्रीय भाव है और ईश्वर के प्रति इसी उत्कट प्रेम को हम सभी भक्त कवियों में समान रूप से देख सकते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।' (चिंतामणि, भाग 1 पृ. 56) शुक्लजी की इस परिभाषा में प्रेम के साथ श्रद्धा का संयोग किया गया है। श्रद्धा ईश्वर के प्रति पूज्य भाव की अभिव्यक्ति है। भक्त ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम ही महसूस नहीं करता वरन् उसे अपना उद्धारक, पालनकर्त्ता और मार्गदर्शक भी मानता है।

### 1.4.2 भक्ति का स्वरूप

भक्ति को ईश्वर की प्राप्ति का सबसे सुगम साधन माना जाता है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख है :

1. श्रवण (ईश्वर के रूप-गुण-लीला को सुनना)
2. कीर्तन (ईश्वर के नाम-रूप-लीला आदि का गुणगान करना)
3. स्मरण (ईश्वर के नाम-रूप आदि को याद करना)
4. पादसेवन (ईश्वर के चरणें की सेवा करना)

5. अर्चन (ईश्वर की पूजा करना)

6. वंदन (ईश्वर की वंदना करना)

7. दास्य (ईश्वर को अपना स्वामी मानकर दास भाव से उनकी सेवा-अर्चना करना)

8. सख्य (ईश्वर को अपना सखा, बंधु और मित्र मानना)

9. आत्मनिवेदन (ईश्वर के चरणों में सर्वस्व अर्पित करना)

भागवत पुराण में भक्ति के दो भेदों की चर्चा की गई है। जब भक्त किसी इच्छा से प्रेरित होकर ईश्वर की पूजा-अर्चना करता है तो ऐसी भक्ति 'सगुणा' या 'गौणी' भक्ति कहलाती है।

जब भक्त मोक्ष की कामना भी त्याग देता है तथा ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य रह जाता है तो ऐसी भक्ति 'निर्गुण' या 'अहैतुकी' भक्ति कहलाती है।

भक्ति काव्य में हम अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक देखते हैं। भक्ति के जिन नौ साधनों की चर्चा ऊपर की गई है, उसे देखने से स्पष्ट है कि इसमें मुख्य बल ईश्वर के स्मरण और पूजा को दिया गया है। ईश्वर की पूजा की कोई बाह्य विधि नहीं बताई गई है तथा जोर ईश्वर के नाम-रूप-गुण और लीला के स्मरण और कीर्तन पर है। भक्ति काव्य में भी इसीलिए नाम-स्मरण और ईश्वरीय लीला के गुणगान को इतना अधिक महत्व दिया गया है।

### बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों में लिखिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1. जब भक्त हर तरह की कामना से रहित होकर ईश्वर की भक्ति करता है तो उस भक्ति को कहते हैं :

   क) सगुणा भक्ति

   ख) सात्विक भक्ति

   ग) अहैतुकी भक्ति

   घ) दास्य भक्ति ( )

2. ईश्वर प्राप्ति के निम्नलिखित मार्गों का सही नाम बताइए।

   क) कठोर तप और साधना द्वारा।

   ख) ईश्वर संबंधी तत्व चिंतन द्वारा।

   ग) विधि -निशेधों के पालन द्वारा।

   घ) ईश्वर की प्रति उत्कट प्रेम द्वारा। ( )

3. भक्ति काव्य के संबंध में आचार्य शुक्ल के मत को अपने शब्दों में लिखिए?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

4. भक्ति साहित्य का सबसे पहले उद्‌भव कहाँ हुआ और उसकी क्या विशिष्टता थी ? तीन-चार पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 1.5 भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन पर विचार करते हुए लिखा था कि इसका आगमन 'बिजली की चमक के समान अचानक' हुआ था। लेकिन हम बता चुके हैं कि भक्ति आंदोलन का आरंभ कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। 14वीं-15वीं सदी में भक्ति आंदोलन के जन्म से पहले ही दक्षिण में भक्ति का व्यापक प्रसार हो चुका था। यह सही है कि भक्ति आंदोलन का उदय तत्कालीन परिस्थितियों की देन था, लेकिन इस पर विभिन्न धार्मिक मतों के प्रभाव से भी इंकार नहीं किया जा सकता। भक्ति आंदोलन 14वीं से 17वीं सदी के बीच विद्यमान रहा है। इसमें कई धाराएँ और उप-धाराएँ रही हैं। हम इनका अध्ययन आगे करेंगे। इससे पहले हमें भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए ताकि हम इस बात को अच्छी तरह समझ सकें कि भक्ति काव्य की सामान्य आधारभूमि क्या है।

### 1.5.1 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए हमने बताया था कि ईश्वर की उपासना के क्षेत्र में भक्ति का क्या महत्व है। भक्ति आंदोलन पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, मोक्ष नहीं।
2. भगवान के प्रति प्रेम कौलीन्य से बड़ी चीज है।
3. भक्त भगवान से भी बड़ा है।
4. भक्ति के बिना शास्त्र-ज्ञान और पांडित्य व्यर्थ है।
5. नाम रूप से भी बढ़कर है।

अगर भक्ति की इन विशेषताओं पर विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि भक्ति के मार्ग में जाति-पाँति, शास्त्र ज्ञान, आचार-विचार आदि का कोई महत्व नहीं था। ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम और उसके नाम का स्मरण यही सबसे महत्वपूर्ण तत्व थे, जो भक्ति काव्य के आधार बने। सगुण-निर्गुण तथा राम और कृष्ण का लीला गान आदि बातें इसी के बाद आती हैं। उपर्युक्त बातों के आधार पर हम भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ बता सकते हैं, जो संपूर्ण भक्ति काव्य पर लागू की जा सकती हैं।

1. **ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम** : ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम का अनुभव करना ही भक्त की पहचान है। हम सभी भक्त कवियों में इस विशेषता को समान रूप से पा सकते हैं। चाहे वे निर्गुण को मानते हों या सगुण को, चाहे वे राम की उपासना करते हों या कृष्ण की। अपने आराध्य के प्रति गहरी अनुरक्ति और उसको पाने की लालसा, उनमें समान रूप से मिलती हैं। कबीर कहते हैं :

   आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
   जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि।।

   इसी तरह मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में प्रेम तत्व को ही प्रधानता दी है। मीरा तो अपने को प्रेम दिवानी कहती ही हैं। सूर और तुलसी का संपूर्ण साहित्य ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम का ही परिणाम है। तुलसी कहते हैं :

   एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
   एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

2. **समानता का भाव** : भक्ति के मार्ग में सांसारिक भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। इस बात को सभी भक्त कवियों ने स्वीकार किया है। तुलसीदास जो वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करते हैं, भक्ति के क्षेत्र में किसी तरह के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते इसीलिए उनके राम शबरी के झूठे बेर खा लेते हैं और निषादराज को अपने भाई भरत के समान प्रिय बताते हैं। सूरदास की गोपियाँ भी प्रेम के मार्ग में विधि-निषेधों को स्वीकार नहीं करतीं? कबीर आदि निर्गुण कवियों ने तो जाति-पाँति का विरोध दृढ़तापूर्वक किया है।

3. **गुरु महिमा** : ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम भक्ति की केन्द्रीय विशेषता है लेकिन भक्त कवियों ने ईश्वर से भी बड़ा उस गुरु को माना है जिसने ईश्वर के साक्षात् रूप से उनका परिचय कराया है। इसीलिए कबीर गुरु को गोविंद से बड़ा मानते हैं। वे कहते हैं :

   गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागों पाँय।
   बलिहारी वा गुरु की जिन गोविंद दिया दिखाय।।

जायसी के 'पद्मावत' में भी सुआ राजा रत्नसेन को पद्मावती के रूप में सौंदर्य से परिचित कराता है। रत्नसेन आत्मा, पद्मावती परमात्मा और सुआ गुरु का प्रतीक है। तुलसीदास ने 'मानस' के आरंभ में ही गुरु की वंदना करते हुए कहा है : बंदी गुरु पद कंज, पा सिंधु नर रूप हरि।'। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रायः सभी भक्त कवि गुरु के महत्व को स्वीकार करते हैं।

4. **शास्त्र-ज्ञान की अनावश्यकता** : भक्त कवियों ने शास्त्र ज्ञान और पांडित्य को भक्ति के लिए आवश्यक नहीं माना है बल्कि कभी-कभी तो इन्हें भक्ति के मार्ग की बाधा ही स्वीकार किया है। कबीर इसीलिए कहते हैं कि 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई।' सूरदास की गोपियाँ उद्धव के शास्त्र-ज्ञान का मजाक

उड़ाती हैं ''आयो घोष बड़ो व्योपारी/लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आय उतारी।'' तुलसीदास ने भी बार-बार इस बात को दोहराया है कि शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा ईश्वर की पा अधिक महत्वपूर्ण है। उसी की कृपा से अज्ञानी और पापी भी भवसागर पार हो जाते हैं।

5. **नाम-महिमा** : भक्ति के जिन नौ साधनों का ऊपर वर्णन किया गया है उनमें स्मरण कीर्तन और श्रवण का संबंध नाम-महिमा से ही है। भक्त कवियों ने राम के नाम को राम से भी बढ़कर माना है। कबीर कहते हैं 'राम नाँव ततसार है'। वे यह भी कहते हैं कि 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल' इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' के कई पदों में ऐसे भक्तों का बार-बार उदाहरण दिया है जिन्होंने नाम स्मरण के बल पर प्रभु की कृपा प्राप्त की। 'रामचरित मानस' में उन्होंने कलिकाल में कल्याण का सबसे बड़ा साधन राम से भी बढ़कर उनके नाम को माना है।

6. **अहंकार का त्याग** : भक्त कवियों में यह विशेषता भी समान रूप से पाई जाती है। कबीरदास इसीलिए कहते हैं कि मैं तो राम का कुत्ता हूँ और मोती मेरा नाम है। मेरे गले में राम नाम का पट्टा बंधा है, वह जिधर खींचता है, मैं उधर ही जाता हूँ। सूरदास के विनय संबंधी पदों में भी हम ऐसा ही समर्पण और दैन्य भाव पाते हैं। तुलसी ने तो बार-बार कहा है कि

   राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ?
   राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ?

7. **लोक जीवन से जुड़ाव** : भक्त कवि किसी राजा या बादशह के दरबारी कवि नहीं थे। इनमें से कई तो कोई न कोई व्यवसाय करते थे। कबीर पेशे से जुलाहा थे, रैदास चर्मकार। तुलसीदास कथावाचक थे। तुलसीदास ने तो स्पष्ट रूप से लिखा था कि जो कवि प्राकृत जनों राजा-महाराजा का गुणगान करता है उसकी कविता पर सरस्वती अपना सिर धुनकर पछताती है। वस्तुतः भक्त कवियों ने राम को ही अपना राजा समझा और सामान्य जनता के बीच ही अपनी कविता ले गए। इस तरह उनकी कविता में लोक जीवन का समावेश हुआ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भक्त कवियों में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो सभी में समान रूप से मिलती हैं। भक्ति का मार्ग ईश्वर की आराधना का सरल, सहज और सर्वसुलभ मार्ग था। इस मार्ग में छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था।

यहाँ शास्त्रीय ज्ञान और कठोर साधना की आवश्यकता नहीं थी केवल प्रभु के प्रति गहरा प्रेम और आत्मसमर्पण ही पर्याप्त था। इसलिए इस काव्य को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई। लेकिन इस काव्य में कई धाराएँ अंतर्निहित थीं। भक्ति काव्य की अब तक बताई गई सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त धाराओं की अपनी विशेषताएँ थीं, जिनके कारण उनकी अपनी अलग पहचान बनी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्त कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। एक हैं निर्गुण भक्त कवि और दूसरे हैं सगुण भक्त कवि। इसी आधार पर उन्होंने भक्ति काव्य को भी निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य नामक भेदों में विभाजित किया। कबीर, जायसी, रैदास, नानक, दादूदयाल आदि को निर्गुण काव्य धारा में और सूरदास, नंददास, तुलसीदास आदि को सगुण काव्य धारा में सम्मिलित किया है। निर्गुण काव्य धारा और सगुण काव्य धारा में मूलभूत अंतर यह है कि निर्गुण कवि ईश्वर को निर्गुण (यानी सांसारिक गुणों से रहित या उनसे ऊपर), निराकार (रूप और आकार से रहित अर्थात् वह कोई रूप धारण नहीं करता) मानते हैं जबकि सगुण कवि ईश्वर को सगुण (अर्थात् सभी गुणों से युक्त परंतु उनसे परे भी), साकार (अर्थात् ईश्वर कोई भी रूप

धारण करने में सक्षम और इस नाम रूपतामक जगत में रूप धारण करके अवतरित होता है)। ईश्वर की परिकल्पना का यह अंतर मामूली बात नहीं है। इसी कारण इन दोनों के काव्य की विषय वस्तु में अंतर आया है और जीवन और जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में भी अंतर दिखाई देता है। आगे के पृष्ठों में हम इन दोनों प्रवृत्तियों का किंचित् विस्तार से उल्लेख करेंगे।

### 1.5.2 निर्गुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ :

**निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास** : ईश्वर को निर्गुण निराकार मानना निर्गुण भक्ति काव्य की आधारभूत विशेषता है। निर्गुणपंथी अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। उनका दृढ़ मत है कि ईश्वर निर्गुण और निराकार है। वह समस्त सृष्टि में व्याप्त है, लेकिन वह मनुष्य या अन्य प्राणी का रूप धारण नहीं करता। ईश्वर निर्गुण निरकार है, इसलिए उसकी मूर्ति बनाकर पूजा करना गलत है। समस्त सृष्टि उसी की रचना है इसलिए भी उसकी मूर्ति बनाना या मंदिर बनाना व्यर्थ है।

**लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति** : निर्गुण पंथी भक्त कवियों ने ईश्वर को निर्गुण निराकार तो माना, किंतु उसकी उपासना का भी एक मार्ग ढूँढ लिया। उन्होंने भक्ति की उपासना का मार्ग योग और गुह्य साधना-पद्धति में खोजा था। नाथ और सिद्ध इसी परंपरा में आते हैं। साधना का यह मार्ग सामान्य जनता को आकृष्ट नहीं कर सका। कबीर आदि संतों ने ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए लौकिक संबंधों को आधार बनाया। कबीर ने ईश्वर को अपना 'भरतार' और स्वयं को उसकी 'दुलहिन' माना। इसी प्रकार सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्ति दी।

**धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों का विरोध** : निर्गुणपंथी केवल ईश्वर प्रेम में लीन रहने वाले भक्त नहीं थे। उन्हें ईश्वर की बनाई इस सृष्टि से भी उतना ही प्रेम था। इसीलिए उन्होंने इसमें व्याप्त बुराइयों और अनाचारों का विरोध किया। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकांडों को माया कहा। उनके अनुसार यह विश्वास करना कि काशी में मरने से स्वर्ग मिलेगा, या गंगा में नहाने से पुण्य होता है, केवल मन का भ्रम है। ईश्वर और जीव तो जल और बर्फ की तरह है, दोनों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

> पांणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
> जे कुछ था सोई भया, अब कछू कहया न जाइ।।

**जाति प्रथा का विरोध एवं हिंदू-मुस्लिम एकता का समर्थन** : जीव और ईश्वर की एकता के कारण ही निर्गुण पंथी जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद में विश्वास नहीं करते थे। कबीर और अन्य संत कवियों ने बार-बार इस बात को दोहराया है कि ब्राह्मण और शूद्र (कबीर के युगीन संदर्भ में) एक ही ईश्वर की संतान है और उनमें भेद करना गलत है। 'एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा'। निर्गुण पंथी जाति के भेद को तो अस्वीकार करते ही थे, हिंदू और मुस्लिम के बीच भी कोई फर्क नहीं करते थे। कबीर, नानक आदि ने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष रूप से बल दिया। कबीर ने हिंदू और इस्लाम दोनों धर्मों में व्याप्त अंधविश्वासों पर चोट की। दूसरी ओर मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, कुतुबन आदि सूफी कवियों ने हिंदू लोक कथाओं को अपनाकर अपनी सहिष्णुता और उदारता का परिचय दिया।

**रहस्यवाद का प्रभाव** : निर्गुण काव्य धारा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उसका रहस्यवाद। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर की परोक्ष सत्ता का आभास पाना, उनसे अपना संबंध जोड़ना और उस सत्ता के साथ अपने को एकाकार महसूस करना ही रहस्यवाद है।

शुक्लजी ने रहस्यवाद को दो प्रकार का बताया है- भावात्मक रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद। भावात्मक रहस्यवाद में जीव ईश्वर के प्रति गहन प्रमानुभूति महसूस करता है। जायसी के यहाँ इसी भावात्मक रहस्यवाद को देखा जा सकता है। कबीर भी जब अपने को 'राम की बहुरिया' मानकर ईश्वर के प्रति गहरी विरह भावना को व्यक्त करते हैं तो यह भावात्मक रहस्यवाद ही है। लेकिन साधनात्मक रहस्यवाद में योग की साधना पद्धति का सहारा लिया जाता है। कबीर के यहाँ इस साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

निर्गुण भक्ति काव्यधारा पर नाथों-सिद्धों, सूफीमत, अद्वैतवाद और वैष्णव भक्ति का प्रभाव था। निर्गुण काव्यधारा ने इन सभी को अपनाया और इन्हीं में से अपना रास्ता निकाला। नाथों और सिद्धों की परंपरा से उन्होंने धार्मिक पाखंड का खंडन और जाति-पाँति का विरोध किया। उन्होंने योग-साधना की पद्धति का प्रभाव भी इन्हीं से ग्रहण किया। सूफी मत से उन्होंने प्रेम तत्व प्राप्त किया। सूफी काव्य का तो यह आधार था ही। उन पर ईश्वर के स्वरूप और माया के सिद्धांत का प्रभाव अद्वैतवाद के कारण था। वैष्णव परंपरा से उन्होंने अहंकार का त्याग, ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम और 'राम' नाम का आधार लिया। इस प्रकार निर्गुण काव्य धारा विभिन्न परंपराओं का समागम है।

निर्गुण काव्य धारा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो शाखाओं में विभाजित किया है- कबीर आदि संतों की ज्ञानाश्रयी शाखा और जायसी आदि सूफी कवियों की प्रेममार्गी भााखा। इनका अध्ययन हम आगे करेंगे।

### 1.5.3 सगुण भक्ति काव्य की सामानय विशेषताएँ

ईश्वर के सगुण और साकार रूप में विश्वास करने वाले भक्त कवियों के काव्य को सगुण काव्यधारा नाम दिया गया। हमने पहले इस बात पर विचार किया था कि आद्यशंकराचार्य के मत ने उपासना के क्षेत्र में भक्ति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। शंकराचार्य के सिद्धांत 'अद्वैतवाद' के अनुसार 'ईश्वर ही सत्य है, जगत मिथ्या है'। माया के कारण ही मनुश्य संसार को सच मानता है। भांकराचार्य के अनुसार केवल ब्रहम ही सत्य है इसलिए आत्मा भी ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति में भक्ति संभव नहीं है क्योंकि भक्ति के लिए भक्त और भगवान के बीच किसी न किसी रूप में भेद की चेतना होना आवश्यक है। यही कारण है कि रामानुजाचार्य ने जीव, जगत और ईश्वर के संबंधों को लेकर एक नया दार्शनिक मत प्रस्तुत किया।

**रामानुज** (11वीं शती) के अनुसार जीव, जगत और ईश्वर के बीच उसी तरह का संबंध है जिस तरह का संबंध भारीर और उसके अंगों के बीच होता है। जिस प्रकार शरीर के अंग शरीर से भिन्न भी हैं और भाररीर से एकाकार भी, उसी तरह जीव भी ईश्वर से अलग भी है और उसका अंग भी। इस प्रकार, रामानुज भी जीव और ईश्वर के बीच अद्वैतता (दो का निषेध) मानते हैं लेकिन यह विशिष्ट किस्म की अद्वैतता हे। इसीलिए रामानुज के सिद्धांत को 'विशिष्टाद्वैत' कहा जाता है। रामानुज माया की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते।

रामानुज का मानना है कि जीव ब्रहम से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। जीव अपने अंगी रूप ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है। भक्ति उसकी इसी इच्छा की पूर्ति का मार्ग है। इस सिद्धांत में ईश्वर की सगुण रूप में कल्पना की गई है। दास्य भाव की भक्ति को आदर्श भक्ति माना गया है। कबीर के गुरु रामानंद रामानुज की ही परंपरा से संबद्ध थे।

**मध्वाचार्य** (1188-1276) का सिद्धांत 'द्वैतवाद' कहलाता है। इसमें जीव और ईश्वर को भिन्न-भिन्न माना गया है। ईश्वर को इस सृष्टि का कर्त्ता माना गया है। संसार के प्रत्येक जीव एक दूसरे से अलग हैं। मोक्ष प्राप्ति के बाद भी भेद बना रहता है। मध्वाचार्य जगत को भी पूर्णतः सत्य मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु का सिद्धांत इसी मत की एक शाखा है।

**बल्लभाचार्य** (1478-1530) का दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत है। शंकराचार्य ने माया का अस्तित्व माना था। वल्लभाचार्य ने माया रहित शुद्ध ब्रह्म को जगत का कारण बताया। उनके अनुसार कृष्ण ही परमब्रहम हैं। वे आत्मा में भी वास करते हैं और बाह्य रूप में लीला भी करते हैं। कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना ही भक्त के परम लक्ष्य है। यह 'अनुग्रह' ही पुष्टि है इसिलए वल्लभाचार्य के सिद्धांत को पुष्टि मार्ग भी कहते हैं। राधा और कृष्ण की उपासना यहाँ भी स्वीकार की गई है।

सगुण भक्ति धारा पर इन्हीं दार्शनिक मतों का प्रभाव रहा है। उपर्युक्त मतों का अध्ययन करने से हम कुछ निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं। ईश्वर और जीव की सत्ता चाहे अभिन्न हो लेकिन भक्ति के लिए उनकी स्वतंत्र सत्ता मानना आवश्यक है। दूसरे, जीव का चरम लक्ष्य ईश्वर की कृपा प्रापत करना है, यही भक्ति का लक्ष्य है। तीसरे, समस्त सृष्टि ईश्वर की लीला है। ईश्वर की लीला का ध्यान करना, उनका गायन करना शक्ति का अंग है। कृष्ण, राम आदि अवतार इसी ईश्वर के सगुण रूप है। राधा कृष्ण की शक्ति है और इन दोनों की आराधना करना आवश्यक है। इस प्रकार सगुण भक्ति काव्यधारा में ईश्वर को सगुण साकार ही माना गया है।

**अवतारवाद में विश्वास** : भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं दृष्टों का दलन करने और साधुओं का परित्राण करने के लिए अवतार लेता हूँ। गोस्वामी तुलसीदास भी गीता के इस मत में विश्वास करते हैं और 'रामचरित मानस' में वे इस बात को दोहराते हैं अवतारवाद के सिद्धांत के पीछे गीता की इसी धारणा का प्रभाव है। इसीलिए सगुण कवियों ने अपनी भक्ति का आलंबन किसी न किसी अवतार (राम और कृष्ण) को बनाया है।

अवतार के पीछे एक और कारण माना गया है। प्रभु द्वारा अपने भक्तों पर अनुग्रह करना। भक्तों के लिए ईश्वर अपनी लीला का विस्तार करता है। समस्त सृष्टि ईश्वर की लीला है, परंतु ईश्वर भक्तों के लिए अवतार लेकर भी लीला करता है। राम और कृष्ण का चरित्र ईश्वर के ऐसे ही लीला रूप हैं।

**ईश्वर की लीलाओं का गायन** : सगुण भक्त कवियों ने ईश्वर की लीलाओं का गायन किया है। सगुण कृष्ण भक्त कवि तो यह भी मानते हैं कि वृंदावन में भगवान कृष्ण गोपियों के साथ नृत्यलीला में रत हैं। तुलसीदास भी मानते हैं कि प्रत्येक कल्प में राम बार-बार जन्म लेते हैं और बार-बार राम-कथा दोहराई जाती है। सगुण भक्ति कवि ईश्वर की लीला के गायन को भक्ति का आधार मानते हैं। उनका विश्वास है कि यह भक्ति ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है। जिस व्यक्ति को इश्वर की भक्ति प्राप्त हो जाती है उसके कर्म चाहे कितने ही बुरे क्यों न रहे हों उसकी ओर भगवान अपने आप खींच चले आते हैं।

**भक्ति का विशिष्ट रूप** : सगुण भक्ति दो प्रकार की होती है- 1. रागानुगा भक्ति और 2. वैधी भक्ति। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'कर्त्तव्य बुद्धि से जो नियम स्थिर किये जाते हैं, उसे विधि कहते हैं और स्वाभाविक रुचि से जो वृत्ति उत्तेजित होती है, उसे राग कहते हैं।' रागानुगा भक्ति में ईश्वर के प्रति तन्मयता और अनुराग का आधिक्य होता है जबकि वैधी भक्ति में शास्त्रों के विधि निषेध का पालन करना होता है।

कृष्ण भक्त कवि मानते थे कि ब्रज के लोगों की कृष्ण के प्रति रागात्मिका भक्ति थी, लेकिन अब यह भक्ति संभव नहीं है। हम केवल उनका अनुसरण कर सकते हैं। रागात्मिका भक्ति का अनुकरण होने के कारण ही इसे रागानुगा भक्ति कहते हैं।

तुलसीदास की भक्ति वैधी भक्ति है। वैधी भक्ति ईश्वर के ऐश्वर्य रूप का गायन करती है अर्थात् उसके स्वामी होने या श्रेष्ठत्व के भाव को व्यक्त किया जाता है। तुलसीदास अपने इष्ट को अपना स्वामी मानते हैं स्वयं को उनका दास। इसीलिए तुलसी की भक्ति दास्यभाव की भक्ति कहा जाती है।

रागानुगा भक्ति में ईश्वर की भक्ति सख्यभाव से की जाती है। सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति इसी कोटि में आती है। वे ईश्वर के माधुर्य रूप का गायन करते हैं। कृष्ण के बाल रूप, गोपियों के साथ रासलीला आदि का गायन करना इस भक्ति की विशिष्टता है।

सगुण भक्ति काव्यधारा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो शाखाओं में विभाजित किया है: राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।

सगुण काव्य धारा की इन उपर्युक्त शाखाओं का विस्तृत अध्ययन हम आगे करेंगे।

**अभ्यास**

1. सगुण भक्ति काव्य और निर्गुण भक्ति काव्य में मुख्य अंतर क्या-क्या है ? कोई पाँच अंतर बताइए।

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

**बोध प्रश्न**

5. निम्नलिखित कथनों में से कौन-से सही है और कौन-से गलत। सही कथन पर (✓) और गलत कथन पर (×) का निशान लगाइए।

   क) सगुण भक्त कवि अवतारवाद में विश्वास करते हैं। ( )

   ख) ईश्वर की लीलाओं का गायन निर्गुण काव्य की विशेषता है। ( )

   ग) निर्गुण काव्य धारा में धार्मिक अंधविश्वासों का खंडन मिलता है। ( )

   घ) रागानुगा भक्ति में शास्त्र सम्मत विधि-निषेधों का पालन आवश्यक है। ( )

   ङ.) ज्ञानाश्रयी कवियों ने लौकिक प्रेम गाथाओं को काव्य का विषय बनाया है। ( )

6. 'अद्वैतवाद' मत के संस्थापक थे :

   क) वल्लभाचार्य

   ख) शंकराचार्य

   ग) मध्वाचार्य

   घ) रामानुजाचार्य ( )

6. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषताएँ संपूर्ण भक्ति काव्य पर समान रूप से लागू होती है।

   क) अहंकार का त्याग

   ख) ईश्वरीय लीलाओं का गायन

   ग) नाम-महिमा

   घ) भक्ति के क्षेत्र में जाति प्रथा का निषेध

   ड.) रहस्यवाद

8. अवतारवाद से क्या तात्पर्य है ? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

9. सगुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख लगभग पाँच पंक्तियों में कीजिए।

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

   ......................................................................................................

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 1.6 भक्ति काव्य का शिल्प विधान

भक्ति काव्य विषय-वस्तु की दृष्टि से ही नहीं, वरन् काव्य-कला की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। भक्त कवियों ने काव्य की रचना यश या अर्थ कमाने या काव्य कला के प्रदर्शन के लिए नहीं की थी। वे तो कविताओं द्वारा ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को ही व्यक्त कर रहे थे। उनके काव्य में रस, छंद, अलंकार आदि का प्रयोग मिलेगा, लेकिन कवियों का प्रयोजन इन्हीं तक सीमित नहीं था। भक्त कवि तो यह चाहते थे कि अपनी भावनाओं को ऐसे काव्य रूप में प्रस्तुत करें जो सभी को सहज ही समझ में आ जाए। वे दरबारी कवि नहीं थे। उन्होंने किसी राजा के मनोरंजन के लिए काव्य की रचना नहीं की थी। उनका उद्देश्य अपनी भक्ति भावनाओं को प्रस्तुत करना और ईश्वरीय लीलाओं का गायन करना था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि ये कवि काव्य कला से अनभिज्ञ थे। इन कवियों के काव्य की विविधता यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कबीर जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी भक्त कवि न केवल अपने समय में प्रचलित काव्य रूपों और काव्य उपकरणों से परिचित थे, बल्कि यथावसर उनका उपयोग करने में भी

सिद्धहस्त थे। भक्त कवियों ने प्रबंध काव्य भी लिखे हैं और मुक्तक भी। उन्होंने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि अनगिनत छंदों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से अवधी और ब्रज जो उस समय हिंदी क्षेत्र में प्रचलित साहित्यिक भाषाएँ थीं, का प्रयोग तो मिलता ही है, कबीर आदि संत कवियों ने एक मिली-जुली सधुक्कड़ी भाषा का भी प्रयोग किया।

### 1.6.1 काव्य भाषा

भक्त कवियों ने सामान्य जनता में प्रचलित लोकभाषाओं का प्रयोग किया। कबीर आदि संत कवियों ने जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें किसी एक बोली का ही प्रभाव नहीं था। कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी कहा जाता है। सधुक्कड़ी अर्थात् साधुओं के बीच प्रचलित भाषा। इस भाषा के अतिरिक्त ब्रज और अवधी भक्ति काल की अन्य प्रमुख भाषाएँ हैं। सूफी काव्य और सगुण भक्ति काव्य इन्हीं भाषाओं में रचा गया है। अवधी का प्रयोग प्रायः प्रबंध काव्यों की रचना के लिए किया गया। मलिक मोहम्मद जायसी का 'पद्मावत' तथा अन्य सूफी कवियों के प्रबंध काव्य अवधी भाषा में है। गोस्वामी तुलसीदास विरचित 'रामचरित मानस' अवधी भाषा में है। सूफी कवियों में अवधी का ठेठ रूप मिलता है। उनमें लोक में प्रचलित अवधी का अधिक प्रभाव है जबकि तुलसीदास के यहाँ अवधी अधिक परिष्कृत और संस्कृतनिष्ठ है।

ब्रज भाषा का प्रयोग प्रायः मुक्तकों और गीतों की रचना के लिए किया गया है। इस युग में प्रायः संपूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य ब्रज भाषा में ही लिखा गया है। इसका प्रयोग सूरदास, नंददास आदि कृष्ण भक्त कवियों के यहाँ तो मिलता ही है, तुलसीदास ने भी गीतों और मुक्तकों के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। गीतावली, कृष्ण गीतावली जैसे ग्रंथ इसी भाषा में रचे गए हैं।

भक्त कवियों ने इन भाषाओं को परिनिष्ठित रूप तो दिया, लेकिन इनमें निहित लोक तत्व को नष्ट नहीं होने दिया। भक्त कवियों की भाषा में लोक जीवन से लिए गए उपमान, मुहावरे और शब्द प्रयोग मिलते हैं। इन्हीं के बीच संस्कृत परंपरा के शब्द प्रयोग भी आ जाते हैं। भाषा के संबंध में इन भक्त कवियों की दृष्टि उदार थी। जहाँ आवश्यक हुआ, वहाँ उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया। इन कवियों ने अपनी भाषा को विषय के अनुरूप ढाला। भक्त कवियों की भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुण मिलते हैं। भाषा पर कवियों का जबर्दस्त अधिकार था। भाषा उनके भावों और विचारों की अनुगामिनी थी। उन्होंने आवश्यकतानुसार तीनों शब्द शक्तियों, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग किया।

### 1.6.2 काव्य रूप

भक्त कवियों ने काव्य रचना के लिए प्रबंध और मुक्तक दोनों तरह के काव्य रूपों का प्रयोग किया है। महाकाव्य प्रबंध काव्य का एक रूप है भक्तिकाव्य के अंतर्गत कई महाकाव्य लिखे गए जिनमें जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' और तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' उल्लेखनीय हैं। भक्ति काव्य का एक बड़ा हिस्सा मुक्तक काव्य के रूप में रचा गया है। एक तरह के मुक्तक काव्य में कवि ने ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति को वाणी दी है। कबीर के विरह संबंधी पद, तुलसी के विनय संबंधी पद तथा मीरा के पद इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी तरह के मुक्तकों में कवि ने ईश्वरीय लीलाओं का वर्णन किया है। सूरदास की रचनाएँ गीतावली, कवितावली आदि काव्य ग्रंथों में तुलसीदास ने इसी तरह के पद रचे हैं। तीसरी तरह के मुक्तक पदों में कवि के विचार पक्ष को अभिव्यक्ति मिली है। कबीर के पदों में धर्म और समाज की आलोचना इसी श्रेणी में आती है।

### 1.6.3 छंद विधान

भक्ति काव्य में प्रायः उन सभी छंदों का प्रयोग किया गया जो उस समय प्रचलित थे। महाकाव्य के लिए दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया। 'पद्मावत' में सात चौपाई के बाद एक दोहा प्रयुक्त हुआ है जबकि 'रामचरित मानस' में आठ चौपाई के बाद एक दोहे का प्रयोग किया गया है। 'मानस' में तुलसीदास ने सोरठा, छप्पय आदि छंदों का भी प्रयोग किया है।

मुक्तक काव्य के लिए प्रयुक्त छंदों में अधिक विविधता पाई जाती है। कबीरदास ने दोहा-चौपाई तथा गेय पदों का प्रयोग किया है। सूरदास ने 'सूरसागर' में गेय पदों का ही अधिक प्रयोग किया है। इन गेय पदों में दोहा, चौपाई, रोला, छप्पय, सवैया, घनाक्षरी, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग मिलता है। तुलसीदास ने पद, कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा तथा अन्य कई छंदों का प्रयोग किया है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि भक्ति काव्य में छंद की दृष्टि से अधिक विविधता और व्यापकता पाई जाती है।

भक्ति काव्य की एक प्रमुख विशेषता है, उसकी गेयता। प्रायः सभी भक्त कवियों ने गेय पदों की रचना की हैं, जो विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों के पद अपनी गेयता के कारण जन-जन के कंठहार बन गए थे और आज भी वे उतने ही लोकप्रिय हैं।

### 1.6.4 अलंकार

भक्त कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य का अर्थगत सौंदर्य बढ़ाने के लिए किया है। उनके यहाँ अलंकार सहज ही चले आते हैं। प्रायः उन्होंने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। कबीर की रचनाओं में उपमा और रूपक अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। कबीर ने इनका प्रयोग अपने भावों को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किया है। जायसी के यहाँ भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। इनमें भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक मिलता है। सूरदास के यहाँ भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग हुआ है। सांगरूपक में तो सूरदास और तुलसीदास विशेष सिद्धहस्त हैं। कृष्ण की लीलाओं से संबंधित कई पदों में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है।

**बोध प्रश्न**

10. कबीरदास ने किस भाषा में काव्य-रचना की ?

    क) अवधी

    ख) ब्रज

    ग) सधुक्कड़ी

    घ) भोजपुर ( )

11. भक्ति काव्य में प्रबंध रचना के लिए निम्नलिखित छंदों का प्रयोग किया गया।

    क) कवित्त-सवैया

    ख) गेय पद

    ग) दोहा-छप्पय

    घ) दोहा-चौपाई ( )

12. निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत ? सही पर (✓) का और गलत पर (×) का निशान लगाइए।

क) भक्ति काव्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग मिलता है। ( )

ख) 'पद्मावत' मुक्तक रचना है। ( )

ग) तुलसीदास ने उस समय प्रचलित सभी छंदों का प्रयोग किया। ( )

घ) सूरदास ने अवधी भाषा में काव्य-रचना की। ( )

ङ) भक्त कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया। ( )

13. भक्ति काव्य की भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

**अभ्यास**

2. भक्ति काव्य के रूप विधान और छंदों के प्रयोग पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 1.7 भक्ति काव्य का विकास

इकाई के आरंभ में हम आपको भक्ति काव्य की दो प्रमुख धाराओं से परिचित करा चुके हैं। इन धाराओं को निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन को दो-दो शाखाओं में विभाजित किया था। निर्गुण काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा में तथा सगुण काव्यधारा को राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा में है।

इस भाग में हम इन चारों शाखाओं में काव्य के विकास का अलग-अलग अध्ययन करेंगे ताकि यह जान सकें कि भक्ति काव्य का विकास किस रूप में हुआ।

### 1.7.1 ज्ञानाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य भी कहा जाता है। इसका कारण संभवतः यह है कि निर्गुणपंथी कवियों को संत कहने की एक लंबी परंपरा रही है। भक्ति की जो लहर दक्षिण से आई थी, उसका सबसे पहला प्रभाव महाराष्ट्र के संत कवियों पर

पड़ा था। नामदेव को हम हिंदी का पहला संत कवि कह सकते हैं। नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। उन्होंने अपने काव्य में हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

उत्तर भारत में भक्ति को लोकप्रिय बनाने में रामानंद का नाम विशेष उललेखनीय है। रामानंद रामानुज की शिष्य परंपरा से संबद्ध थे। इनका समय 14वीं शती माना जाता है। रामानंद भक्ति मार्ग में उदारता के पक्षधर थे। उन्होंने भक्ति पथ पर चलने वाले व्यक्ति के लिए वर्णाश्रम के बंधन को व्यर्थ माना। रामानंद खान-पान में छुआछूत मानने के भी विरोधी थे। वे स्वयं यद्यपि ब्राह्मण थे, लेकिन उदार दृष्टिकोण के कारण उनके कई शिष्य उस युग में छोटी समझी जाने वाली जातियों के थे। इनमें रैदास, कबीर, धन्ना, सेना और पीपा विशेष उललेखनीय हैं। रैदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, सेना नाई और पीपा राजपूत जाति के थे। ज्ञानाश्रयी शाखा से संबद्ध अन्य महत्वपूर्ण कवियों में सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक, दादू दयाल, मलूकदास, सुंदरदास आदि के नाम प्रमुख हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि ज्ञानाश्रयी शाखा के अधिकांश कवि निम्न समझी जाने वाली जातियों से आए थे। भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए हमने बताया था कि 12वीं-13वीं शताब्दी में आर्थिक विकास ने उन जातियों की स्थिति में सुधार किया जो विभिन्न व्यवसायों या कृषि से जुड़ी थीं। आर्थिक स्थिति में सुधार ने इन्हें अपनी सामाजिक स्थिति मजबूत करने का अवसर दिया। लेकिन यह काम सरल नहीं था। जातिप्रथा के रहते यह संभव नहीं था। भारत में वर्णाश्रम धर्म के विरोध की भी एक लंबी परंपरा रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'सहजयान और नाथपंथ के अधिकांश साधक तथाकथित नीच जातियों में उत्पन्न हुए थे' उन्होंने भी जाति प्रथा का उतनी ही उग्रता और तीव्रता से विरोध किया, जैसा हम कबीरदास के यहाँ पाते हैं।

भक्ति मार्ग ने इन्हें यह समझ दी कि सभी धर्म एक ही सत्य को व्यक्त करने के विभिन्न मार्ग हैं। अगर ईश्वर एक है तो मंदिर-मस्जिद का भेद, नमाज और पूजा का भेद व्यर्थ है। इस भावना ने जहाँ एक ओर उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों में एकता के लिए काम करने को प्रेरित किया, वहीं दूसरी ओर उन्हें दोनों धर्मों में व्याप्त बुराइयों से समान रूप संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी। नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, दादूदयाल आदि सभी संत कवियों ने समान रूप से हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया।

बह्याचारों और सामाजिक कुरीतियों के विरोध का यह तात्पर्य नहीं है कि कबीर आदि संतों में सच्ची भक्ति भावना नहीं थी। उनके मानवीय दृष्टिकोण का ईश्वरीय आस्था से गहरा संबंध है। कबीर आदि संतों ने ईश्वर के उस रूप को अवश्य अस्वीकार किया जो सगुण पंथ की विशेषता है। कबीर आदि निर्गुण पंथी निर्गुण-निराकार ईश्वर में विश्वास करते थे। उन्होंने अवतारवाद का दृढ़तापूर्वक खंडन किया। कबीर ने तो यहाँ तक कहा था कि 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना/राम नाम का मरम है आना।' अर्थात् जो राम को दशरथ पुत्र राम समझते हैं, वे राम शब्द के मर्म को जानते ही नहीं। यही कारण है कि संत मत में ईश्वर के नाम को ईश्वर से बढ़कर माना गया है।

संत मत में सृष्टि का कारण परब्रह्म को ही माना गया है। वह समस्त सृष्टि का कारण भी है और उसमें व्याप्त भी है इसलिए ब्रहम सर्वत्र विद्यमान है। वह हमारे ह्रदय में भी है। माया के कारण हम उसे पहचान नहीं पाते। लेकिन गुरु की कृपा से हमें आत्मज्ञान हो जाता है तो हम ब्रह्म के साक्षात् रूप को पहचान जाते हैं। इस आत्मज्ञान के बाद भक्त ब्रह्म को पाने के लिए तड़प उठता है। संत काव्य में यहीं पर प्रेम तत्व का प्रवेश होता है।

समस्त सृष्टि में ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करना और उसे पाने के लिए तड़पना यही रहस्य भावना है जो संत काव्य की विशेषता है। ईश्वर और आत्मा (जीव) के संबंध को व्यक्त करने के लिए कबीर योग साधना की पद्धति का सहारा भी लेते हैं और उलटबाँसी का भी। उलटबाँसी में विपरीत कथन द्वारा आध्यात्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति की गई है। जैसे 'नैया बिच नदिया डूबति जाय।' या 'बरसै कंबल भीगे पानी'। योग साधना से संबंधित सांकेतिक शब्दों, चाँद, सूर्य, नाद इड़ा, पिंगला, सुशुम्ना, आदि का प्रयोग करके उन्होंने अद्भुत रूपक बाँधे हैं।

नामदेव, कबीर, रैदास आदि संत कवियों ने सामान्य जन भाषा का प्रयोग किया है। उनकी काव्य भाषा में लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग तो मिलता ही है, साथ में ऐसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, जिनका अर्थ योग साधना की परंपरा से परिचित होने पर ही जाना जा सकता है। फिर भी, इनके काव्य में भावों की सच्चाई और तीव्रता का बराबर अनुभव होता है। संत कवियों ने मुक्तक काव्य की ही रचना की है। उन्होंने दोहा, चौपाई आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। काव्यकला के मानदंड पर भले ही यह काव्य खरा न उतरता हो लेकिन भावों और विचारों की दृष्टि से इसकी श्रेष्ठता असंदिग्ध है।

ज्ञानश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर ही हैं जिनके काव्य का विस्तृत अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे। कबीर के अतिरिक्त गुरुनानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

## 1.7.2 प्रेममार्गी (सूफ़ी) शाखा

भारत में सूफ़ी मत का आगमन 12वीं शताब्दी से माना जाता है। सूफ़ी मत इस्लाम का ही एक अंग है, लेकिन इसमें धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता नहीं है। सूफ़ी उन संतों को कहा जाता था जो अपने जीवन को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देते थे तथा बड़े कष्ट और दरिद्रता में जीवन व्यतीत करते थे। सूफ़ी मानते हैं कि विषय भोग से संघर्ष करके साधक को आत्मा द्वारा साधना करनी चाहिए। शुक्लजी के अनुसार सूफ़ी मत में साधना की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं:

1. **शरीअत-** अर्थात् धर्म ग्रंथों के विधि निषेध का पालन करना।
2. **तरीक़त-** अर्थात् बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान करना।
3. **हक़ीक़त-** अर्थात् भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का बोध करना। इससे साधक तत्वदृष्टि से संपन्न और तीनों कालों (भूत, भविष्य और वर्तमान) का जानने वाला हो जाता है।
4. **मारफत-** अर्थात् सिद्धावस्था। इस अवस्था में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है और वे प्रभु से एकमेक हो जाता है।

सूफ़ी कवि दो प्रकार के प्रेम का वर्णन करते हैं- इश्क मजाजी और इश्क हक़ीकी। इश्क मजाजी लौकिक प्रेम है तो स्त्री-पुरुष के बीच होता है। इश्क हकीकी वास्तविक प्रेम है जो ईश्वर और जीव के बीच होता है। सूफ़ी कवि मानते हैं कि इश्क मजाजी द्वारा इश्क हकीकी को पाया जा सकता है। इसलिए वे अपने प्रबंध काव्यों के लिए लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाते हैं और उनके माध्यम से आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करते हैं। सूफी कवियों ने पुरुष को आत्मा का प्रतीक और प्रियतमा को परमात्मा का प्रतीक माना है। प्रेम ही प्रियतमा को प्राप्त करने का साधन है। लेकिन प्रियतमा के रूप का सच्चा ज्ञान गुरु की कृपा से होता है। प्रेम का मार्ग कांटों से भरा है। प्रेमी इस मार्ग की कठिनाइयों

की चिंता किये बिना लगातार आगे बढ़ता जाता है। माया या शैतान भी प्रेमी के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, गुरु की सहायता से प्रेमी उन बाधाओं को दूर हटाता है। सूफी काव्य का यही आध्यात्मिक सार है जिन पर उनके प्रबंध काव्य आधारित हैं।

सूफी कवियों ने लोक में प्रचलित प्रेम कथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया है। इनके चरित्र इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी। लेकिन कथा का विकास प्रायः लोक विश्वासों के अनुसार होता है या कवि की कल्पना के अनुसार। इनका इतिहास से प्रायः संबंध नहीं होता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों में प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परंपरा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं, जैसे-चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक्र-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गई हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परंतु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी कवियों के काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं'। (हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ. 163) सूफी कवियों ने अपने प्रबंध काव्यों की रचना फारसी की मसनवी शैली में की है। इस शैली में कवि आरम्भ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति करते हैं। अपने गुरु का स्मरण करते है। ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख भी करते हैं। तथा उस समय के राजा या बादशाह का उल्लेख भी करते है। मसनवी शैली की इस परंपरा का पालन करने के बावजूद सूफी काव्य अपनी अंतः प्रकृति में भारतीय ही है। सूफी कवियों ने न केवल भारत में प्रचलित काव्य रूढ़ियों का प्रयोग किया बल्कि भारतीय दर्शन और योग साधना का उन पर गहरा प्रभाव था।

सूफी कवियों ने प्रायः एक ही काव्य पद्धति का प्रयोग किया है। प्रबंध काव्य के लिए उन्होंने दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। सूफी काव्यों की भाषा अवधी है तथा इनकी भाषा में लोकतत्व का प्रभाव अधिक है। सूफी कवि लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का आभास देना चाहते थे इसलिए उन्होंने ऐसे अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है जिसमें प्रस्तुत (लौकिक भाव) के द्वारा अप्रस्तुत (अलौकिक भाव) की व्यंजना हो सके।

सूफी कवियों विशेषतः जायसी पर रहस्यवाद का भी प्रभाव है, लेकिन उनका रहस्यवाद भावात्मक रहस्यवाद है। सूफी कवियों के रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए आचार्य द्विवेदी कहते हैं, 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रूप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समुद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं है। फिर भी मेघ का पानी नदी का रूप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रूप में देखते हैं और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्‌भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उसी परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुलता पाई जाती है।' (हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ. 167)

सूफी काव्य को अगर हम आध्यात्मिक अर्थ में न भी ग्रहण करें तो उसमें व्यक्त लोक जीवन का चित्रण अत्यंत मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली है। जायसी का नागमती विरह वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। मुसलमान होते हुए भी सूफी कवियों ने हिंदू जीवन पद्धति

और धार्मिक, दार्शनिक मतों का जिस विश्वास और लगाव से चित्रण किया है वह सिर्फ उनकी उदारता का ही परिचायक नहीं है बल्कि भारतीय जीवन से उनके आत्मिक लगाव को भी व्यक्त करता है। सूफी काव्य परंपरा में मलिक मुहम्मद जायसी का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इनके काव्य का अध्ययन हम इकाई पाँच में करेंगे। अन्य सूफी कवियों में मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, उसमान आदि सूफी कवि प्रसिद्ध हैं।

### 1.7.3 कृष्ण भक्ति शाखा

विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण की उपासना का इतिहास कितना महत्व पुराना है, यह कहना मुश्किल है। लेकिन कृष्ण के माधुर्य रूप का प्रकाशन सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढंग से भागवत पुराण में हुआ है। भागवत पुराण की रचना छठी और 9वीं शताब्दी के बीच मानी जाती है। भागवत पुराण मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत रहा है। इसमें कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इसमें कृष्ण और गोपियों के प्रेम तथा रासलीला का विशद और मनोहारी चित्रण किया गया है। भागवत पुराण में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। राधा कृष्ण की नायिका के रूप में संस्कृत कवि जयदेव के 'गीतगोविंद' में हैं। 'गीत गोविंद' 12वीं शताब्दी की रचना है। 'गीत गोविंद' में रास बसंत ऋतु में होता है, जबकि भागवत पुराण में रास शरद ऋतु में होता है। जयदेव के बाद बंगाल के कवि चंडीदास और मैथिली कवि विद्यापति ने भी राधा-कृष्ण के प्रेम को काव्य का विषय बनाया। चंडीदास और विद्यापति ने भी कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेरणा दी है। यह अवश्य है कि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण के प्रेम चित्रण में अधिक मांसलता और श्रृंगारिकता पाई जाती है।

भक्ति आंदोलन के दौरान कृष्ण लीलाओं के गान की ओर कवियों को प्रेरित करने का श्रेय शुद्धाद्वैतवाद के प्रवर्तक बल्लभाचार्य को है। सूरदास बल्लभाचार्य के ही शिष्य माने जाते हैं। बल्लभाचार्य ने भक्ति के जिस सिद्धांत को प्रस्तुत किया उसे पुष्टि मार्ग कहा जाता है। ईश्वर के अनुग्रह या कृपा को पुष्टि कहा जाता है। पुष्टि चार प्रकार की मानी गई है :

1. **मर्यादा पुष्टि** : भगवान के गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हुए और सामाजिक विधि निशेध तथा लोक मर्यादा का पालन करते हुए भक्ति करना 'मर्यादा पुष्टि' है।

2. **प्रवाह पुष्टि** : सांसारिक जीवन में रुचि रखते हुए भी भगवान के प्रति विशेष रुचि रखना 'प्रवाह पुष्टि' है।

3. **पुष्टि पुष्टि** : भगवान का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसी के स्नेह में मग्न रहना 'पुष्टि पुष्टि' है।

4. **शुद्ध पुष्टि** : एकांत प्रेम-पूर्वक तथा आत्म-समर्पण के भाव से भगवान के अनुग्रह पर जीवित रहते हुए उसकी लीला, गुण आदि में मग्न रहना 'शुद्ध पुष्टि' है।

बल्लभाचार्य ने 'शुद्ध पुष्टि' को ही भक्ति का श्रेष्ठ मार्ग स्वीकार किया है। शुद्ध पुष्टि में केवल प्रेम के द्वारा भगवान कृष्ण की कृपा प्राप्त की जाती है। इसी से हृदय में भक्ति की उत्पत्ति होती है।

पुष्टि मार्ग की भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति मार्ग में सांसारिक विधि निषेधों का पालन आवश्यक नहीं रह जाता। ईश्वर की कृपा स्वयं उसे कर्मों के फल से मुक्त कर देती है। बल्लभाचार्य के अनुसार कृष्ण ही सत्, चित और आनंद स्वरूप तथा परब्रहम है। कृष्ण की लीलाएँ किसी बाह्य कारण से नहीं है। कृष्ण की तरह कृष्ण की लीलाएँ भी

नित्य हैं। कृष्ण भक्त का कर्त्तव्य है कि वह कृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी लीलाओं का ध्यान, स्मरण और कीर्तन करे। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गायन सख्य भाव से किया। यानी उन्होंने कृष्ण को अपना सखा और बंधु माना जिसके कारण लीला के वर्णन में अधिक स्वाभाविकता और सौंदर्य आ सका है।

बल्लभाचार्य के मत को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ को है। इन्होंने पुष्टिमार्ग को स्वीकार करने वाले आठ भक्त कवियों को अष्टछाप की संज्ञा दी है। ये हैं : कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतास्वामी और चतुर्भुदास। इनमें से पहले चार बल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष चार गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गान किया और उनके रूप-माधुर्य के वर्णन की और प्रवृत्त हुए।

कृष्ण के माधुर्य रूप की उपासना का यह लाभ अवश्य हुआ कि इसमें कृष्ण का लोकरंजक रूप उभरा। कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण का एक ऐसा रूप व्यक्त हुआ है जो अपनी मनोहारी लीलाओं द्वारा लोक को आनंद पहुँचाता है। कृष्ण की बाल लीलाएँ-उनका माखन चुराना, गोपियों की मटकियाँ फोड़ देना, गाएँ चराना, ग्वाल-बालों के साथ जंगल में घूमना और गोपियों के साथ रास रचना वस्तुतः लोकरंजन के लिए ही हैं। यह अवश्य है कि राधा-कृष्ण या कृष्ण गोपियों के प्रेम वर्णन में लोक मर्यादा की पूर्ण अवहेलना है। गोपियाँ सामाजिक मर्यादाओं का त्याग कर कृष्ण के प्रेम में निमग्न रहती हैं। कृष्ण की लीलाओं की व्यंजना करते हुए भक्त कवियों ने ऐसी मनोदशाओं का चित्रण भी किया है जो सामान्य जन को अधिक आकृष्ट करती हैं। जैसे कृष्ण का रोना, खीझना, नटखटपन, गोपियों का यशोदा से उपालंभ, यशोदा का बाल कृष्ण के डाँटना-फटकारना आदि। इन मनोदशाओं में जीवन की स्वाभाविकता और सहजता के दर्शन होते हैं।

कृष्ण काव्य के माध्यम से श्रृंगार का भी विशद चित्रण हुआ है- विशेष रूप से विरह का। कृष्ण काव्य का श्रृंगार पक्ष उतना मांसल और विलासमय नहीं है जितना कि बाद में रीतिकालीन काव्य हो गया था। सूरदास ने 'भागवत' की परंपरा के अनुसार विरह वर्णन में भ्रमर गीतों की रचना भी की है। लेकिन सूर की यह विशेषता है कि उन्होंने भ्रमर गीतों को दार्शनिक आयाम भी दिया है। उन्होंने निर्गुण मत के खंडन के लिए भी भ्रमर गीतों का इस्तेमाल किया है।

कृष्ण भक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की ओर ही रही। उन्होंने कृष्ण के जीवन का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उनकी बाल और कैशोर्य जीवन से संबंधित लीलाओं तक ही अपने काव्य को सीमित रखा। इन लीलाओं के चित्रण में भी उनकी रुचि कथा कहने की ओर नहीं थी। इन कवियों ने कृष्ण के विभिन्न रूपों और लीलाओं में निहित सौंदर्य के उद्घाटन में ही अधिक रुचि ली, विशेषतः लीलाओं के चित्रण में विभिन्न मनोदशाओं का चित्रण तो अत्यंत मार्मिक और चमत्कारपूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। कृष्ण भक्ति काव्य प्रमुखतः गेय पदों में हैं जो विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं। अपने समृद्ध संगीत पक्ष के कारण ही सूरदास की अमर रचना 'सूरसागर' को संगीत सागर भी कहा जाता है। कृष्ण भक्ति काव्य की रचना ब्रज भाषा में हुई है।

इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं। मीरा भी इस धारा की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। इस खंड में आप इन कवियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

### 1.7.4 राम भक्ति शाखा

राम का चरित्र काव्य लिखने की प्रेरणा बराबर देता रहा है। राम के चरित्र को केंद्र में रखकर वाल्मीकि ने संस्कृत में 'रामायण' की रचना की थी। वाल्मीकि भारतीय परंपरा में आदि कवि माने जाते हैं 'रामायण' की रचना का समय ईसा से पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व से पहले का माना जाता है। वाल्मीकि के बाद भी रामकथा को आधार बनाकर काव्य रचना होती रही। इनमें संस्कृत कवियों के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश में रचना करने वाले बौद्ध और जैन कवि भी शामिल हैं।

मध्यकाल में रामानुज ने राम की उपासना को लोक में प्रचारित किया। स्वामी रामानंद ने भी राम के नाम को परब्रह्म का प्रतीक बताया। रामानंद का आग्रह निर्गुण निराकार राम के प्रति नहीं था, लेकिन वे इतने उदार थे कि उन्होंने निर्गुण राम (परब्रह्म) और सगुण राम दोनों की भक्ति को प्रोत्साहित किया।

रामकाव्य की लंबी परंपरा के बावजूद रामकथा को लोकप्रियता तुलसीदास के कारण ही मिली। तुलसीदास की 'रामचरित मानस' हिंदू परिवारों में धार्मिक ग्रंथ की तरह पूज्य हो गई। लेकिन तुलसीदास की भक्ति कृष्ण भक्त कवियों से कई अर्थों में भिन्न थी। हम बता चुके हैं कि कृष्ण भक्त कवि लीला गायन पर जोर देते थे और ईश्वर की लीला का कोई बाह्य उद्देश्य नहीं मानते थे। इसके विपरीत तुलसीदास आदि राम भक्त कवि यह मानते थे कि भगवान दुष्टों का दलन करने और साधुओं की रक्षा करने के लिए अवतार लेते हैं। राम भक्त कवियों की इस मान्यता के कारण उनके काव्य में राम एक ऐसे ईश्वर के रूप में चित्रित हुए हैं जिसने लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अवतार लिया है। यही कारण है कि राम भक्त कवि के समक्ष राम का ऐसा रूप रहता है जिसका उद्देश्य अपनी लीलाओं द्वारा लोक को आनंद पहुँचाना ही नहीं है वरन् उन्हें कष्टों और पीड़ाओं से मुक्त करना भी है। तुलसीदास की भक्ति रागानुगा भक्ति की अपेक्षा वैधी भक्ति के अधिक नजदीक है। उनके यहाँ शास्त्र सम्मत विधि-निषेधों का पालन अनिवार्य है। यहाँ तक कि राम भी मर्यादा से बंधे हैं और इसीलिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। तुलसीदास ने राम की आराधना दास्यभाव से की है। इसलिए उनके यहाँ राम के ऐश्वर्य और प्रभुत्ता के चित्रण पर अधिक बल है।

रामभक्त कवियों के सामने आदर्श लोकमंगल का रहा इसलिए उन्होंने ईश्वर के एक ऐसे आदर्श रूप को सामने रखा जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणा दे। यही कारण है कि राम भक्ति काव्य में लोकजीवन की उपेक्षा नहीं है बल्कि जीवन के संघर्षों के बीच ही उनके चरित्र का उज्ज्वल रूप हमारे सामने आता है। राम के शील और सौंदर्य का दर्शन हम जीवन संग्राम के बीच ही पाते हैं। सीता का त्याग और पतिव्रत्य, भरत और लक्ष्मण का राम के प्रति भ्रातृत्व प्रेम तथा हनुमान की स्वामी भक्ति जीवन संघर्षों के बीच ही निखार पाते हैं।

रामभक्त कवियों के सामने समाज की मर्यादा की रक्षा करना हमेशा उद्देश्य रहा, इसलिए उन्होंने विरोधी प्रवृत्तियों के बीच समन्वय का प्रयास किया। तुलसीदास ने शैव और वैष्णव, निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति, लोक और शास्त्र, वैराग्य और गार्हस्थ्य आदि विरोधी प्रवृत्तियों के बीच समन्वय का प्रयास किया।

राम भक्त कवियों में अपनी दीनता का भाव भी गहरे तक समाया हुआ है। अपनी दीनता का बोध और ईश्वर से अपनी मुक्ति की कामना, उसके समक्ष अनुनय-विनय भी इस काव्य की एक अन्य प्रमुख विशेषता है।

राम भक्त कवियों ने राम के जीवन को आधार बनाकर प्रबंध काव्य भी लिखे और मुक्तकों की रचना भी की। उन्होंने अवधी भाषा को भी अपनाया और ब्रजभाषा को भी। काव्य रचना के लिए उन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया। उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों से आबद्ध गेय पदों की भी रचना की। उनके काव्य में काव्यकला की पराकाष्ठा दिखाई देती है। प्रबंध काव्य में 'रामचरित मानस' गीतों में 'गीतावली', गेय पदों में 'विनय पत्रिका' के पदों की श्रेष्ठता असंदिग्ध हैं। राम भक्ति काव्य में जो स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है, वह किसी अन्य को प्राप्त नहीं है। इनके काव्य के संबंध में आप इसी पाठ्यक्रम के दूसरे खंड में विस्तृत अध्ययन करेंगे। तुलसीदास के अतिरिक्त अन्य उललेखनीय कवि हैं : अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास, केशवदास आदि।

**बोध प्रश्न**

14. निम्नलिखित कथनों में से कौन-से सही हैं, कौन से गलत ? सही कथन पर (✓) का और गलत पर (×) का निशान लगाइए ?

    क) तुलसीदास की भक्ति वैधी भक्ति थी ।

    ख) मसनवी शैली में आरंभ में ईश्वर की वंदना, पैगम्बर की स्तुति और शाहेवक्त (तत्कालीन राजा) की प्रशंसा की जाती है। ( )

    ग) अष्टछाप के कवियों ने रामकाव्य की रचना की। ( )

    घ) ज्ञानाश्रयी शाखा में शास्त्रीय ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया है। ( )

    ङ.) रैदास सगुण भक्ति काव्यधारा के कवि थे । ( )

15. निम्नलिखित भक्त कवि, भक्ति काव्य की किस शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

    क) दादू दयाल.................................................

    ख) नाभादास ..................................................

    ग) गोविंद स्वामी ..............................................

    घ) उसमान.....................................................

16. ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों का जातिप्रथा के बारे में क्या विचार था ? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

    ................................................................................................................

    ................................................................................................................

    ................................................................................................................

17. सूफ़ी साधक को किन चार अवस्थाओं में से गुजरना होता है, केवल नाम बताइए।

    i) ................................................ ii) ........................................

    iii) ................................................ iv) ........................................

18. 'शुद्ध पुष्टि' से क्या तात्पर्य है ? दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

    ................................................................................................................

    ................................................................................................................

19. राम भक्ति शाखा के कवि ईश्वर के अवतार का क्या कारण मानते हैं ? दो पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

.................................................................................................................

.................................................................................................................

**अभ्यास**

3. भक्ति, उपासना, लोक दृष्टि, काव्य रूप और भाषा की दृष्टि से कृष्ण भक्ति काव्य और राम भक्ति काव्य में अंतर बताइए।

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

4. सूफ़ी प्रबंध काव्य से संबद्ध कोई पाँच विशेषताएँ बताइए।

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

## 1.8 सारांश

- ईश्वर की उपासना का सहज और सुगम मार्ग है- भक्ति। भक्ति साहित्य का सर्वप्रथम प्रणयन दक्षिण के आलवार संतों द्वारा हुआ। प्रसिद्ध दार्शनिक रामानुज, निंबार्क, मध्व, बल्लभ आदि ने भक्ति का सैद्धांतिक पक्ष प्रस्तुत किया तो संत ज्ञानेश्वर, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव ने इसे जन-जन में लोकप्रिय बनाया। 12-13वीं शताब्दी की बदलती परिस्थितियों ने भक्ति आंदोलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं। इस भक्ति आंदोलन को वैचारिक आधार देने में नाथों और सिद्धों की परंपरा और सूफ़ी मत का योगदान रहा।

- ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति का नाम है, भक्ति। भक्ति के लिए न तो कठोर साधना की आवश्यकता है और न ही शास्त्रसम्मत विधि-निषेधों के पालन की। भक्ति के लिए तो ईश्वर का स्मरण, कीर्तन, उनकी पूजा-अर्चना और आत्मनिवेदन ही पर्याप्त है। भक्ति दो तरह की होती है-सगुणा और अहैतुकी। इच्छा से रहित होकर की गई भक्ति अहैतुकी कहलाती है।

- भक्ति के लिए आवश्यक है, केवल प्रेम। गुरु की कृपा से यह भक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर का केवल नाम स्मरण ही भक्ति के लिए पर्याप्त है। अपने अहंकार को त्याग कर ईश्वर की लीला-गान में लीन रहना ही भक्त की पहचान है। ईश्वर के रूप के आधार पर भक्ति काव्य के दो भेद किए गए हैं, निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्त कवि ईश्वर को निर्गुण निराकार मानते हैं। वे अवतारवाद में

विश्वास नहीं करते। न ही वे जातिप्रथा, धार्मिक बाह्याचार और सामाजिक कुरीतियों को मानते हैं। ये भक्त कवि सभी धर्मों में एकता के पक्षधर हैं इसलिए इन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष जोर दिया है। सगुण भक्त कवि ईश्वर के सगुण साकार रूप में विश्वास करते हैं। अवतारवाद में भी विश्वास करते हैं और अवतारों के लीला गान को भक्ति का मार्ग समझते हैं।

- भक्ति काव्य अवधी और ब्रज भाषा में काव्य रचा गया। ज्ञानाश्रयी कवियों ने सधुक्कड़ी भाषा में काव्य रचना की। इस युग में प्रबंध काव्य और मुक्तक दोनों की रचना हुई। विभिन्न छंदों का प्रयोग किया गया। वात्सल्य, शृंगार और भाांत इस काव्य के प्रमुख रस हैं। अलंकारों का प्रयोग काव्य के अर्थगत सौंदर्य को बढ़ाने के लिए गया गया।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निर्गुण काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा में सगुण काव्यधारा को कृष्ण भक्ति और राम भक्ति शाखा में विभाजित किया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने सामाजिक विद्रोह से युक्त भक्ति काव्य की रचना की, तो प्रेममार्गी सूफी कवियों ने लोक प्रचलित प्रेम कथाओं के प्रणयन द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजन रूप का लीलागान किया, तो रामभक्त कवियों ने राम के लोकमंगल रूप को प्रतिष्ठा दी।

## 1.9 शब्दावली

इस इकाई से संबंधित कुछ कठिन शब्द, नामों और पारिभाषिक पदों के अर्थ नीचे दिए गए हैं। इनसे आपको इकाई में कही गई बातों को समझने में मदद मिलेगी।

**तत्व चिंतन** : तत्व का अर्थ है यथार्थता या सार। तत्व चिंतन का अर्थ है ब्रह्म, आत्मा और जगत से संबंधित ज्ञान।

**वेद** : प्राचीनतम हिंदू धर्म ग्रंथ। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

**उपनिषद** : वेद का एक भाग। उपनिषद् उन हिंदू धर्म ग्रंथों को कहते हैं जिनमें ईश्वर, जगत, जीव आदि के संबंध में विचार किया गया है। कुछ प्रमुख उपनिषद् हैं- बृहदारण्यक उपनिषद्, छांदोग्य उपनिषद, कठोपनिषद् आदि।

**पुराण** : हिंदू धर्म ग्रंथ जिनमें हिंदू अवतारों और देवी-देवताओं तथा सृष्टि की उत्पत्ति से प्रलय तक की कथाएँ हैं। प्रमुख पुराणों की संख्या 18 हैं। विष्णु पुराण, पद्म पुराण, अग्नि पुराण आदि कुछ प्रमुख पुराण हैं।

**वैष्णव धर्म** : हिंदू धर्म की शाखा जिसमें विष्णु की उपासना की जाती है।

**शैव धर्म** : शैव अर्थात् शिव से संबंध रखने वाला। एक धार्मिक शाखा जिसमें शिव की उपासना की जाती है।

**सिद्ध** : साधना में प्रवीण, अलौकिक सिद्धियों से संपन्न, चमत्कारपूर्ण और दैवीय शक्तियों से युक्त व्यक्ति को सिद्ध कहा जाता है। यहाँ सिद्ध शब्द बौद्ध परंपरा के सिद्धों से संबंधित है।

**नाथ** : गोरखपंथी (गोरखनाथ द्वारा स्थापित संप्रदाय) साधुओं की एक उपाधि।

**वर्णाश्रम व्यवस्था** : हिंदू शास्त्रों के अनुसार समाज में चार वर्ण हैं : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को चार आश्रमों से गुजरना होता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। वर्ण और आश्रम की इस व्यवस्था को ही वर्णाश्रम व्यवस्था कहते हैं।

**कौलीन्य** : कुलीनता का भाव अर्थात् अपने को उच्च वर्ण का समझना।

**लीला** : शब्दिक अर्थ क्रीड़ा (खेल)। ईश्वर के अवतारों द्वारा किए गए कार्य लीला माने जाते हैं।

**कर्मकांड** : धर्म का वह पक्ष जिसमें शास्त्रीय विधि-निषेधों के अनुसार कर्म करने की प्रमुखता दी जाती है।

**माया** : वह शक्ति जो मनुष्य को ईश्वर से विमुख करती है और सांसारिक बंधनों में बांधती है।

**हठयोग** : अपने अंगों और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए जो साधना की जाती है, उसे हठयोग कहते हैं।

**सहजयान** : बौद्ध तंत्र साधना की एक धारा 'सहजयान' कहलाती है। इसका मूल तत्व है, सहज। इसके माध्यम से विश्व को अत्यंत सहज रूप में देखने का उपक्रम किया गया है। यह सहज अवस्था ही इसके साधकों की साधनावस्था है।

## 1.10 उपयोगी पुस्तकें

**शुक्ल रामचंद्र** : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।

**दामोदरन के.** : भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

**द्विवेदी हजारीप्रसाद** : हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

**द्विवेदी हजारीप्रसाद** : हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

**मिश्र विश्वनाथ प्रसाद** : हिंदी साहित्य का अतीत (प्रथम भाग), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

**चतुर्वेदी परशुराम** : मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, भारती भंडार, इलाहाबाद।

**डॉ. नगेन्द्र (संपादक)** : हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

**शर्मा, रामविलास** : परंपरा का मूल्यांकन, राजकलम प्रकाशन, नई दिल्ली।

## 1.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1. ग

2. क) योग मार्ग, ख) ज्ञान मार्ग, ग) कर्म मार्ग, घ) भक्ति मार्ग

3. शुक्लजी का मानना है कि भक्ति का उदय मुस्लिम शासकों के उत्पीड़न से हताश हिंदू जाति के ईश्वर की ओर उन्मुख होने से हुई क्योंकि मनुष्य पराजय और पस्तहिम्मती में ईश्वर को ही याद करता है।

4. भक्ति साहित्य का सबसे पहले उदय दक्षिणा में आलवार और अडियार संतों द्वारा हुआ। ये भक्त कवि अधिकतर निम्नवर्ग के थे। इन्होंने भक्ति को शास्त्र के बंधन से मुक्त कर सामान्य जन तक पहुँचाया। इन्होंने अपने हृदय के सच्चे एवं भावपूर्ण उद्गार प्रकट किये।

5. क) ✓ ख) ✓ ग) ✓ घ) ✓ ङ) ×

6. ख

7. क, ग, घ,

8. हिंदू पंरपरा में जो लोग ईश्वर के सगुण रूप में विश्वास करते हैं वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर मनुष्य रूप भी धारण करता है। ईश्वर का मनुष्य (या अन्य प्राणी) के रूप में जन्म लेना ही ईश्वर का अवतार लेना है। हिंदू पुराणों के अनुसार परब्रहम के पालनकर्त्ता रूप विष्णु ने कुल 24 अवतार लिए हैं। राम और कृष्ण भी विष्णु के अवतार हैं। अवतार के इस सिद्धांत में विश्वास करना ही अवतारवाद है।

9. सगुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

   1. सगुण-साकार ईश्वर में विश्वास
   2. अवतारवाद में विश्वास
   3. भगवान की लीलाओं का गायन
   4. रागानुगा और वैधी भक्ति की व्यंजना
   5. राम और कृष्ण से संबंधित काव्य की रचना

10. ग 11. घ

12. क ✓ ख × ग ✓ घ ✓ ङ ×

13. 1. भाषा में लोक तत्व का प्रभाव।
    2. विषयानुकूल भाषा।
    3. विभिन्न मनोदशाओं और स्थितियों के चित्रण में सक्षम।

14. क ✓ ख ✓ ग × घ × ङ ×

15. क) ज्ञानाश्रयी शाखा, ख) राम भक्ति शाखा, ग) कृष्ण भक्ति शाखा, घ) कृष्ण भक्ति शाखा, ङ) प्रेममार्गी शाखा।

16. ज्ञानाश्रयी कवि जाति प्रथा में विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने की है तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर व्याप्त है। वह प्रत्येक मनुष्य की आत्मा में है। तब ब्राह्मण और शूद्र का अंतर क्यों? सभी मनुष्य एक ही तरह से उत्पन्न होते हैं। जन्मना उनमें कोई भेद नहीं होता, तब धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में जाति के अनुसार भेदभाव क्यों किया जाता है?

17. i) शरीअत, ii) तरीकत, iii) हकीकत और iv) मारफत

18. एकांत प्रेम-पूर्वक तथा आत्म समर्पण के भाव से भगवान के अनुग्रह पर जीवित रहते हुए उनकी लीला, गुण आदि में लीन रहना 'शुद्ध पुष्टि' है।

19. रामभक्त कवियों के अनुसार जब-जब समाज में अधर्म बढ़ता है और सज्जन कष्ट पाते हैं तब-तब ईश्वर मनुष्य रूप धारण कर धर्म की पुनः स्थापना करता है।

**अभ्यास**

i) सगुण भक्ति काव्य में सगुण-साकार ईश्वर की उपासना की जाती है, निर्गुण भक्ति काव्य में निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की जाती है।

ii) सगुण भक्त अवतारवाद में विश्वास करते हैं, निर्गुण भक्त अवतारवाद में विश्वास नहीं करते।

iii) सगुण भक्ति काव्य में रहस्य भावना का अभाव है, जबकि निर्गुण भक्ति काव्य में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई है।

iv) निर्गुण भक्त कवियों ने लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति की जबकि सगुण भक्त कवियों ने राम और कृष्ण की लीलाओं का गायन किया।

v) सगुण भक्त कवियों ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध नहीं किया जबकि निर्गुण कवियों ने इसका विरोध किया।

2. भक्ति काव्य में प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों लिखे गए। सूफी कवियों और राम भक्ति काव्य के अंतर्गत प्रबंध काव्य लिखे गए। सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम को आधार बनाकर प्रबंध काव्यों की रचना की। इसकी भाषा अवधी थी और दोहा-चौपाई दुंदों का प्रयोग किया गया था। तुलसीदास ने भी अपना प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' अवधी भाषा में लिखा था और उसमें उन्होंने भी दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया था।

भक्ति काव्य में मुक्तक की भी रचना प्रचुर मात्रा में हुई। ज्ञानाश्रयी शाखा और कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने तो मुक्तकों की भी रचना की जबकि रामभक्ति काव्य में प्रबंध और मुक्तक दोनों लिखे गए। मुक्तकों के लिए गेय पदों के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया, कवित्त, छप्पय आदि छंदों का प्रयोग किया गया। गेय पद विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं।

3. **भक्ति** : कृष्ण काव्य में रागानुगा भक्ति और राम भक्ति काव्य में वैधी भक्ति का प्रभाव है।

**उपासना** : रामभक्ति में दास्य भाव की उपासना और कृष्ण भक्ति में माधुर्य भाव की उपासना की प्रधानता है।

**लोकदृष्टि** : कृष्ण भक्ति काव्य में लोकरंजन और राम भक्ति काव्य में लोकमंगल की भावना व्यक्त हुई है।

**काव्य रूप** : कृष्ण भक्ति काव्य केवल मुक्तकों में रचा गया जबकि राम भक्ति काव्य में मुक्तक और प्रबंध दोनों लिखे गये।

**भाषा** : कृष्ण भक्ति काव्य की भाषा ब्रज है, जबकि राम भक्ति काव्य में अवधी और ब्रज दोनों का प्रयोग हुआ है।

4. 1. लोक प्रचलित भारतीय प्रेमकथाओं के आधार पर प्रबंध काव्यों की रचना,
   2. लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति;
   3. लोकजीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण;
   4. अवधी भाषा का प्रयोग; तथा
   5. दोहा-चौपाई छंद का प्रयोग।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 2 रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास

## इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

- 2.2.1 राजनीतिक परिस्थिति
- 2.2.2 सामाजिक परिस्थिति
- 2.2.3 धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थिति

2.3 रीतिकाव्य

- 2.3.1 रीति शब्द की व्याख्या
- 2.3.2 'रीतिकाव्य' से तात्पर्य
- 2.3.3 रीतिकाव्य के प्रमुख भेद
- 2.3.4 रीतिकाव्य का प्रवर्तन
- 2.3.5 रीतिकाल का नामकरण

2.4 रीतिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

- 2.4.1 रीति ग्रंथों का निर्माण
- 2.4.2 श्रृंगार वर्णन
- 2.4.3 वीरकाव्य
- 2.4.4 नीतिकाव्य
- 2.4.5 स्वच्छंद काव्य अथवा रीतिमुक्त धारा

2.5 शिल्प पक्ष

- 2.5.1 भाषा
- 2.5.2 छंद
- 2.5.3 अलंकार
- 2.5.4 काव्यरूप

2.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि

- 2.6.1 चिंतामणि त्रिपाठी
- 2.6.2 भिखारीदास
- 2.6.3 देव एवं पद्माकर
- 2.6.4 बिहारी
- 2.6.5 भूषण
- 2.6.6 घनानन्द

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 उपयोगी पुस्तकें

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई में रीतिकाव्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाएगा। इसे पढ़ने के बाद आप :

- रीतिकालीन परिस्थितियों को पहचान सकेंगे;
- 'रीति काव्य' का अर्थ समझ सकेंगे;
- रीतिकाव्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को रेखांकित कर सकेंगे;
- रीतिकाव्य की शिल्पगत विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे; और
- रीतिकालीन प्रमुख कवियों का परिचय दे सकेंगे।

## 2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ 'रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास' में रीतिकाव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की जाएगी और उन परिस्थितियों पर भी विचार किया जाएगा, जिनके कारण इस काल में एक विशेष प्रकार का काव्य लिखा गया। 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक का काल हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। 'रीति' शब्द का हिंदी में सामान्य अर्थ है-काव्य की प्रणाली, काव्य पद्धति, काव्य साँचा, लक्षण ग्रंथों की शैली का अनुकरण, रूढ़ कवि-मार्ग आदि। मूलतः यह शब्द लक्षण ग्रंथ-शैली के लिए प्रयुक्त होता रहा है। जिन ग्रंथों में काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन होता है उन्हें रीति ग्रंथ कहते हैं और जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं।

रीति संप्रदाय रचना में बाह्याकार को ही सब कुछ मान कर चला और रीति का अर्थ किया गया विशिष्ट पद रचना। हिंदी में रीति शब्द का प्रयोग रीति संप्रदाय की रीति से व्यापक लिया गया। यहाँ काव्य रचना संबंधी नियमों के विधान को ही 'रीति' नाम दे दिया गया। स्वभावतः इस काल की रचना में काव्य में वस्तु की अपेक्षा रूप या आकार को ही प्रधानता मिलती रही। कहना न होगा कि रीति शब्द का यह विशिष्टता मूलक प्रयोग हिंदी का अपना प्रयोग है। कारण, रीतिकाव्य के अनेक कवियों ने प्रायः काव्यरीति, अलंकार रीति आदि का इसी अर्थ में प्रयोग किया है :

- अपनी-अपनी रीति के काव्य और कविरीति (देव, शब्द रसायन)
- काव्य की रीति सिखी सुकवीन सो (भिखारीदास, काव्य निर्णय)
- कविता रीति कछु कहत हौं व्यंग्य अर्थ चितलाय (प्रतापसाहि, व्यंग्यार्थ कौमुदी)

पद्माकर ने अपने ग्रंथ 'पद्माभरण' में अलंकार चर्चा को स्पष्ट रूप से 'अलंकार रीति' नाम दिया। इसी आधार पर मिश्र बंधुओं ने इस काल का नामकरण 'अलंकृत काल' किया। अतः रीतिकाल का रीति शब्द आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मौलिक आविष्कार नहीं है-यह शब्द परंपरा में पहले से ही आ रहा था। केवल आचार्य शुक्ल ने इस रीति शब्द को व्यवस्थित अर्थ भर दिया। शुक्ल जी के 'रीतिकाल' को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'श्रृंगारकाल' नाम दिया। परंतु हिंदी में यह नाम ग्रहण नहीं किया गया। हिंदी के अधिकांश विद्वान रचना संबंधी नियमों के विवेचन के कारण इस काल को 'रीतिकाल' कहना ही समीचीन समझते हैं।

यहाँ रीति का मतलब 'पैटर्न' से है, इस काल में एक ही ढर्रे पर कविता लिखी गयी, पहले काव्य के लक्षण देना और फिर स्वनिर्मित उदाहरण देना। अधिकांश कवियों ने इसी पद्धति पर कविता लिखी। इन कवियों ने श्रृंगार को अपना मुख्य विषय बनाया। इस विषय के लिए मुक्तक काव्य रूप का सहारा लिया गया। अलंकारों का व्यापक प्रयोग इस काल की कविता में हुआ है।

इस काल की कविता पर तत्कालीन सामंतों की विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव था। कवि दरबार में रहते थे और अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए कविता लिखते थे। इस कारण विषय और प्रस्तुतीकरण दोनों ही दृष्टियों से इस काल की कविता ह्रासोन्मुख हुई।

रीतिकाव्य सामंतों के आश्रय में लिखा गया। अतएव उसकी अंतःप्रेरणा के स्वरूप को कवियों और आश्रयदाताओं दोनों के पारस्परिक संबंध ज्ञान से ही समझा जा सकता है। वास्तव में, हिंदी रीतिकाव्य परंपरा हिंदी प्रदेशों के विकृत सामंतवाद की विशिष्ट अभिरुचि की परंपरा है। यह सामंत वर्ग ब्रजभाषा काव्य के अभ्युदय से पहले ही यहाँ विद्यमान था। इसलिए यह परंपरा पहले संस्कृत में मिलती है। यही परंपरा समय पाकर केशवदास, चिंतामणि में फूट पड़ती है। जिस समाज में यह साहित्य रचा गया उसका नेतृत्व सामंतों के हाथ में था, उन्हीं के दरबारी कवियों ने उसे पोषित किया। अतः वह 'दरबारी काव्य जनता की काव्य रुचि' का प्रतीक नहीं है।

इन सब बातों की जानकारी आप इस इकाई में प्राप्त करेंगे। अगले खंड की इकाइयों में आप रीतिकालीन प्रतिनिधि कवियों का अलग से अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद रीति काव्य एक स्वरूप आपके सामने स्पष्ट होगा। इसके बाद आप कवि की रचनाओं को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

## 2.2 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य अपने युग की उपज होता है। निश्चित रूप से साहित्य का सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक और साहित्यिक आधार होता है। इस आधार पर किन्हीं विशेष वर्गों की रुचियों-स्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

वास्तविकता यह है कि सामाजिक-आर्थिक जीवन से अलग हवा में काव्य-रुचि का निर्माण नहीं होता है। रीतिकाव्य की परंपरा विशेष स्थिति परिस्थिति में फूली-फली थी और सामंती व्यवस्था के विकृत रूप की वह प्रत्यक्ष प्रतिच्छाया थी। रीति काव्यकार रसवादी-ध्वनिवादी नहीं थे; मूलतः वे चमत्कारवादी, कलावादी, शरीरवादी थे। इसी चमत्कारवाद ने नायिका-भेदी काव्य-साहित्य को जन्म दिया।

साहित्य की प्रवृत्तियों को ठीक से समझने के लिए उस युग विशेष को जानना बहुत जरूरी होता है। इसी उद्देश्य से रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों पर विचार करने से पहले रीतिकालीन परिस्थितियों का अवलोकन किया जा रहा है। इस भाग में हम तत्कालीन घटनाओं का वर्णन नहीं करने जा रहे हैं, बल्कि तत्कालीन जीवन की उन आंतरिक प्रवृत्तियों को रेखांकित करने जा रहे हैं, जिनसे रीतिकाव्य प्रभावित हुआ।

रीतिकाल के अधिकांश कवि राजदरबारों से संबद्ध थे। अकबर के बाद के मुगल सम्राट और उनके दरबारी विलासी थे। भारत के विभिन्न भागों के छोटे-छोटे सामंत मुगल दरबार में व्याप्त विलासिता की नकल करते थे। इनके लिए कविता मनोरंजन का साधन थी। इन सामंतों की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखकर इस काल की अधिकांश कविताएँ लिखी गईं। इस काल की कविता पर विचार करने से पहले, आइए, हम उन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करें, जिनसे प्रभावित होकर रीतिकाव्य लिखा गया। इन परिस्थितियों को तीन उपभागों में विभक्त किया जा रहा है-राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक।

### 2.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

सन् 1643 ई. में भारत के सिंहासन पर शाहजहाँ आसीन हुआ। इस काल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। जहाँगीर ने जो साम्राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसकी वृद्धि की। उसका दक्षिण में अहमद नगर, गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों पर अधिकार हो गया। उत्तर पश्चिम में कंधार किला मुगलों ने जीत लिया। अब मुगलों के पास 22 सूबे थे-जिनकी आमदनी काफी ज्यादा थी। देश में शांति थी, खजाना मालामाल था। कला, संगीत-वैभव पर था और मयूर सिंहासन तथा ताजमहल का निर्माण हो गया था। अपनी शक्ति एवं सीमा बढ़ने के लिए मुगलों ने मध्य एशिया पर आक्रमण किए पर सफलता नहीं मिली। सन् 1658 में शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके जीवन काल में ही उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध रीतिकाल के आरंभ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। शाहजहाँ के बड़ पुत्र दाराशिकोह को रौंद कर औरंगजेब ने गद्दी हथिया ली। लेकिन औरंगजेब का काल अशांति एवं कलह में ही बीता। उसके सामने ही आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूबों में विद्रोह हुए। आगरा में जाटों ने, अवध में राजपूतों ने, इलाहाबाद में जमींदारों ने खुला विद्रोह कर दिया। बुंदेलखंड में चम्पतिराय के पुत्र छत्रसाल और महाराष्ट्र में मराठा शिवाजी ने स्वतंत्र रूप से सिर उठाया। जसवंत सिंह के मरते ही मेवाड़ और मारवाड़ ने मुगलों के खिलाफ हल्ला बोल दिया। पंजाब में सिक्खों का असंतोष तीव्र हुआ- गुरु तेग बहादुर तथा गुरु गोविंद सिंह के पुत्रों की हत्या को लेकर सिक्ख जाति बेचैन हो गई। दक्षिण की दशा और भी खराब थी। इस काल में मराठा शक्ति का उदय हुआ। नादिरशाह का तेज हमला हुआ और सेना अपना पराक्रम खो बैठी। इस माहौल में बंगाल का अलावर्दी खां और दक्षिण में आसफजाह स्वतंत्र हो गए। कुछ दक्षिण के सामंत गृह कलह में उलझ गए और अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली के हमले शुरू हो गए। उसने मराठों की शक्ति को ध्वस्त किया और अंग्रेजों का व्यापार फैलाने का अवसर मिला। अँग्रेजों का आधिपत्य उत्तरी भारत में फैला और मुगल साम्राज्य दिल्ली आगरा तक सीमित हो गया। इस समय का इतिहास भी दरबारों-अंतःपुरों के षड्यंत्र का इतिहास ही बनकर रह गया। इस प्रकार पूरा देश युद्धों और गृह कलह से पीड़ित हो उठा, जिसके कारण व्यवस्था पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई। औरंगजेब के व्यक्तित्वहीन संतानें पैदा हुईं, जो कर्मचारियों के हाथों खिलौना बनकर टूट गए। राजनीतिक स्थिति का इस काल में पूरा चित्र यह बन गया कि देश पदाक्रांत, विलास, जर्जर और विकृत सामंतवाद की इच्छाओं का पतन-प्रतीक बन गया।

### 2.2.2 सामाजिक परिस्थिति

आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से समाज दो वर्गो में विभक्त था- उत्पादक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अंतर्गत कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे तथा उपभोक्ता वर्ग के अंतर्गत राजा से लेकर उनका दरबान और दास तक शामिल था। इन दोनों के बीच एक बड़ा अंतर था, एक शासित था दूसरा शासक, एक शोषित था दूसरा शोषक। इनके अतिरिक्त विद्वानों का एक वर्ग था, जिनका संबंध निम्न और मध्य वर्ग से था, पर जीविका के लिए वे उच्च वर्ग से जुड़े होते थे उनमें भी उच्च वर्ग के संस्कारों और आशा आकांक्षाओं का प्राबल्य रहता था।

रीतिकाव्य का संबंध निम्न वर्ग से नहीं है, क्योंकि इस काल की नायिका खेत में काम करती हुई या गोबर पाथती हुई स्त्री नहीं हो सकती थी। इस काल की कविता का मुख्य संबंध बादशाहों, राजाओं और सामंतों की काम क्षुधा की पूर्ति से था। इसलिए हम इसी वर्ग की मनोवृत्तियों पर ज्यादा ध्यान देंगे।

शाहजहाँ के काल में मुगल दरबार अपने ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध था। बादशाह और उनकी बेगमों के अलावा अमीरों और कर्मचारियों का जीवन भी ऐश्वर्यपूर्ण था। प्रांतीय सामंत भी मुगल दरबार की नकल करते थे। अवध के नवाबों और जयपुर, मारवाड़ आदि के राजाओं का जीवन विलासिता में डूबा हुआ था।

इस विलासिता की सबसे बड़ी विशेषता थी- खोखलापन। औरंगजेब की मृत्यु के बाद वास्तविक वैभव का स्थान वैभव प्रदर्शन ने ले लिया। इस वैभव प्रदर्शन ने विलासिता को जन्म दिया और दरबारी शिक्षा भी आशिकाना गजलों, फारस की अश्लील प्रेम कथाओं तक सीमित रह गई। रीतिकाल के कवि 'पद्माकर' का यह वर्णन उस काल की स्थिति परिस्थिति का परिचायक है :

गुलगुली गिल में गलीचा है गुनीजन है, चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी, सेज है, सुराही है सुरा है और प्याला है।
शिशर के पाला को व्यापत कसीला तिन्हैं, जिनके अधीन एते उदित मशाला है।
तानतुक ताला है, विनोद के रसाला हैं, सुबाला है, दुशाला है, विशाला चित्रशाला है।

ललित क्रीड़ाओं का विलास अंतःपुर में गूंजता था चौसर और गजफ़ा के खेल मनोरंजन करते थे। तरह-तरह के कबूतर, लाल, तोता, मैना से निवास गूंजते थे।

रईसों, सेठों, जमींदारों की स्थिति के ठीक विपरीत कृषकों-मजदूरों की स्थिति थी। समाज व्यवसाय एवं पेशों के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में बँट गया था पर किसान-मजदूर का जीवन दयनीय था। अन्न उगाने वाले को अन्न की कमी थी और दरिद्रता इनको तोड़ रही थी। ज्यादातर आबादी किसानों की थी, जो दिनभर काम करने के बाद भी फटे हाल था। मुगल वैभव का पूरा खर्च इन किसानों के बल पर ही चलता था। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में- 'सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे। इन्हीं के आँसू और रक्त की बूंदे जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थीं। राजा के अबाध अपव्यय की क्षति पूर्ति अनेक प्रकार के उचित अनुचित कर्मों द्वारा की जाती थी, कर्मचारीगण राजा का और अपना उदर किसानों का खून चूसकर भरते थे। सम्राट, सूबेदार, फौजदार, जमींदार आदि सभी का शिकार बेचारा किसान था।' (रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 13) मजदूरों-कारीगरों को बेकारी और बेगारी ने तबाह कर दिया था। भयंकर अकाल तथा महामारी से जीवन जीना दूभर हो गया था। देश की धन-समृद्धि के नाश के साथ शिल्प, संस्कृति की हालत भी बिगड़ गई थी।

सामाजिक पतन का यह काल नैतिक मूल्यों के पतन का काल भी था। हिंदू-मुसलमान दोनों जर्जरित होकर नैतिक बल खो बैठे थे। जहाँदार शाह जैसे बादशाहों ने मुगल गौरव को मिट्टी में मिला दिया था। दरबार छल-कपट के केंद्र थे। नैतिक बल से हीन सम्राट, अमीर भाग्यवादी बन गये थे। विलास की रंगीनी में निराशा की कालिमा जीवन को घेर कर बैठ गई थी।

कविता पर इसका सीधा असर पड़ा। डॉ. नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति का सटीक मूल्यांकन किया है। 'भीषण राजनीतिक विषमताओं ने बाह्य जीवन के विस्तृत क्षेत्र में स्वस्थ अभिव्यक्ति और प्रगति के भी मार्ग अवरुद्ध कर दिए थे। निदान लोगों की वृत्तियाँ अंतर्मुखी होकर अस्वस्थ काम-विलास में ही अपने को व्यक्त करती थीं।' (रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 15)।

### 2.2.3 धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थिति

इस काल का धर्म भी विलासिता से प्रभावित हुआ। हिंदी प्रदेश में वैष्णव धर्म और उसमें भी कृष्णा भक्ति शाखा तेजी से फैली, क्योंकि यह उस युग की प्रवृत्ति के अनुकूल थी।

कृष्ण संप्रदाय के कई उप संप्रदाय सामने आए। बल्लभ संप्रदाय में विट्ठलनाथ जी की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों ने गोकुल, कामबन, कॉकरौली, श्रीनाथद्वारा, सूरत, बंबई और काशी में अपनी-अपनी गद्दियाँ बना लीं। इस प्रकार की गद्दियाँ विलासिता का केंद्र बन गईं। सेवा-अर्चना की अनेक पद्धतियों का आविष्कार हुआ और भगवान ऐश्वर्य की मूर्ति बन गए। इन गद्दियों के गोस्वामियों का संपर्क राजाओं और सामंतों से बढ़ा। वहाँ से ऐश्वर्य के साधन उपलब्ध होते थे।

इस युग का धर्म अंधविश्वास का पर्याय बन गया। अशिक्षित जनसमुदाय के लिए भक्ति-भावना धर्म के बाह्यांगों तक सीमित थी। ये अपने अंधविश्वास के कारण संतों और पीरों के पास जाते थे और सब प्रकार की रीतियों और अंध परंपराओं का पालन करते थे। ये संत और पीर भोली-भाली जनता का खूब शोषण करते थे। इसके अतिरिक्त इस काल में 'अवतारों' की लीलाओं का खूब प्रचलन हुआ। कृष्ण लीला और राम लीला का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार जनता की धर्म भावना उनके मनोविनोद का साधन भी बन गया। भक्तिकाल में माध्व, निंबार्क, चैतन्य तथा बल्लभ संप्रदायों में राधा की भक्ति भाव से प्रधानता थी किंतु इस काल में राधा को परकीया भाव की नायिका मात्र रह जाना पड़ा। नायिका-नायक भेद को रीतिकाल के कवियों ने परकीया भाव में खोल लिया और कहा-

> 'आगे के सुकवि रीझि हैं तौ कविताई,
> न तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है।'

इस काल की कविता में भक्ति का यही रूप सामने आता है। इस युग के कवि सूरदास और नन्ददास की परंपरा का अनुकरण नहीं कर रहे थे, बल्कि उनकी श्रृंगारिकता को विकृत रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। यह उस काल के बौद्धिक ह्रास का परिणाम है।

## कला और संगीत

इस काल की स्थापत्य कला, चित्रकला तथा संगीतकला पर भी विलासिता का प्रभाव स्पष्ट है। शाहजहाँ के काल में स्थापत्य और चित्रकला में अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ी। पर औरंगजेब के शासन काल में कला का ह्रास हुआ। अठारहवीं शताब्दी में अवध के नवाबों ने स्थापत्य और चित्रकला की मृत परंपरा को जीवित करने का प्रयास किया, पर इनमें मौलिक प्रतिभा का अभाव है।

संगीत में भी मौलिकता नहीं थी। अवध में संगीत को प्रश्रय मिला, पर अन्य क्षेत्रों की भाँति इस काल के संगीत में भी गंभीरता का अभाव और विलासिता का प्रभाव दीख पड़ता है। इस काल में संगीत भी अलंकरण और रसिकता में डूब गया।

कला के चमत्कारवाद ने इस युग की संपूर्ण चेतना को खास ढंग से व्यक्त किया है। कला में सोने का रंग, मणियों का जड़ाव-नक्काशी और तराश का प्रयोग बढ़ा। स्थापत्य में मूर्ति एवं चित्रण कला की विशेषताएँ प्रबल हो उठीं। ताजमहल में मूर्ति कला का विस्तार है तो दीवाने खास में चित्रण-कला का रंग। औरंगजेब ने ललित कलाओं को प्रश्रय कम दिया और विशिष्ट ढंग की मसजिदें और मकबरे बनवाए। लाहौर की जामा मस्जिद कला की दृष्टि से नकल ही थी। स्थिति की दयनीयता के कारणा कला क्षेत्र का विकास अवरुद्ध हो गया। चित्रकला पर पहले तो अरबी फारसी का दबदबा रहा, पर बाद में इसका भारतीयकरण हो गया। राजपूत शैली की चित्रकला का विकास राजस्थानी सामंतों के दरबार तथा प्रेरणा से हुआ। चित्रों में पशु-पक्षी तथा प्रकृति वैभव का उभार उमड़ पड़ा, किंतु अलंकरण की अतिशयता ने इस कला को निर्जीव बना दिया। व्यक्ति चित्रों तक में सहजता न आ सकी, कोरा रंग-प्रदर्शन ही शेष रह गया।

राजस्थानी चित्रकला-शैली के साथ इस काल में कांगड़ा-शैली का विकास हुआ। केशव, बिहारी, मतिराम, देव का काव्य चित्रों में उतारे गए कला स्त्री-सौंदर्य के अंकन में डूबे रहे। रीतिकाव्य का इन स्त्री-चित्रों से सीधा संबंध है, यह न भूलना चाहिए।

**बोध प्रश्न 1**

1. निम्नलिखित वक्तव्यों के आगे सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाएँ।

   क) रीतिकालीन उच्च वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था। ( )

   ख) रीतिकाल में धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था। ( )

   ग) रीतिकाल में किसान समृद्ध था। ( )

   घ) इस काल में नैतिकता का ह्रास हो गया था। ( )

2. रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

3. रीतिकाल का समय

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

4. रीतिकालीन चित्रकला पर चार पंक्तियों में लिखिए :

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

5. रीतिकाल का सामाजिक ढाँचा सामंतवाद की विकृति का परिणाम था। इस कथन को ध्यान में रखते हुए पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

   ..........................................................................................................

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 2.3 रीतिकाव्य

17वीं शताब्दी के मध्य से 19वीं शताब्दी के मध्य तक हिंदी में जो काव्य लिख गया, उसे रीतिकाव्य कहा जाता है।

### 2.3.1 रीति शब्द की व्याख्या

रीति शब्द के अर्थ है-नियम, लक्षण, प्रणाली अथवा पद्धति। रीति शब्द की व्युत्पत्ति रीङ् धातु से है, जिसका अर्थ गति, चाल, मार्ग, पद्धति एवं प्रणाली है। रीतिकाल तथा रीतिकाव्य के साथ जब रीति शब्द जुड़ता है तो वह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् एक विशेष प्रकार के साँचे अथवा 'पैटर्न' के आधार पर रचे हुए काव्य की ओर इंगित करता है। यहाँ पर 'रीति' शब्द रीति संप्रदाय का वाचक नहीं है, जिसका प्रवर्तन आचार्य वामन ने किया था। वामन ने विशेष प्रकार की पद रचना को 'रीति' कहा था। यह पद रचना काव्य गुण पर आधारित थी। वामन ने इसे ही काव्य की आत्मा बताया/माना था। वामन के पश्चात् यह 'रीति' मात्र एक शैली का ही पर्याय बन कर रह गई थी। हिंदी के रीतिकाल का रीति शब्द एक व्यापक अर्थ का परिचायक है, जो रस, अलंकार, शब्द शक्ति, छंद आदि सभी काव्यांगों के आधार पर एक बंधी-बँधाई परिपाटी का वाचक है।

### 2.3.2 'रीतिकाव्य' से तात्पर्य

वे रचनाएँ जो रस, अलंकार, शब्दशक्ति, छंद आदि विविध काव्यांगों को आधार मान कर लिखी जाती हैं और इसके फलस्वरूप उनका अपना एक विशेष ढाँचा, स्वरूप एवं 'पैटर्न' होता है, रीतिकाव्य कहलाती हैं। रीतिकाव्य के रचनाकार की दृष्टि किसी एक अथवा एक से अधिक काव्यशास्त्र संबंधी ग्रंथ पर टिकी रहती है और वह रचना संबंधी नियमों को आदर्श मानते हुए अपनी कृति को जन्म देता है। उदाहरण के तौर पर केशवदास की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' काव्यशास्त्र के ग्रंथ हैं और उनके 'रामचंद्रिका' आदि ग्रंथ 'रीतिकाव्य' हैं। इसी प्रकार देव के 'भाव विलास', 'रसविलास', आदि ग्रंथ काव्यशास्त्र के हैं और 'देवशतक' आदि रीतिकाव्य है। पद्माकर के पद्माभरण और जगद् विनोद काव्यशास्त्र ग्रंथ और 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' और 'प्रताप सिंह विरुदावली' आदि ग्रंथ रीतिकाव्य कहलाते हैं। 'रीति ग्रंथ' और 'रीतिकाव्य' इन दो शब्दों में प्रायः समानता दिखाई देती है परंतु वास्तव में दोनों भिन्न हैं। रीति ग्रंथ शब्द लक्षण ग्रंथों के लिए और 'रीतिकाव्य' लक्ष्य ग्रंथों के लिए प्रयुक्त होता है। रीति निरूपण की दृष्टि से यह शुद्ध कला है। इसमें दो तरह के कवि दिखाई देते हैं- प्रथम वर्ग तो ऐसे कवियों का है, जिन्होंने लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया और दूसरा वर्ग उन कवियों का है, जो रीति-शास्त्र में पारंगत होने पर भी लक्षण उदाहरण के चक्कर में न पड़कर के लक्ष्य ग्रंथों की रचना करते रहे। इस हिंदी रीतिकाव्य के पीछे एक समृद्ध रीतिशास्त्र की ताकत थी, जिसमें काव्य के सभी संप्रदायों का सूक्ष्म-गहन विश्लेषण विवेचन हो चुका था। मम्मट के बाद समन्वय का रंग चुक गया और शेष रह गया था- संग्रह-अनुवाद। रीतिकाल के कवि आचार्य यही कार्य करते रहे, उनमें कुछ भी मौलिक करने की न शक्ति थी न साहस। ऐसी स्थिति में रीतिकाव्य के कवि मौलिकता को चिंतन में न ला सके। वे तो मात्र अनुकरण के प्रति आसक्त रहे और ऐसा अनुकरण जो कलाकारी एवं चमत्कारवाद के प्रदर्शन के लिए दरबार की आवश्यकता थी। फलतः रस का स्वरूप, रस, निष्पत्ति, काव्यात्मक, रस ध्वनि-अलंकार के संबंध का कुलपति-भिखारी दास आदि को छोड़कर किसी भी आचार्य कवि ने उल्लेख तक नहीं किया। मूलतः रीतिग्रंथों में तीन प्रकार की निरूपण शैली काम में लाई गई :

1. काव्य-प्रकाशकार मम्मट की निरूपण शैली- इस शैली में काव्य के सभी अंगों पर कम ज्यादा प्रकाश डाला जाता था।

2. रस मंजरी-'शृंगार-तिलक आदि की शृंगारपरक नायिका भेद वाली शैली।

3. जय देव के 'चंद्रालोक' की अलंकार निरूपण शैली- इस शैली में अलंकारों के लक्षण उदाहरण-सूत्रबद्ध शैली में दिए गए हैं। प्रथम शैली में चिंतामणि का 'कवि कुलकल्पतरु' 'काव्य विवेक' कुलपति मिश्र का 'रस रहस्य', देव का 'काव्य रसायन', प्रताप साही का 'काव्य विलास' आदि आते हैं। द्वितीय शैली के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं, जिनका प्रतिपाद्य विषय शृंगार हैं। इन ग्रंथों में केशव की 'रसिक प्रिया', 'रस विलास' बेनी प्रवीन का 'नवरस तरंग' आदि आते हैं। तीसरी शैली में 'चंद्रालोक' और 'कुवलयानंद' जैसे अनुकरण मूलक अलंकार ग्रंथ आते हैं। इस शैली में जसवंत सिंह का 'भाषा भूषण' सुरति मिश्र की 'अलंकार माला', पद्माकर का 'पद्माभरण' आदि उल्लेखनीय ग्रंथ है। इन ग्रंथों ने अलंकारों का स्वच्छ उदाहरणों से विवेचन किया। इस प्रकार इन तीन प्रकार की शैलियों ने रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार पुष्ट किया है।

## 2.3.3 रीतिकाव्य के प्रमुख भेद

रीतिकाव्य के तीन प्रमुख भेद हैं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त।

**रीतिबद्ध** : जो कवि रस, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्यशक्ति का उपयोग करते थे, वे रीतिबद्ध कवि कहलाते हैं। यह वर्ग रीतिकाल का सबसे विशाल वर्ग है। इस काल के अधिकांश कवि रीतिबद्ध हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों को 'रीति ग्रंथकार कवि' शीर्षक अंतर्गत रखा है जिसमें उन्होंने 57 कवियों की चर्चा की है। रीतिबद्ध काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस वर्ग के कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्य-शास्त्र की शिक्षा देना था। उनके कवि कर्म का मात्र यही उद्देश्य था। डॉ. नगेन्द्र ने इन कवियों को 'रीतिबद्ध' नाम देकर 'रीतिकार' अथवा 'आचार्य कवि' नाम दिया है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम, जसवंत सिंह, देव, कुलपति मिश्र, भिखारीदास, भूषण पद्माकर, भट्ट आदि रीतिबद्ध कवि हैं।

रीतिबद्ध कवियों के दो उपवर्ग भी है- (1) सर्वांग निरूपक और (2) विशिष्टांग निरूपक। जो कवि काव्य के लक्षण से लेकर शब्द शक्ति, गुण दोष, रसरीति, छंद-अलंकार आदि उसके सभी अंगों का विवेचन करते हैं, उन्हें सर्वांग निरूपक और जो एक या एक से अधिक, परंतु थोड़े, अंगों को विवेचित करते हैं, उन्हें विशिष्टांग निरूपक की संज्ञा दी जाती है। जैसे देव सर्वांग निरूपक है और पद्माकर विशिष्टांग निरूपक। पद्माकर ने केवल रस तथ अलंकार का निरूपण किया है।

**रीतिसिद्ध** : जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखे, परंतु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे, उनको रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है। इस कोटि के कवियों में बिहारी सर्वप्रथम हैं। इस श्रेणी के अन्य कवियों में बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, रामसहाय, सेनापति, विक्रम आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

**रीतिमुक्त** : जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही वे रीतिकालीन परंपरा एवं प्रवृत्ति से प्रभावित हुए, बल्कि इसके विपरीत स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते रहे,

उन कवियों को रीतिमुक्त कवि माना जाता है। घनानन्द, आलम, बोधा, द्विजदेव आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इन कवियों ने जो काव्य लिखा है, वह रूढ़ि विरोधी, स्वच्छंद प्रेम भावना का काव्य है। इसमें प्रेम का अनुभूति पक्ष प्रधान है तथा यह किसी भी प्रकार की शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन नहीं करता है। इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप-सौंदर्य चित्रण, विरह वर्णन है। इसमें स्वानुभूति का स्वर प्रधान रूप से व्यंजित हुआ हैं इन सभी कवियों ने रीति-स्वच्छंद परंपरा में मौलिक प्रतिभा का काव्य सृजन किया है।

## 2.3.4 रीतिकाव्य का प्रवर्तन

हिंदी में सबसे पहले केशवदास ने काव्य के सभी अंगों का शास्त्रीय ढंग से विवेचन किया। उनके इस ग्रंथ का नाम 'कवि प्रिया' है। पर रीतिकाव्य की शुरूआत केशवदास से न मानकर चिंतामणि से मानी जाती है, जिनका काल केशवदास से 50 वर्ष बाद आता है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि केशवदास ने जिस काव्य शास्त्रीय परंपरा के आधार पर काव्य का विश्लेषण किया वह पुरानी पद्धति थी और हिंदी के रीति कवियों ने उसका अनुसरण नहीं किया। केशव अलंकार को प्रधान मानने वाले चमत्कारी कवि थे, जो अलंकार और अलंकार्य का भेद नहीं कर सके थे। हिंदी के कवियों ने उस पुरानी परिपाटी को छोड़ 'चंद्रालोक' और 'कुवलयानंद' की परंपरा का अनुसरण किया। हिंदी में इस परंपरा का अनुसरण करने वाले पहले रीतिकवि चिंतामणि त्रिपाठी हैं, जिन्होंने 1643 ई. के आसपास 'काव्य विवेक', 'कविकल्पतरु' और 'काव्य-प्रकाश' ग्रंथ लिखे।

## 2.3.5 रीतिकाल का नामकरण

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल के नामकरण के प्रश्न पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसे रीतिकाल, श्रृंगारकाल, कला काल, अलंकृत काल आदि नाम दिए गए हैं।

मिश्रबंधुओं ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है। रमाशंकर शुक्ल रसाल ने इसे 'कला-काल' कहा है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'शृंगार काल' कहा है। पर इन सभी नामों में आचार्य रामचंद शुक्ल दिया गया नाम 'रीतिकाल' सर्वमान्य है। हम इस इकाई में इसी सर्वमान्य नाम का प्रयोग कर रहे हैं।

**बोध प्रश्न 2**

6) 'रीतिकाव्य' से आप क्या समझते हैं? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

7) रीतिकालीन पाँच कवियों का नाम लिखिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

8) 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' कवि में क्या अंतर है। पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

9) रीतिकाव्य की तीन शास्त्रीय शैलियों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

## 2.4 रीतिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

संस्कृत की दरबारी काव्य परंपरा का रीतिवाद इस काल की स्थिति परिस्थिति का सहारा पाकर प्रबल हो गया। इस रीतिवादी प्रबलता में प्रधान रूप से अलंकार-निरूपण, शृंगार चित्रण, बारहमासा वर्णन तथा नायक-नायिका भेंद की परंपरा को प्रश्रय दिया। संस्कृत की रीतिवादी परंपरा का अनुकरण इस हद तक किया गया कि केशवदास, चिंतामणि, मतिराम एवं भूषण आदि ने कथ्य और कथन दोनों की भंगिमा में सामंत वर्ग की सौंदर्याभिरुचियों का पोषण किया। यह सामंत वर्ग 17-18वीं शताब्दी में इतना पतित हुआ है कि दरबारी काव्य परंपरा पर उस पतन की सीधी छाप दिखाई देती है। इस दरबारी काव्य परंपरा का सीधा विरोध रीतिकाल की अंतिम सीमा रेखा पर आधुनिक काल के प्रवर्तक भारतेंदु बाबू ने किया और इसकी रूढ़ियों से साहित्य को मुक्त किया। इस काल में यह भी सिद्ध हुआ कि रीतिकाव्य का शृंगार रसवादी न होकर चमत्कारवादी, झूठा एवं कृत्रिम है। जीवन एवं काव्य के प्रति इनकी प्रवृत्तियों का दृष्टिकोण केशव के इस दोहे में देखा जा सकता है-

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त।।

### 2.4.1 रीति ग्रंथों का निर्माण

रीति ग्रंथों का निर्माण इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति है। रीतिग्रंथ का मतलब उस लक्षण ग्रंथ से है, जिसमें काव्यांगों का लक्षण-निरूपण करके उनके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित पद दिए जाते थे। इस काल के कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली बना ली थी कि पहले दोहे में लक्षण लिखते थे और फिर उसके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित कविता उपस्थित करते थे। इसलिए इस काल का रचनाकार आचार्य और कवि दोनों का काम एक साथ निबाहने का प्रयत्न करता था। लेकिन इससे सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा असर पड़ा। साथ ही इस काल के लक्षण-ग्रंथों में नए सिद्धांत, नए मत सामने नहीं आए, बल्कि पुराने मतों को ही दुहराया गया।

इन रीतिकालीन विद्वानों में उस प्रौढ़ एवं संतुलित विवेचन शक्ति का अभाव था, जो एक आचार्य के लिए जरूरी होता है। अतः ये कवि आचार्य कोटि में नहीं आ सकते।

इस प्रवृत्ति का मूल भी इस काल के सामंतों की मनोवृत्ति में ढूँढा जा सकता है। ये साहित्य के पारखी नहीं थे, बल्कि ऐसे विलासी रईस थे, जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न तो शक्ति थी, न ही उन्हें अवकाश था। फिर भी काव्य को समझने के लिए उसके विषय में थोड़ा बहुत जानना भी जरूरी था। इस काल के कवियों ने उनकी इसी आवश्यकता की पूर्ति की।

इन रीति ग्रंथों के रचयिता सहृदय और कुशल कवि थे। उनका मूल उद्देश्य काव्य की रचना करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण करना। अतः उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से रस और अलंकार आदि के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। पर ध्यान रखना होगा कि इस काल में कवियों ने 'शास्त्र' पहले लिखा है- कविता बाद में। प्रेम-शृंगार के वर्णन में इन कवियों का भावनालोक उदात्त एवं परिपरिष्कृत से कोसों दूर है। फूहड़पन और कुरुचि का काव्य में साम्राज्य है।

## 2.4.2 शृंगार वर्णन

इस काल के साहित्य में शृंगार की प्रधानता है। इसका कारण भी उस काल के सामाजिक संदर्भों, साहित्यिक परंपराओं और राजाओं की मनोवृत्ति में ढूँढा जा सकता है। सामंत वर्ग काम देवता का उपासक था और नारी में काम रीति का स्वाद ही इन्हें प्रिय था। ये अपने जीवन में ही नहीं कविता में भी शृंगार देखना चाहते थे। अतः इस काल के कवियों ने शृंगार को केंद्र में रखकर कविता लिखी। पर इस काल के शृंगार (स्वच्छंद धारा को छोड़कर) में संतुलित दृष्टि का अभाव है। इसमें प्रेमिका का व्यक्तित्व नहीं उभर सका है। इस काल के शृंगार का आधार है- नारी का मांसल शरीर, सूक्ष्म आत्मा नहीं।

मादकता रीतिकालीन शृंगार की उल्लेखनीय विशेषता है। रीतिकालीन कवि अपनी कविता को मादकता के तत्वों से परिपूर्ण रखना चाहता था। इसीलिए कवि आडंबरपूर्ण वातावरण और भड़कीली वेश-भूषा का वर्णन करता है। उनकी नायिकाएँ विशाल महलों में रहती हैं, उनकी सेज की चादरें चाँदनी को लज्जित करती हैं। ऐसी नारी उन्हें पसंद नहीं जिसमें कटाक्ष निक्षेप की क्षमता न हो।

रीतिकालीन काव्य में राधा और कृष्ण का नाम बार-बार लिया जाता है। पर नाम ले लेने भर से ये भक्त कवि नहीं हो सकते, क्योंकि इनकी मूल प्रेरणा भक्ति नहीं है। प्रधानता ऐहिकतापरक शृंगार की है। भक्ति भावना का इस्तेमाल कवियों ने ढाल के रूप में किया है। रीतिकालीन के एक कवि ने इस संबंध में एक बड़ी स्पष्ट बात कही है :

> आगे के सुकवि रीझि हैं, तो कविताई,
> न तौ राधिका कानह सुमिरन कौ बहानौ है।

अर्थात् आगे के कवि अगर हमारी इस कविता को अच्छा समझें, तो ठीक है। अगर यह अच्छी कविता नहीं बन पड़ी तो राधा और कृष्ण को याद करने का बहाना तो है ही।

वस्तुतः इस काल में आकर राधा कृष्ण सामान्य नायक-नायिका के रूप में परिणत हो गये। डॉ. नगेन्द्र ने इस 'भक्ति' को कवियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता माना है। जब कवि अतिशय शृंगार वर्णन के कारण मन में अपराध भावना का अनुभव करते थे तो राधा कृष्ण का स्मरण उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता था और उनके लिए सामाजिक कवच का काम भी करता था।

### 2.4.3 वीरकाव्य

रीतिकाल में सामान्य रूप से श्रृंगार रस की रचनाओं की ही प्रधानता थी, तदापि श्रृंगार के साथ-साथ वीर रस की धारा भी अपनी मंद-मंथर गति से बह रही थी। शाहजहाँ का शासनकाल तो पर्याप्त सुख-शांति का युग था परंतु औरंगजेब के गद्दी पर बैठते ही विपत्ति के बाद मंडराने लगे थे। उसकी धर्मांधता और कट्टर नीति ने संपूर्ण वातावरण को विक्षुब्ध कर दिया था। उसके नित नए अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप देश के कुछ वीर शासक औरंगजेब के विरुद्ध खड़े हो गए थे। दक्षिण में महाराज शिवाजी, पंजाब में गुरु गोविंद सिंह और राजस्थान में महाराज जसवंत सिंह तथा मध्य प्रदेश में छत्रसाल आदि ने अपनी तलवारें संभाल ली थीं। इनकी वीरता की भावना से प्रेरित होकर तथा इनके वीरत्व को सजग बनाये रखने के लिए वीर-रसात्मक काव्य रचना को पर्याप्त बल मिलने लगा था। मुख्य धारा श्रृंगारपरंक होने भी भूषण, सूदन, पद्माकर, गोरेलाल, गुरु गोबिंद सिंह आदि कवि वीर काव्यों के सृजन में गहरी रुचि लेने लगे थे। इन कवियों की ओजपूर्ण रचनाएँ पढ़ कर वीर योद्धाओं की नसों में ऊष्ण रक्त प्रवाहित होने लगता है। भूषण का काव्य वीर रस का सर्वोत्कृष्ट काव्य माना जाता है। वे तत्कालीन जन-जागरण के प्रहरी बन कर काव्यक्षेत्र में उतरे थे। यद्यपि रीतिकालीन वीर रस के कवियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है फिर भी हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा में इनका योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

### 2.4.4 नीतिकाव्य

नीतिकाव्य का सृजन भी रीतिकाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत साहित्य में नीतिकाव्य की एक विशाल एवं समृद्ध परपंरा थी, जिसका हिंदी कवियों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। भक्तिकाल में भी नीति संबंधी प्रचुर सामग्री मिल जाती है। कबीर, तुलसी, रहीम आदि कवियों की नीतिविषयक सूक्तियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। भक्तिकाल की नीतिकाव्य परंपरा ही रीतिकाल तक आते-आते अधिक समृद्ध एवं जनप्रिय हो गई थी। रीतिकाल में नीतिविषयक रचनाएँ करने वालों में वृन्द, गिरिधर कविराय, घाघ, वैताल, दीनदयाल गिरि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की रचनाओं में जीवन के अनेक प्रभावशाली अनुभव चुभती हुई शैली में कहे गए हैं। यद्यपि साहित्य में चमत्कार का पुट अवश्य मिल जाता है। परंतु इनसे रस की अनुभूति नहीं होती। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने इसे कविता न कहकर सूक्ति साहित्य कहा है। विषय की विविधता और सूझ की विचित्रता के कारण यह जनता का कण्ठहार बन गया है। इसमें कण्ठस्थ हो जाने का गुण भी है, जिसने इसे सर्वप्रिय बना दिया है।

### 2.4.5 स्वच्छंद काव्य अथवा रीतिमुक्त धारा

रीतिकाल के अधिकांश कवि या तो लक्षण ग्रंथ लिखते थे या इन ग्रंथों को अपना आदर्श मानकर काव्य रचना करते थे। इस प्रवृत्ति के अलावा इस युग में एक और काव्यधारा भी चल रही थी, जिसे स्वच्छंदधारा अथवा रीतिमुक्त काव्यधारा कहते हैं। स्वच्छंदता का अर्थ यहाँ परंपराओं और रूढ़ियों का त्याग है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने न तो लक्षण गंथ लिखे और नही उनके आधार पर काव्य रचना की। किसी मिश्रित आधार या बंधे-बँधाये नियमों के अधीन रह कर काव्य रचना करना उनको स्वीकार नहीं था। इन कवियों के काव्य में नवीनता एवं मौलिकता की प्रधानता है क्योंकि ये पीछे की ओर न झाँककर समवर्ती जीवन से प्रेरणा लेते थे। इनका काव्य अलंकारों के बोझ से दबा हुआ न होकर अनुभूति प्रधान है। भाषा के क्षेत्र में भी इन्होंने केशव आदि रीतिबद्ध कवियों की तरह शब्दों की लड़ियाँ सजाने के मोह में न पड़ कर अर्थ वैचित्र्य को ही महत्व दिया है। इनका श्रृंगार चित्रण भी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। संक्षेप में इनके पास प्रेम

की सच्ची अनुभूति है, जिसका उन्होंने उदात्त रूप में वर्णन किया है। स्वच्छंदता एवं स्वच्छंद काव्यधारा के विकास में योग देने वाले कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

## 2.5 शिल्प पक्ष

### 2.5.1 भाषा

रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज थी। मध्य देश की भाषा होने तथा प्रकृति से मधुर होने के कारण उस युग के कवियों की अभिव्यक्ति का यह सर्वोत्तम माध्यम बन गई थी। रीतिकाल भाषा की सजावट का युग था और ब्रजभाषा में कोमल भावों की अभिव्यक्ति की अपार क्षमता थी। अतः रीतिकवि न केवल इनके प्रति आकृष्ट ही हुआ बल्कि उसने इसको सजाने, सँवारने और निखारने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी।

रीतिकाल ब्रजभाषा के एकाधिपत्य का काल है। ब्रजमंडल के अतिरिक्त दूसरे प्रांतों के कवियों ने भी इसी भाषा को अभिव्यंजना का माध्यम बनाया। परिणामतः इसके शब्द भंडार में अवधी, राजस्थानी, बुंदेलखंडी आदि भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषाओं के अनेक शब्द समाविष्ट हो गए। इस प्रवृत्ति के जोर पकड़ लेने का दुष्परिणाम यह निकला कि शब्दों के मनमाने प्रयोग होने लगे। कवि व्याकारण की परवाह न करके शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में रुचि लेने लगे। रीतिबद्ध कवियों में तो कारक चिह्नों की गड़बड़ी तथा लिंग संबंधी दोषों की भी भरमार हो गई।

स्वच्छंदतावादी कवियों की भाषा प्रायः इसका अपवाद ही रही। इन लोगों ने भाषा के साथ खिलवाड़ नहीं किया। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि ने भाषा शुद्धि एवं भाषा की अर्थक्षमता की ओर विशेष ध्यान दिया। इसीलिए इस वर्ग के कवियों की ब्रज परिनिष्ठित ब्रज का सुंदर नमूना मानी जाती है।

### 2.5.2 छंद

रीतिकाव्य दरबारी मनोवृत्ति का काव्य था। इसलिए इस युग में मुक्तक काव्य रचना का ही प्राधान्य रहा। मुक्तक काव्य रचना के लिए कवि को कुछ चुने हुए छंदों पर ही आश्रित रहना पड़ता है, इसलिए इस युग में कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा, बरवै और रोला जैसे छंद ही प्रचलित हुए जो रीतिकालीन काव्यधारा की प्रकृति के अनुकूल थे। जहाँ श्रृंगार के लिए कविगण सवैया छंद की ओर आकृष्ट हुए वहाँ वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त को ही चुना गया। दोहा इस युग का सबसे अधिक लोकप्रिय छंद था। भक्ति और नीति का सम्पूर्ण साहित्य दोहा छंद में ही रचा गया। माधुर्य एवं चारुता की दृष्टि से सवैया इस युग का सर्वश्रेष्ठ छंद माना गया।

यद्यपि इस युग में छंदशास्त्र के निर्माता कवियों की संख्या अधिक नहीं रही, परंतु उन्होंने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार हिंदी छंदशास्त्र के विकास में पर्याप्त रुचि दिखाई है। संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित होने पर भी उनकी रचनाओं में मौलिकता का कुछ न कुछ अंश अवश्य है। उन्होंने पाठकों की सीमाओं का ध्यान रखते हुए सरल एवं सुबोध शैली का अनुसरण किया है। प्रायः सभी ने दोहादि छंदों में लक्षण-उदाहरण पद्धति को ही अपनाया है। गति और लय आदि की व्यवस्था की दृष्टि से भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है। चिंतामणि का छंदविचार, मतिराम की वृत कौमुदी, भिखारीदास का छंदोर्ण व पिंगल, रामसहाय की वृत्ततरंगिणी, अमीरदास का वृत्तचंद्रोदय सुखदेव का वृत्तविचार आदि ग्रंथ आदि प्रसिद्ध हैं।

### 2.5.3 अलंकार

रीतिकाल अलंकारों के विवेचन तथा काव्य में इनके प्रयोग के लिए विशेष प्रसिद्ध है। संभवतः इसीलिए मिश्रबंधुओं ने इस युग का नाम अलंकृतिकाल रखा था। यद्यपि यह नाम बहुमत से स्वीकृत नहीं हुआ परंतु इस युग में रचे गये लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रंथों में अलंकारों को ही प्रधानता मिलती रही। वैसे भी उन दिनों अलंकार शास्त्र के समुचित ज्ञान के बिना किसी भी कवि के लिए राजदरबार में प्रवेश प्राप्त करना सुलभ नहीं था। इसलिए इस युग में अलंकारों की खूब धूम मची रही। यहाँ तक कि अलंकारों को साधन की अपेक्षा साध्य होने का दर्जा मिल गया। परिणामस्वरूप अलंकारों के बोझ के कारण कविता का आंतरिक सौंदर्य विलुप्त हो गया। इस काल के कवियों ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है। पर इनका एक ही उद्‌देश्य है- चमत्कार उत्पन्न करना।

चमत्कार उत्पन्न करने की इस प्रवृत्ति के पीछे भी राजाओं की रुचि का हाथ है। उस समय का शासक वर्ग इस प्रकार की चमत्कारिक उक्तियों को पसंद करता था।

केशवदास की प्रसिद्ध उक्ति, 'भूषन बिनु न विराजई कविता, वनिता, मित्त' इस युग के कवियों की अलंकारप्रियता को पुष्ट करती है। यद्यपि कुछ एक कवियों ने अलंकार-विवेचन पर्याप्त विस्तार एवं मनोयोग से किया परन्तु वे किसी मौलिक सूझबूझ का परिचय नहीं दे पाए। वास्तव में वे सभी आचार्य न हो कर कवि ही थे। उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अधूरा था। उनके लक्षणों और उदाहरणों में भी कहीं-कहीं पर्याप्त त्रुटियाँ हैं। ये कवि सामान्य रूप से संस्कृत ग्रंथों को आधार मानकर ही चले हैं, जिनमें अधिकांश ने चंद्रालोक और कुवलयानंद की पद्धति को अपनाया है अर्थात् एक ही दोहे में लक्षण उदाहरण का समावेश कर लिया गया। चिंतामणि, मतिराम, जसवंतसिंह, देव, भूषण, पद्‌माकर, भट्‌ट, भिखारीदास आदि के अलंकारविषयक ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हुए।

### 2.5.4 काव्यरूप

रीतिकाल में काव्यरूपों की पर्याप्त विविधता पाई जाती है। प्रबंध, मुक्तक, सतसई साहित्य तथा शतक आदि सभी शैलियों में काव्य रचना होती रही। इस युग का प्रधान काव्य रूप मुक्तक ही रहा। राजदरबारों में अपनी प्रतिभा का सिक्का जमाने के लिए अधिकांश कवि मुक्तक रचना को ही प्रश्रय देते रहे।

रीतिकाल में प्रबंधकाव्यों की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं का प्रचार विपुल मात्रा में था। मुक्तक में प्रत्येक पद्य अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। अर्थ की दृष्टि से उसमें पूर्वापर संबंध नहीं होता था पर इसमें पाठक को स्वतंत्र रूप से रस लीन करने की क्षमता होती है। रीतिकालीन कवि दरबारी वातावरण से घिरा हुआ था। दरबार में अपनी कला का चमत्कार दिखाने के लिए मुक्तक शैली अधिक अनुकूल थी। उन दिनों राजदरबारों में कवियों की परस्पर होड़ चलती थी। श्रोताओं की 'वाहवाही' लूटने के लिए और एक दूसरे को परास्त करने के उद्देश्य से मुक्तक शैली का प्रभाव गहरा पड़ता था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मुक्तक को चुना हुआ गुलदस्ता कहा है। यद्यपि इसमें प्रबंध के समान रस का निरंतर प्रवाह नहीं हुआ, परंतु यह श्रोता एवं पाठक के मन पर इसके छीटें डाल देता है, जिससे वह कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। कुछ आचार्यों ने तो मुक्तक रचना को प्रबंध से भी अधिक प्रभावपूर्ण माना है। संस्कृत कवि अमरूक के एक-एक मुक्तक पद्य को शत-शत प्रबंध काव्यों के समान हृदयग्राही कहा गया है।

यद्यपि इस युग के काव्य का एक बहुत बड़ा भाग मुक्तक शैली में ही लिखा गया, तथापि प्रबंध काव्यों के सृजन में भी कविगण अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे। यह अलग बात

है कि इस युग में रची गई प्रबंध रचनाएँ कवित्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुई। वैसे इस युग में पूर्व प्रचलित सभी प्रकार की प्रबंध काव्यधाराओं का प्रतिनिधित्व होता रहा। कथात्मक प्रबंध, सूफी प्रबंध, राम-काव्यधारा, कृष्णकाव्यधारा तथा वीर रसात्मक प्रबंध काव्य आदि सभी मिल जाते हैं। सबल सिंह का 'महाभारत' (कथात्मक प्रबंध काव्य), कासिम शाह का हंसजवाहिर, नूरमुहम्मद की इंद्रावती, शेख निसार का यूसुफ जुलेखा (सूफी प्रबंध), गुरु गोविंद सिंह की गोविंद रामायण (रामकाव्य), ब्रजवासी दास का ब्रजविलास (कृष्णकाव्य), सूदन का सुजानचरित, जोधराज का हम्मीर रासो, गोरे लाल का छत्रसाल प्रकाश (वीरकाव्य) आदि प्रबंध रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। सतसई भी वास्तव में मुक्तक का ही एक भेद है। सतसई अर्थात् सात सौ तथा शतक अर्थात् एक सौ पद्यों के संग्रह तैयार करने की परिपाटी संस्कृत से हिंदी में आई। रीतिकाल में इस प्रवृत्ति ने विशेष जोर पकड़ा। शतकों और सतसइयों के अतिरिक्त 'हजारे' भी लिखे गए। इस परंपरा में मतिराम सतसई, भूपति सतसई, राम सतसई, विक्रम सतसई, अलक शतक, तिल शतक, रसनिधि का रतन हजारा आदि संख्याबद्ध काव्य विशेष प्रसिद्ध हुए।

**बोध प्रश्न 3**

10. सही विकल्प के सामने (✓) और गलत के सामने (×) का चिह्न लगाएँ।

रीति काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है

क) श्रृंगार ( )

ख) वीर ( )

ग) लक्षण ग्रंथों का निर्माण ( )

घ) नीति काव्य ( )

11. रीतिकाल में 'श्रृंगार' काव्य का विषय क्यों बना ? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

12. रीतिकाव्य में कौन सा काव्यरूप अपनाया गया ? सही उत्तर के सामने (✓) का चिह्न लगाएँ।

क) प्रबंध ( )

ख) मुक्तक ( )

ग) कथा ( )

घ) चम्पू ( )

## 2.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि

### 2.6.1 चिंतामणि त्रिपाठी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि को रीतिकाल का प्रथम आचार्य कवि माना है। आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियों से रीतिकालीन काव्य के विकास में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने नौ ग्रंथ लिखे थे जिसमें से आज केवल पाँच ही उपलब्ध हैं। 'रसविलास' इनका रस-संबंधी ग्रंथ है। 'श्रृंगार मंजरी' नायक-नायिका भेद का ग्रंथ है। 'कविकल्पतरु' में काव्यांगों का विवेचन मिलता है। 'छंदविचार' में छंदों के आधार पर कृष्णचरित वर्णित है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के निवासी होने पर भी उन्होंने स्वच्छ एवं परिनिष्ठित ब्रज का प्रयोग किया है। यह मुख्यतः रसवादी हैं और अलंकारों का प्रयोग मात्र रसोत्कर्ष के लिए ही वांछनीय मानते हैं।

### 2.6.2 भिखारीदास

रीतिनिरूपण के क्षेत्र में मौलिक चिंतन के लिए भिखारीदास का स्थान प्रथम श्रेणी के आलोचकों में गिना जाता है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत और हिंदी के आलोचकों के काव्य सिद्धांतों का अध्ययन करके हिंदी आलोचना का सूत्रपात किया है। उनका प्रामाणिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'कांस्य निर्णय' है जिसमें सभी काव्यांगों का गंभीर विवेचन मिलता है। भिखारीदास का छंद विवेचन संबंधी ग्रंथ 'छंदोर्ण व पिंगल' भी इस विषय का प्रौढ़ ग्रंथ है। नवीन छंदों का निरूपण इनकी मौलिक सूझबूझ का ज्वलंत प्रमाण है। कवित्व के क्षेत्र में भी भिखारीदास महत्वपूर्ण हैं। इनकी सीधी और सरल बिंब योजना पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। इनकी भाषा सहज, स्वभाविक तथा विषयानुरूप है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अरबी-फारसी शब्दावली का भी निःसंकोच प्रयोग किया है।

### 2.6.3 देव एवं पद्‌माकर

देव और पद्‌माकर रीतिबद्ध कवि हैं इसलिए हम इनकी चर्चा एक साथ कर रहे हैं। रीतिकाल के कवियों में देव की रचना परिमाण की दृष्टि से सबसे ज्यादा है। इनमें भाव-विलास, अष्टयाम, सुजान विनोद, प्रेम तरंग आदि उल्लेखनीय है। देव आचार्य और कवि दोनों ही थे। पर आचार्य के रूप में इनका कोई स्थान नहीं है। मुख्य रूप से ये कवि हैं। रीतिकाल के कवियों में इनका प्रमुख स्थान था।

लोकप्रियता की दृष्टि से बिहारी के बाद पद्‌माकर का नाम लिया जाता है। पद्‌माकर की लोकप्रियता का कारण कविता की रमणीयता है। इनकी कविता में कल्पना और भावुकता का अद्‌भुत संयोग हुआ है। इनकी भाषा में अनेकरूपता है। पद्‌माभरण, जगद्‌विनोद, प्रबोध पचासा, 'हिम्मत विरुदावली' इनके प्रमुख ग्रंथ है।

### 2.6.4 बिहारी

रीतिसिद्ध कवियों में ही नहीं बल्कि समूचे रीतिकाल में बिहारी का साहित्य अन्यतम है। 'बिहारी सतसई' नामक सात सौ दोहों की लघु रचना लिख कर जितनी अक्षय कीर्ति बिहारी को प्राप्त हुई वैसा कोई दूसरा ढूँढ पाना सरल नहीं है। वास्तव में यह रचना के परिमाण में छोटी जरूर है परंतु सागर को गागर में भरने की उक्ति को चरितार्थ करती है। कवि ने श्रृंगार के कोने-कोने को, प्रेम-सागर से उमड़ी प्रत्येक भाव तरंग को अपने कलाफलक पर इस व्यापकता से अंकित किया है कि श्रोता एवं पाठक अवाक रह जाता

है। इसीलिए यदि सूर सूर हैं तो राधाचरण गोस्वामी के शब्दों में 'बिहारी पीयूषवर्षी मेघ हैं जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है। कवि कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने और चतुर चातक चुहकने लगते हैं।'

आचार्य शुक्ल ने भी बिहारी की कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी विशेषता के कारण बिहारी के दोहों को नावक के तीर कहा गया है :

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।।

### 2.6.5 भूषण

भूषण वीर रस के कवि थे। रीतिकाल में श्रृंगार रस की प्रधानता थी, पर भूषण ने आदिकाल की वीर गाथात्मक परंपरा को जिंदा रखा। इन्होंने अपने दो आश्रयदाताओं- छत्रसाल और शिवाजी को अपने वीर काव्य का विषय बनाया। रीतिकाल के कवि होने के कारण भूषण ने 'शिवराज भूषण' नाम से एक अलंकार ग्रंथ भी लिखा, पर अलंकार निरूपण की दृष्टि से इसे श्रेष्ठ ग्रंथ नहीं कहा जा सकता।

### 2.6.6 घनानन्द

घनानन्द स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इस काव्य प्रवृत्ति के सभी गुण इनके काव्य में समाहित हैं। अपनी रचना प्रक्रिया की ओर संकेत करते हुए कवि ने स्पष्ट कहा है कि उसे काव्य की प्रेरणा अपनी प्रेयसी सुजान के मादक रूप से मिली है। कवि का प्रेम एकनिष्ठ एवं अंतर्मुखी है, अतः उसमें हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। आचार्य शुक्ल इनके संबंध में लिखते हैं-'ये वियोग श्रृंगार के मुक्तक प्रधान कवि हैं। 'प्रेम की पीर' लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण एवं धीर पथिक तथा ज़बादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।' शुक्ल जी की उपर्युक्त टिप्पणी से सिद्ध हो जाता है कि यह भाव और कला दोनों क्षेत्रों में अपने वर्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि रहे हैं।

यद्यपि घनानन्द ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है परंतु विरह वर्णन में उनकी मनोवृत्ति अधिक रमी है। इनके विरह वर्णन में पर्याप्त गंभीरता और तड़प है। रीतिकाल के रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की तरह इन्होंने अपनी विरह व्यथा को अभिव्यक्त करने में अतिशयोक्ति से काम न लेकर उसे स्वाभाविक बना दिया है।

इनके ग्रंथों के नाम हैं- सुजानसागर, विरह लीला, कोकसार, रसकेलिवल्ली और कृपाकाण्ड।

### मूल्यांकन

रीतिकालीन काव्य मूलतः दरबारी काव्य था, जिसने श्रृंगार को अपना केंद्रीय विषय बनाया। कविता राजा और उसके दरबारियों के मनोरंजन का साधन बन गई। कवि राजा के मनोरंजन के लिए श्रृंगार का विकृत रूप अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करने लगा। उसका एक ही उद्देश्य था राजा की प्रशंसा और अशर्फी प्राप्त करना। कविता जब व्यावसायिक हो जाती है और उसका उद्देश्य सत्ताधारी वर्ग का मनोरंजन करना हो जाता है, तब वह अपने श्रेष्ठ पद से गिर जाती है। इस काल की कविता का भी यही परिणाम हुआ। यह कविता रुग्ण मानसिकता का प्रतिफलन है। इस काल के कवियों ने लक्षण ग्रंथ भी लिखे, पर ये कुशल आचार्य भी न बन सके। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्रों का अनुवाद

भर प्रस्तुत कर दिया इस क्षेत्र में उनका एक योगदान यह रहा कि उन्होंने रस और अलंकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में निर्मित किए।

रीतिकाल में कविता की प्रस्तुति और भाषा भी सहज नहीं रह गई। इस काल के कवि अपनी प्रस्तुति से अपने आश्रयदाता को चमत्कृत करना चाहते थे, अतः इस काल की भाषा में चमत्कार की प्रधानता मिलती है। अलंकार का बहुत प्रयोग इस काल में हुआ। इन चमत्कारी कवियों ने अलंकार को साधक न मानकर साध्य माना। रीतिकालीन कवियों ने यत्नपूर्वक कठोर शब्दों का बहिष्कार किया। इन्होंने उन सभी शब्दों को निकाल फेंका, जो माधुर्य गुण से ओतप्रोत न हो। डॉ. नगेन्द्र रीतिकाल की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं : 'इस प्रकार यह केवल काव्य की भाषा थी, जन-जीवन की भाषा नहीं थी इसीलिए उसमें रचनात्मकता-मात्र थी, महाप्राणता और व्यापकता नहीं रह गई है। (रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ-178)

**बोध प्रश्न 4**

13. चिंतामणि त्रिपाठी का परिचय दीजिए (दो पंक्तियों में)।

 ..........................................................................................................

 ..........................................................................................................

14. भिखारीदास का ग्रंथ है (सही उत्तर के सामने (✓) का चिह्न लगाएँ)।

 क) कवि कल्पतरु ( )

 ख) भिखारी सतसई ( )

 ग) काव्य निर्णय ( )

 घ) रस विलास ( )

15. नीचे दिए गए टेबल का ठीक से मिलान करें।

| | |
|---|---|
| देव | 1. रीतिसिद्ध |
| बिहारी | 2. रीतिमुक्त |
| घनानन्द | 3. रीतिबद्ध |

## 2.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि रीतिकाल में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तीनों क्षेत्रों में विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। दिल्ली के तख्त के लिए जब खून की नदियाँ बह रही थीं तो प्रजा वर्ग में खलबली मच जाना स्वाभाविक ही था। राजा, सेवक, व्यापारी, श्रमिक एवं कृषक सब भय और संत्रास के शिकार हो गए थे। उन सबका सांस्कृतिक जीवन भी आदर्शहीन होकर विलासिता में उलझ कर रह गया था। कविता भी मनोरंजन का साधन बन गई थी। इस बौद्धिक और सांस्कृतिक ह्रास से साहित्य रचना में भी परिवर्तन होने लगा था। भक्ति का स्थान श्रृंगार ने ले लिया था। नख शिख, वर्णन, नायक-नायिका थे आदि विषयों को लेकर इस युग के श्रेष्ठकवि अपनी प्रतिभा का ह्रास कर रहे थे। काव्य लक्षण से लेकर शब्दशक्ति, गुण-दोष, रसरीति, छंद अलंकार आदि सभी विषयों पर परंपरा पालन मात्र के लिए ही कविगण लेखन कर रहे थे राजदरबार में सम्मान प्राप्त करने के लिए कवि होने के साथ आचार्य

के कर्तव्य का निर्वाह भी आवश्यक समझा जाता था। ये लेखक काव्य शास्त्र के ज्ञाता नहीं थे परंतु ज्ञाता होने का स्वांग रच रहे थे। उनके आचार्यत्व पर उनके कवि का पलड़ा भारी रहता था। परंतु कवि के रूप में भी वे वासनाजन्य प्रेम को ही प्रश्रय देते रहे। इसमें संदेह नहीं कि रीतिमुक्त कवियों का एक छोटा-सा वर्ग अवश्य ही इसका अपवाद सिद्ध होता है। इन कवियों की रचनाओं में प्रेम का उदात्त रूप मुखरित हुआ है। इन्होंने रीतिबद्ध कवियों की तरह राधा और कृष्ण के सुमिरन के बहाने से अपनी रुग्ण मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया है। रीतिकाल में कथ्य की अपेक्षा शिल्प विधान की ओर कवियों की मनोवृत्ति अधिक रमी है। भाषा को नानाविध अलंकारों से सजाया गया है। काव्यभाषा ब्रज का शब्द भण्डार अवधी, राजस्थानी, बुंदेलखंडी आदि के अलावा अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों से पर्याप्त समृद्ध हो गया था। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में विस्तार एवं विकास अवश्य आया था परंतु भाषा का रूप भी विकृत हो चला था। रीतिबद्ध कवियों में तो कारक चिह्नों की गड़बड़ी तथा लिंग संबंधी दोषों की भरमार हो गई थी। रीति मुक्त कवि निश्चय ही इसका अपवाद रहे। घनानन्द आदि कवियों की भाषा परिनिष्ठित ब्रज का आदर्श उपस्थित करती है।

## 2.8 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| **एकनिष्ठ** | : | एक के ही ऊपर निष्ठा |
| **ऐहिकतापरक** | : | जिसका संबंध सांसारिक बातों से हो। |
| **कटाक्ष निक्षेप** | : | तिरछी निगाह डालना |
| **काव्यांग** | : | काव्य के अंग |
| **जबादानी** | : | भाषा का पंडित |
| **पूर्वापर** | : | अगला और पिछला |
| **रसोद्रेक** | : | रस से सराबोर |
| **विपुल** | : | काफी |
| **समास शक्ति** | : | संक्षेप रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति |
| **समाहार शक्ति** | : | शब्दों और वाक्यों को जोड़ने की शक्ति |
| **सूक्ति** | : | सुंदर उक्ति |

## 2.9 उपयोगी पुस्तकें

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

## 2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1. (क) ✓ (ख) × (ग) × (घ) ✓

2. रीतिकाल के दौरान राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी। औरंगजेब के समय से ही स्थानीय सरदार और अमीर सिर उठाने लगे थे। उसकी मृत्यु के बाद केंद्रीय शासन

बुरी तरह बिखर गया और प्रांतीय सरदारों और अमीरों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लिया। नादिर शाह (1739) और अहमदशाह अब्दाली (1748) के आक्रमणों ने मुगलों की शक्ति को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया।

3. 1643, 1843

4. रीतिकालीन चित्रकला अलंकरण के बोझ से दब सी गई। इससे यह कला निर्जीव हो गई। व्यक्ति चित्रों तक में रंग-प्रदर्शन का महत्व रह गया। इन व्यक्ति-चित्रों में स्त्री सौंदर्य के अंकन की प्रधानता है।

5. रीतिकालीन समाज ह्रासोन्मुख सामंतवादी समाज था, जिसमें एक वर्ग विलासिता और श्रृंगार में डूबा हुआ था और दूसरा वर्ग भर पेट भोजन नहीं ग्रहण कर पा रहा था। विडंबना यह थी कि यही वर्ग उत्पादन भी कर रहा था, पर उस पर उसका अधिकार नहीं था।

**बोध प्रश्न 2**

6. 17वीं शताब्दी के मध्य से 19वीं शताब्दी के मध्य तक लिखी गई हिंदी कविता को रीतिकाव्य के रूप में जाना जाता है। इस काल में एक रीति अर्थात् एक पद्धति पर कविता लिखी गई।

7. चिंतामणि, भिखारीदास, बिहारी, देव, पद्माकर और घनानंद।

8. रीतिबद्ध कवि कविता करने के साथ-साथ काव्यशास्त्र की शिक्षा भी दिया करते थे। इन्हें आचार्य कवि भी कहा जाता है। रीतिसिद्ध कवि लक्षण ग्रंथ नहीं लिखते थे, पर इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते थे।

9. रीतिकाव्य की तीन शास्त्रीय शैलियाँ थीं- रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध। रीतिबद्ध कवि लक्षण-उदाहरण लिखने पर ज्यादा ध्यान देते थे। रीतिसिद्ध कवि लक्षण नहीं लिखते थे पर लक्षणों को ध्यान में रखकर ही कविता लिखते थे। रीतिमुक्त शैली में रूढ़िविरोधी, स्वच्छंद भावना से ओतप्रोत शैली है, जिसमें प्रेम के अनुभूति पक्ष की प्रधानता है।

**बोध प्रश्न 3**

10. क) (✓) ख) ( × ) ग) ( ✓ ) घ) ( × )

11. अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने के लिए कवि श्रृंगारपरक कविताएँ लिखते थे। इसी कारण श्रृंगार कविता का केंद्रीय विषय बन गया।

12. ख) (✓)

**बोध प्रश्न 4**

13. चिंतामणि रीतिकाल के प्रथम आचार्य-कवि हैं। 'रसविलास' इनका प्रमुख ग्रंथ है।

14. ग

15. देव-रीतिबद्ध

बिहारी -रीतिसिद्ध

घनानंद-रीतिमुक्त

# इकाई 3 कबीर का काव्य

## इकाई की रूपरेखा


3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संचार

3.2.1 जीवन वृत्त

3.2.2 कबीर की रचनाएँ

3.3 भक्तिकाल और कबीर

3.4 कबीर की भक्ति

3.4.1 निर्गुण ईश्वर

3.4.2 राम का स्वरूप

3.5 कबीर की सामाजिक चेतना

3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य

3.6.1 प्रतीकात्मकता

3.6.2 उलटबाँसी

3.7 कबीर के काव्य का वाचन और व्याख्या

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 3.0 उद्देश्य

'कबीर का काव्य' इस पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- कबीर के जीवन और उनकी रचनाओं से अवगत हो सकेंगे;
- भक्तिकाव्य के संदर्भ में कबीर की विशिष्टताओं के बारे में बता सकेंगे;
- कबीर की सामाजिक चेतना की जानकारी दे पाएँगे; तथा
- उनकी भाषागत विशिष्टिताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

## 3.1 प्रस्तावना

कबीर हिंदी भक्तिकाव्य के प्रारंभिक कवियों में है। उन्होंने ईश्वर के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अपनी भक्ति का विकास किया। कबीर जिस समय में हुए उस दौर

में समाज की तथाकथित निम्न जातियों को साधना का अधिकार नहीं था। कबीर ने ऐसी किसी बंदिश को मानने से इंकार कर दिया और साथ कर्मकांड को महत्व देने वाली उपासना पद्धति से अपनी असहमति जताई। उन्होंने योग तथा प्रेम को महत्व दिया। ऐसा माना जाता है कि उन्हें किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं मिल पाई थी। इस कमी की पूर्ति उन्होंने सत्संग एवं यात्राओं के माध्यम से की। इसने उनकी अभिव्यक्ति को प्रभावित किया और उनकी भाषा में विभिन्न क्षेत्रीय प्रभाव आए। कबीर की साधना बहुत कुछ अंतर्मुखी है इस कारण उनमें रहस्यात्माकता की भी प्रवृत्ति है। आगे इन सबके बारे में आपको विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

## 3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संसार

मध्ययुगीन हिंदी भक्ति साहित्य में कबीर सबसे पहले आते हैं। रचनाकाल की दृष्टि से भी और पूरे समाज को प्रभावित करने की दृष्टि से भी। कबीर के व्यक्तित्व को समझने के लिए उस युग के उथल-पुथल को समझना आवश्यक है। कबीर राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक संक्रमण की व्यापक और गंभीर सरणियों का परिणाम थे। एक ओर राजनीतिक दृष्टि से इस्लाम का शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था, तो दूसरी ओर समाज ऊँच नीच के बंधनों में जकड़ा हुआ था। इस्लाम धर्म के रूप में समता के सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत कर रहा था, तो इस्लाम के आने से स्थापत्य, निर्माण, व्यापार में बढ़ोत्तरी हुई। इस बढ़ोत्तरी ने निम्न समझी जाने वाली जातियों को (मुख्य रूप से कामगार जातियाँ थीं) में थोड़ी आर्थिक संपन्नता उत्पन्न की। इन दोनों संदर्भों ने सैद्धांतिक एकता और अपेक्षाकृत बहुत कम ही सही, आर्थिक उन्नति ने समाज की विभिन्न जातियों और समुदायों के बीच भक्ति को एक अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया। यह भी स्वीकृत मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही मनुष्य अधिकारों की बात करता है। आज की आधुनिक शब्दावली में बात कही जाए, तो भक्ति मध्ययुग का लोकतांत्रिक अधिकार ठहरती है, क्योंकि मध्ययुग में मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। मोक्ष ईश्वर के चरम तादात्म्य से प्राप्त होता था। ईश्वर का चरम तादात्म्य भक्ति द्वारा संभव था। चूँकि समाज में जब से वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित हुई थी, तब से भक्ति पर सवर्णों का अधिकार था। मध्यकाल में नई सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था में जब कबीरदास आदि भक्त कवि भक्ति को अधिकार के रूप में देखते हैं, तो यह शताब्दियों की वर्णाश्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती थी।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीरदास' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है, "कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है। उन दिनों उत्तर के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अंतर था। एक टूट जाता था पर झुकता न था, दूसरा झुक जाता था।" इन्हीं धार्मिक राजनीतिक सामाजिक वातावरण में कबीरदास का उद्भव होता है। इस संक्रमणशील समय और उसकी विभिन्न वृत्तियों से ही कबीरदास का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। इसीलिए कबीर के व्यक्तित्व में मैदानी भाग में बहने वाली नदी की कलकलता नहीं है, अपितु पहाड़ों में बहने वाली नदी का निनाद है। कबीरदास के व्यक्तित्व में अगर योगियों की अखंडता है तो वैष्णव भक्तों की तल्लीनता भी। अगर उनमें जाति और धर्म की विसंगतियों पर गंभीर व्यंग्य है, तो ईश्वर को पा लेने की चरम उत्कंठा भी है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी इसी पुस्तक में बताया है, "कबीरदास ने यह अक्खडंता योगियों से विरासत में पाई थी। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वह कातर नहीं हो आते थे, बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकारते थे।" वे योगियों से अक्खंडता पाते हैं तो उन्हें चुनौती भी देते हैं। मेरुदंड पर दुलैचा डालकर समाधि लगाने वाले को वो कच्चा योगी कहते हैं :

मेरुदंड पर डारि दुलैचा जोगी तारी लावैं।
सो सुमेर की खाक उडैगी कच्चा योग कमावैं।।

योगियों पर कबीर के इस तरह के प्रहार अनेक स्थलों पर हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि भला हृदय में भगवत् भक्ति न हो तो शरीर की साधना कहाँ तक साथ देगी :

जरि गौ कंथा धज गौ टूटी। भजि गौ डंडे खपर गौ फूटी।
कहहिं कबीर उ कली हैं सोती जो रहे करवा सौ निकरे होंती।।

परंतु इस अखड़ता को उनका फकीराना व्यवहार स्थानापन्न भी करता है। वे किसी भी व्यवहार के साथ ताउम्र नहीं रहे। चाहे वह जितना भी खराब या अच्छा क्यों न हो। इस का मूल कारण यह रहा होगाा कि वे सत्संग आदि के माध्यम से अपना निरन्तर परिष्कार करते चलते हैं। अपने इसी स्वभाव के कारण वे कह पाते है :

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारों तासु का, जो चलै हमारे साथ।

कबीर के व्यकित्व को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन शब्दों में रेखांकित किया है, "ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला; स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़; भक्त के सामने निरीह, वेशधारी के आगे प्रचण्ड; दिल के साफ, दिमाग क दुरुस्त भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय।"

### 3.2.1 जीवन-वृत्त

कबीरदास के जीवन-चरित्र के संबंध में अत्यंत सीमित जानकारी प्राप्त होती है। कबीरदास के जीवन के संदर्भ में जिन लोगों ने भी लिखा है, वह सब श्रुतियों पर आधारित है। यहाँ तक कि उनके जन्म और मृत्यु संबंधी हमारी जानकारी भी आधिकारिक या प्रमाण पुष्ट नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इनका जन्म वर्ष अलग-अलग बताया है। पर इतना निश्चित है कि ये पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्यमान थे। कबीरपंथियों में इनके जन्म को लेकर यह पद प्रचलित है :

चौदह सो पचपन साल गए, चंद्वर एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।
घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिलें तहँ कबीर भानु प्रगट हुए।

यह पद कबीरदास के शिष्य धर्मदास का बताया जाता है। कहा जाता है कि कबीरदास का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ। इनकी माता ने इन्हें तालाब के किनारे छोड़ दिया था और एक मुस्लिम दंपत्ति नीरू और नीमा ने इनका लालन-पालन किया। यह परिवार जुलाहा जाति से संबंधित था। कबीर के जुलाहा होने की पुष्टि उनके निम्न पद से भी होती है :

जाति जुलाहा मति को धीर। हरसि हरसि गुन रमै कबीर।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह जुलाहा परिवार हाल ही में मुसलमान हुआ था।

साथ ही वे यह भी बताते हैं, "कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुस्लमान एक बार भी नहीं। वे बराबार अपने को "ना-हिंदू ना-मुस्लमान कहते रहे।"

कबीरदास ने कोई परंपरागत शिक्षा ग्रहण की होगी, इसकी गुंजाइश कम ही दिखाई पड़ती है। जनश्रुति में वे निरक्षर ही माने जाते है। कबीर ने स्वयं भी कहा है :

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गहि नहिं हाथ।
चारिउ जुग की महातम, मुखहिं जनाई बात।।

इसके बावजूद रामानंद को उनका गुरु स्वीकार किया जाता है। उपर्युक्त पद के अभिधा में लेने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि कबीर की व्यावहारिक शिक्षा सघन थी। उन्होंने सत्संग किया। सभी के पास कुछ सीखने की ललक से गए - क्या योगी, क्या नाथ, क्या वैष्णव! कहा जाता है कि उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ कीं। इन यात्राओं के दौरान उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि होता रही।

कबीर के साथ प्रायः लोई का नाम लिया जाता है। कुछ लोग लोई को कबीर की पत्नी तथा कुछ अन्य लोग उसे इनकी शिष्या बताते हैं। यह भी बताया जाता है कि लोई से कबीर के कमाल और कमाली नाम के पुत्र-पुत्री हुए। कबीर ने लोई को संबोधित करके कई पद कहे हैं। एक पद में वे कबीर और लोई के एक घर होने की बात कहते हैं :

रे या मैं क्या मेरा तेरा, लाजन मरहिं कहत घर मेरा।
कहत कबीर सुनहु हे लोई, हम तुम वितति रहेगा सोई।

कबीरदास राजनीतिक काल के हिसाब से सिकंदर लोदी के युग में हुए। बताया जाता है कि अपने विचार और व्यवहार के कारण वे राजसत्ता के कोप के भाजन भी हुए। इनकी मृत्यु के संबंध में भी कोई निश्चित राय नहीं है। कुछ विद्वान श्याम सुंदर दास और रामचंद्र शुक्ल आदि-इनकी मृत्यु 1518 ई. में मानते हैं परंतु पीतांबर दत्त बड़थ्वाल 1448 ई. में ही इनकी मृत्यु बताते हैं।

### 3.2.2 कबीर की रचनाएँ

यह मान्य है कि कबीरदास को अक्षर ज्ञान नहीं था। कबीरदास की रचनाओं को उनके शिष्यों ने संग्रहीत किया। परंतु कबीरदास के नाम पर प्रचलित ग्रंथों की प्रामाणिकता सदैव संदिग्ध रही है। विश्वनाथ सिंह जूदेव ने तो यहाँ तक कहा है कि कबीर के जीवनकाल में ही उनके बहुत जाली ग्रंथ बन गए थे। कबीरदास के कुछ पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी मिलते हैं।

कबीर साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य सन् 1903 में एच.एच. विल्सन ने शुरू की। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। इसके बाद बिशप जी. एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रकाशित की। रामदास गौड़ लिखित 'हिंदूत्व' नामक ग्रंथ में 71 पुस्तकें, तो मिश्र बन्धुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में 75 पुस्तकें बताई है। इसी प्रकार हरिऔध जी ने 'कबीर वचनावली' में 21, रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास' में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। इन ग्रंथों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ हैं, इसकी प्रामाणिकता पर गहराई से विचार नहीं किया गया है।

आधुनिक समय में श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली', डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर', अयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'कबीर वचनवाली', डा. पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-ग्रंथावली' आदि नामों से कबीर की रचनाओं का संपादन किया है। हिंदी के अतिरिक्त बंगला में रवींद्रनाथ टैगोर ने भी कबीर के पदों का चयन प्रस्तुत किया है। क्षितिमोहन सेन ने भी 'कबीर के पद' संपादित किए हैं।

कबीरदास की रचनाएँ 'बीजक' नाम से संग्रहीत हुई। 'बीजक' का अर्थ है- गुरुधन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है :

> बीजक वित्त बतावई, जो बित गुप्त होय।
> सबद बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय।

बीजक संबंधी उपर्युक्त पद का अर्थ है- जो वित्त या गुरु धन होता है, उसका ज्ञान केवल बीजक से लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्त धन को अर्थात उसके वास्तविक स्वरूप को शब्द रूपी बीजक बताते हैं। कबीर का साहित्य साखी, सबद और रमैनी के रूप में उपलब्ध है। कबीर ने बीजक में सृष्टि, माया, जीव, मोक्ष, माया से संबंधित, भव पंथ के कष्टों, सत्यानुभव, सत्संग महिमा, संसार की असारता, सदगुरु महिमा, भक्ति आदि का विषद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुंदर सामंजस्य कबीर की रचनाओं की अन्यतम विशेषता है।

बीजक के तीन भाग हैं : साखी, सबद, रमैनी। इनके अर्थ को जान लेना आवश्यक है। प्रायः माना जाता है कि रमैनी में जगत् व्यवहार, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म संबंधी विचार हैं। **रमैनी** चौपाई छंद में लिखी गई है। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी भी हैं जिनके अंत में एक-एक साखी है। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है, "साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानो इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूपी व्याख्या में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है।" रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है :

i) जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन है।

ii) वेद शास्त्रों के विचारों में रमण करने वाली।

iii) एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं।

कबीर ने सबद का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है :

i) परमतत्त्व के अर्थ में

ii) पद के अर्थ में

साखी शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का तद्भव है। साखी अर्थात् साक्ष्य। अर्थात साखी वह काव्य रूप है जिसमें प्रत्यक्ष जागतिक अनुभवों का वर्णन है। द्विवेदी जी ने साखियों को कबीर के सिद्धान्तों की जानकारी का सर्वोत्तम साधन माना है।

### बोध प्रश्न

1. कबीर के काव्य से संबंधित निम्नलिखित पुस्तकों तथा उनके संकलनकर्ता/संपादक का सही युग्म तैयार कीजिए।

| **पुस्तक** | **संकलनकर्ता/संपादक** |
|---|---|
| क) कबीर के पद | i) डॉ. रामकुमार वर्मा |
| ख) संत कबीर | ii) क्षितिमोहन सेन |
| ग) कबीर वचनावली | iii) डॉ. पारसनाथ तिवारी |
| घ) कबीर ग्रंथावली | iv) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' |

2. साखी, सबद और रमैनी का परिचय दीजिए। (उत्तर छः पंक्तियों में दीजिए)

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 3.3 भक्तिकाल और कबीर

भारत में भक्ति की परंपरा बहुत प्रचीन, विशद् और गहरी रही है। इस परंपरा में ही हिंदी का भक्ति आंदोलन है। हिंदी भक्ति आन्दोलन उत्तरी भारत में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक फैला है। इस काल में भक्ति समाज के विभिन्न सरणियों में जाति, धर्म, कुल की सीमाएँ लाँघकर फैल गई। इस रूप में ही उसने एक जन आंदोलन का रूप लिया। इसीलिए रामविलास शर्मा जैसे विद्वान इसे 'लोकजागरण' की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार, ''भारतेंदु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला दौर नहीं है, वह जनजागरण की पुरानी परंपरा का खास दौर है। जनजागरण की शुरूआत तब होती है जब वहाँ बोलचाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है, जब यहाँ विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है।" इस सिद्धांत के अनुसार ही आधुनिक काल के जनजागरण को वे 'नवजागरण' और मध्यकालीन जनजागरण को 'लोकजागरण' कहते है। आधुनिक काल का जनजागरण साम्राज्यवाद विरोधी था, जबकि मध्यकालीन लोकजागरण सामंतवाद विरोधी।

इस रूप में विचार करें तो मध्ययुग का भक्तिकाल भक्ति की क्लासिकी अवधारणाओं तक खुद को सीमित नहीं रख सकता था। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत यह है कि भक्तिकाल में 'धर्म साधना का नहीं', भगवान का विषय बन गया।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है। यहाँ यह विचार करना जरूरी है कि मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का ऐतिहासिक आधार क्या है? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को इस्लामी आक्रामण से पराजित हिंदू जनता की मनः स्थिति से जोड़ा है। प्रश्न उठता है कि भक्ति आंदोलन की शुरूआत दक्षिण से क्यों हो रही थी? दक्षिण से इसके शुरू होने की बात को आचार्य रामचंद्र शुक्ल रेखांकित किया है, "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिंदू मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भी भावना कुछ लोगों में जगाई।"

द्विवेदी जी ने इसे भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास बताया। इन विद्वानों ने अपने तरीके से भक्ति आंदोलन को समझा। इनमें सत्य के अंश भी हैं। परंतु दक्षिण में भक्ति का जो उदय हो रहा था, वह जातिगत कठोरता के कारण। वास्तव में भक्ति आंदोलन सामंती व्यवहारों के विरुद्ध भारत का अपना जातीय संदर्भ है। इस तथ्य को समझने के लिए के. दामोदरन की इन पंक्तियों को देखना चाहिए, "ब्राह्मणवाद की मुख्य शिक्षा थी- अवैयक्तिक, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान ब्रह्म में विश्वास करो। किन्तु ब्राह्मणवाद केवल दर्शन मात्र नहीं था। दार्शनिक विचारों को प्रतिपादित करने के साथ ही उसने आदिम सर्वात्मवादी विश्वासों और कर्मकांडों को पुनर्जीवित किया, उन्हें सुदृढ़ बनाया और धार्मिक मतवादों में परिवर्तित कर दिया।" ब्राह्मणवाद सामंती व्यवस्था की देन है। इसीलिए भक्ति आंदोलन आत्यंतिक रूप से सामंती व्यवस्था से टकराता है। भक्तिकाल के प्रारंभिक दौर में कबीरदास जैसे उग्र व्यक्तित्व का आना उस ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति जैसा है, जो सामंती-ब्राह्मणवादी मूल्यों और संस्थाओं के विरूद्ध मनुष्य की भावनात्मक स्वायतता के लिए अनिवार्य होती है।

कहै कबीर विचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि।
ध्यान धरौ मन सुफ करि, राम रह्या भरपूरि।।
कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चांम।
जा या देह रहित है, सो है रमिता राम।।

वस्तुतः जब कबीरदास निर्गुण भगवान का स्मरण करते हैं, तो वे भगवान के गुणमय शरीर को नहीं स्वीकारते। वास्तव में यह कबीर की मौलिक कल्पना नहीं है। इसके पूर्व भी निर्गुण रूप में ईश्वर की उपासना की जाती थी, उसका स्वरूप बताया गया है। परंतु वहाँ ईश्वर को बताने के लिए निषेधात्मक उपकरणों की सहायता ली जाती है। कबीर की मौलिकता यह है कि वे इस निर्गुण से केवल निषेधात्मक भाव ग्रहण नहीं करते, अपितु उसके स्वरूप को भी निषेधात्मकता की परिधि से बाहर खींच लाते हैं।

वस्तुतः वे ईश्वर को सत, रज और तम गुणों से भी अतीत मानते हैं। कबीर के निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार सगुण भक्त कवियों की भाँति नहीं किया जा सकता। वास्तव में कबीर ने घट-घट में ईश्वर की सत्ता स्वीकार करके परमात्मा और जीवात्मा में एकत्व स्थापित किया है। उनके अनुसार यह एकत्व माया के कारण खंडित होता है। कबीर कहते है :

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कहो गियानी।

अर्थात् माया के समाप्त होते ही परमात्मा जीवात्मा की एकता स्थापित हो जाती है। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म को संबंधों में बाँधकर एक प्रकार से उसे अनुभवातीत होने से बचाया है। कभी पत्नी, कभी मित्र, कभी दास आदि अनेक संबंध में बाँधकर कबीर ने 'गूँगे के गुड़' को कुछ कथनीय भी बनाया है। इसी कारण कबीर के राम अव्यावहारिक और असामाजिक नहीं हो पाते।

**रहस्य भावना**

कबीर की भक्ति के संदर्भ में रहस्य भावना को समझना आवश्यक है। रहस्य का सामान्यार्थ है दुर्बोध तत्त्व। उस दुर्बोध तत्त्व से मनन द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है। कालांतर में रहस्यवाद परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा का पर्याय हो गई।

आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''चिंतनों के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद''। शुक्ल जी के इस कथन पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रहस्यवाद में चेतन के साथ विश्वचेतन की अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। रहस्यवाद में 'अहम्' और 'इदम्' का क्रमशः लोप होता जाता है। एकत्व भाव ही इसकी प्रथम और अंतिम शर्त है। डा. रामकुमार वर्मा ने भी कहा है कि 'अद्वैत ही मानो रहस्यवाद का प्राण है।' कबीर के ब्रह्म अद्भुत हैं और उनकी गति अगम है :

निरगुन राम जपहूँ दे भाई
अविगत की गति लखि न जाइ।

रहस्यवाद की चार विशेषताएँ मानी गई हैं- आध्यात्मिक प्रेमधारण का अबाध प्रवाह, जागरण का सातत्य, अनंत की ओर भावुकता के साथ हृदय की उन्मुखता, तथा अग्रसरण। कबीर की कविताओं में ये चारों विशेषताएँ मिलती हैं। कबीर की रहस्यात्मकता इसलिए भी गहरी है, क्योंकि कबीर को अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से सरोकार है। वे असीम, अनंत, शून्य रूपी ईश्वर का सान्निध्य पाकर सारी व्यथा भूल जाते हैं :

हरि संगति शीतल भया, मिटा मोह की ताप।
निस बासरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप।।

कबीर रूप और सीमा की सहायता से उस शाश्वत, अरूप और असीम को देखते हैं, जो उनका चरम प्राप्य है। इसकी सहायता से 'मैं' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है, द्वैत मिल जाता है। आत्मा परमात्मा के साथ नीरक्षीरवत संबंध स्थापित करती है :

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यही तत गियानी।

### विभिन्न भक्ति पंथों से संबंध

कुछ लोग आक्षेप लगाते हैं कि कबीरदास कभी अद्वैतवाद की ओर झुकते दीखते हैं। और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से ईश्वर को पुकारते है और कभी निर्गुण भाव से। वास्तव में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धांत नहीं था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका उचित प्रत्याख्यान किया और कहा कि "यह केवल अश्रद्धा प्रसूत है। ऐसी बातें वही लोग कहते हैं, जो शुरू में ही मान बैठते हैं कि कबीर एक अशिक्षित जुलाहे थे और उल्टी-सीधी अटपटी बानियों से साधारण जनता पर प्रभाव जमाना चाहते थे।' दूसरी बात यह है कि सत्संग के द्वारा उन्होंने सारा ज्ञान अर्जित किया है। जिस समय जिस मत के लोगों से उनका सत्संग होता था, उसका कुछ प्रभाव उनकी वाणियों पर पड़ता भी था। परंतु शीघ्र ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विराट अनुभव से वे उस पंथ की असंगतियों और मनुष्य विरोधी भावनाओं को पकड़ लेते थे। इस तरह वे निरंतर संवाद करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। इस कारण विभिन्न पंथनुयायियों से उनका एक द्वंद्वात्मक संवाद का नाता जीवन भर बना रहा। इस द्वंद्वात्मक संवाद के बीच एक ही सत्य है कि उन्होंने 'त्रिगुणातीत', द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर' ईश्वर को 'निर्गुण राम' कह कर संबोधित किया।

### बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्तियों में दीजिए।

क) भक्तिकाल को किस विद्वान ने लोक जागरण की संज्ञा दी है?

........................................................................................................

ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का कैसा रूप माना है?

........................................................................................................

........................................................................................................

ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा का संबंध कैसा माना है?

........................................................................................................

घ) किस विद्वान ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है?

........................................................................................................

........................................................................................................

## 3.4 कबीर की भक्ति

### 3.4.1 निर्गुण ईश्वर

कबीर उच्च कोटि के भक्त थे। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। कबीरदास की परम अनुरक्ति में शायद ही किसी को संदेह हो। परंतु उनकी आसक्ति ईश्वर के किसी सगुण साकार रूप पर न थी। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। निर्गुण अर्थात् गुण रहित। यहाँ गुण भी प्रसंगतः विशिष्टार्थ ध्वनित करता है। गुण अर्थात शरीर का वाचक धर्म। तब कबीर का ईश्वर शरीर के वाचक धर्मों से परे है। कबीरदास कहते हैं कि उनका हरि सबसे परे है। वह अगुण और सगुण दोनों से परे है, अजर-अमर दोनों के अतीत है :

संतो, धोखा कासू कहिये।
गुन मैं निरगुन, निरगुन में गुन, बात छाड़ि क्यूँ कहिये।
अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।
नीति स्वरूप बरण नहिं जाके घटि घटि रह्यौ समाई।
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई वाके आदि अरु अंतन होई।
प्यंड ब्रहमंड छांडि जे कहियै कहै कबीर हरि सोई।।

इतना ही नही, वह भाव और अभाव से भी परे है। अर्थात भाव और अभाव दोनों द्वारा उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता, वह दोनों से परे हैं :

कह्यां न उपजैं उपजां नहीं जाणै भाव अभाव बिहूगं।
उदै अहत जहाँ मति बुधि नाहीं सहजि राम ल्यौं लीनां।।

### 3.4.2 राम का स्वरूप

कबीर ने राम की उपासना की है। प्रश्न है कि कबीर के राम हैं कौन? कबीर को राम नाम का मंत्र गुरु रामानंद से प्राप्त हुआ था। परंतु उनके राम रामानंदी सगुण राम नहीं हैं। वह निर्गुण है। कबीरदास के इस निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के पीछे युग की ऐतिहासिक सीमाएँ ही जिम्मेवार थीं। कबीर के समय में जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद, मठवाद आदि समस्याएँ थीं। इन सब कुरीतियों का खामियाजा समाज के तथाकथित निम्न वर्ग को ही उठाना पड़ता था। इन तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों को साधना, पूजा अर्चना का अधिकार नहीं होता था। और जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है तो सदैव देवालयों की आकांक्षा क्यों हो? इस अंतर्विरोध के कारण ही कबीर आदि अनेक तथाकथित निम्न वर्ग के कवियों ने अपने लिए निर्गुण उपासना का मार्ग चुना और उन प्रचलित धार्मिक मतों का खंडन किया जिसने मनुष्य-मनुष्य में भेद बना रखा था। इससे निम्न वर्ण के लोगों को न केवल भक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ, अपितु उनमें आत्म सम्मान का भाव भी जागा। इसे कबीर के प्रति बहुत सहानुभूति नहीं रखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी स्वीकारते हैं। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।" अर्थात कबीर के राम पुराण प्रतिपादित राम नहीं थे। कबीर के राम ने न दशरथ के घर जन्म लिया और न ही रावण को मारा। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राम को दूर खोजने की जरूरत नहीं है। वह सारे शरीर में रम रहा है।

4. कबीर के राम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

5. 'निर्गुण' के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कबीर की निर्गुण भक्ति पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 3.5 कबीर की सामाजिक चेतना

कबीर सामाजिक धार्मिक दुरावस्था के काल में हुए थे। कबीरकालीन भारतीय समाज कई विरोधी विचार सरणियों, आग्रहों तथा उनके विरुद्ध संघर्षरत कई प्रकार की नई शक्तियों के कारण व्यापक उथल पुथल का था। सामंतवाद अपने सभी आयामों संग (ब्राह्मणवाद, वर्णवाद, जातिवाद आदि) था, तो इसके विरुद्ध संघर्ष चेतना लेकर चले बौद्ध, जैन, शाक्त, सिद्ध और नाथ आदि भी थे। फिर इन धार्मिक सरणियों का स्खलित और भ्रष्ट रूप भी था। एक ओर उग्र इस्लाम तो दूसरी ओर सूफी कबीर थे, जो समाज में अनेक स्तरों पर हिंदू मुस्लिम एकता का प्रयास कर रहे थे। इनके बीच सामान्य मनुष्य भी थे, जो धर्म के गैर मानवतावादी सरोकारों से भी जुड़े थे। जनता के धार्मिक जीवन में ईश्वर का अनुराग कम था, बाह्याडंबर ज्यादा थे। हर मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। इसीलिए तत्कालीन समाज में सामाजिक सरोकार लुप्तप्राय थे।

कबीर मूलतः भक्त थे और भक्तिमार्ग यथार्थ रूप में मानवतावादी दृष्टिकोण से ही परिचालित होता है। संस्कृति की चाहे जितनी जटिल व्याख्या की जाए, परंतु परदुखकातरता मनुष्य का प्रधान गुण स्वीकार किया जाता रहा है। कबीर कहते हैं :

> कबीरा सोई पीर है जो जाने परपीर।
> जो पर पीर न जानइ, सो काफिर बेपीर।।

इस परदुखकातरता के कारण ही कबीर अपने अनुभूत सत्य को शास्त्र सम्मत सत्यों से अलगाते हैं :

> तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होय रे।
> मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।।

सत्य प्राप्ति की लालसा में कबीरदास ने पूर्ववर्ती समाज में बनी मनुष्य की पहचान की कसौटियों पर तीखा प्रहार किया है। तत्कालीन समाज में मनुष्य की पहचान के दो आधार

थे- एक धर्म और दूसरा जाति और वर्ण। इन पहचानों को कबीर खारिज करते हैं और कहते हैं :

> हिंदू कहौ तो मैं नाहीं, मुसलमान भी नाहिं।
> पाँच तत्व का पूतला, गैबी बेलै माहिं।।

वे यह भी कहते हैं, 'हम वासी उस देस के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।'

आलोचनात्मक चेतना और प्रश्नाकुलता कबीर की कविता की दो ऐसी बुनियादी विशेषताएँ हैं, जो सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों के प्रति और भी बलवती हो उठती हैं। ये विशेषताएँ ही कबीर को आज भी समाज में प्रासंगिक बनाए हुए हैं। इन दोनों विशेषताओं से समृद्ध उनकी दृष्टि समाज की प्रत्येक रूढ़ि, आडंबर के एक एक कर तोड़ने की कोशिश करती है। वे हिंदुओं और मुसलमानों की तंगदिली पर प्रहार करते हैं। उनके बीच प्रचलित बाह्याडंबरों का प्रतिकार करते हैं। नमाज और मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं। समाज में प्रचलित अस्पृश्यता और छुआछूत का विरोध करते हैं :

> जो तू बांभन बांभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।
> जो तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।

कबीर वक्तव्य नहीं देते और न उपदेशक बनकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। उनके पास तर्क की भाषा है, जिसे वे संवेदना से संयोजित कर काव्य का रूप देते हैं। इसी कारण उपर्युक्त कथनों जैसे तमाम कथन अक्खड़ होकर भी अपशब्द नहीं लगते।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के प्रति असहानुभूति प्रकट की है। परंतु उनके महत्व को स्वीकारा भी है, "मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।" कबीर का यह कार्य अद्वितीय है। कबीर ने जातिभेद और संप्रदायवाद को जड़ से समाप्त करने के लिए ही एक ईश्वर की अवधारणा पर बल दिया। परंतु कबीर के समय अनेक संप्रदाय और ईश्वरोपासना, की विधियाँ प्रचलित थीं। कबीरदास ने वेदपाठ, तीर्थस्थान, छुआछूत, अवतारोपासना आदि तमाम आडंबरों का विरोध किया।

समय से विक्षुब्ध कोई भी सार्थक कवि केवल खंडनात्मक या निषेधात्मक होकर लंबी यात्रा नहीं कर सकता। कबीर ने समय का इतना लंबा अंतराल तय किया है, क्योंकि इन निषेधों के बावजूद उनके पास एक वैकल्पिक संसार का स्वप्न मौजूद था। कबीर ने माया के माध्यम से सामंती देहवाद, इंद्रियासक्ति, अहंकार आदि का विरोध किया।

कबीर का विद्रोह मध्ययुगीन समाज के प्रति विक्षोभ-आक्रोश की उपज है। परंतु उनका एक अधिक गहरा संसार भी है, जहाँ वे दार्शनिक जैसी बातें करते हैं। कबीरदास का धर्म भक्ति और मार्ग प्रेम था। कबीर का दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य को अगर सुख प्राप्त हो सकता है तो केवल ईश्वर की भक्ति में और दूसरों के साथ रहकर सुख प्राप्त हो सकता है तो प्रेम के राज्य में। उन्होंने मतवादों, आडंबरों को त्यागकर अपने लिए यह मार्ग स्वीकार किया है :

> निरवैरी निहकामता, सांई सेती नेह।
> विषिया सूँ न्यारा रहै, संतन का अंग एह।।

कबीरदास ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा, उसमें मानवता की पुकार है, किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं। कुछ आलोचकों ने उनकी प्रखरता को उनका दोष माना है। उन्हें सिर्फ समाज सुधारक बताया है। यह उनकी भावना के साथ पूरी तरह मेल नहीं

खाता। कबीर मूलतः भक्त थे। परंतु कबीर तथा अन्य भक्तों की भक्ति पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण अंतर यह था की अन्य भक्त कवियों ने जहाँ के बल भक्ति मार्ग का वर्णन किया, वहीं कबीरदास ने इसके अतिरिक्त इस मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों अर्थात कुरीतियों, आडंबरों (जिसके कारण भक्त ईश्वर कृपा से वंचित रह जाता है) का भी वर्णन किया। यहीं भक्त कबीर मानवतावादी कबीर बन जाते हैं।

**बोध प्रश्न**

6. कबीर की सामाजिक चेतना के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

.....................................................................................................................

## 3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य

कविता के द्वारा कविता से परे की संप्रेषित होने वाली विशिष्ट संवेदनशीलता महत्त्वपूर्ण कुंजी है- कवियों की भाषा। इन अर्थों में कबीर की भाषा अत्यंत विशिष्ट है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया। बन गई तो सीधे सीधे, नही ंतो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके। और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।"

### 3.6.1 प्रतीकात्मकता

कबीर की भाषा जनता के बीच से निकली थी, जिसमें व्याकरण और शास्त्र का आग्रह नहीं था। भाषा की सार्थकता की बात वहाँ उठती है, जहाँ भाव कमजोर हों। जहाँ भाव एवं विचार श्रेष्ठ हों, वहाँ भाषा सिर्फ संप्रेषणीयता का मसला रह जाती है। कबीर ने भाषा को जनता के बीच से उठाया और उसमें रहस्यात्मक प्रतीक मढ़ दिए। उनकी भाषा में अभिव्यंजना का हर उतार चढ़ाव मौजूद है। यहाँ तक कि उनके रहस्यवाद की तमाम उलझनें जिस स्तर पर सुलझती हैं, वह स्तर भाषा का ही है। जनता के बीच प्रचलित प्रतीक, रूपक और उपमानों को जगह देकर कबीर अपने पदों को जीवंत कर देते हैं। यही वजह है कि जनता उनके प्रतीकों की दुर्बोधता के बीच भी बोध-भूमि तलाश लेती है-

आगि जू लागि नीर माहि, कांदो जरिया झारि।
उत्तर दक्षिण के पंडिता मुए विचारी विचारी।।

विरह की आग जब मानस रूपी नीर में लगती है, तब उसमें निहित विषयवासनाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं और उत्तर दक्षिण के पंडित विचार करने पर भी इसका रहस्य नहीं समझ पाते। यहाँ कबीर ने आग, जल, कीचड़ आदि प्रतीकों के माध्यम से जिस कथन को संप्रेषित किया है, वह किसी साधारण जन के लिय भी दुर्बोध नहीं है। कबीर इस उलटबाँसी में असंगति अलंकार (पानी में आग लगना) की सहायता से विरहाग्नि के धधकने और उसमें वासनाओं के कीचड़ के जलने की गंभीर चर्चा करते हैं, परंतु जैसे ही मौका मिलता है, उत्तर दक्षिण के पंडितों के बहाने धर्मशास्त्रज्ञों पर प्रहार भी करते हैं, जिनका ज्ञान केवल पोथियों तक सीमित है।

कबीर रमतायोगी थे भाषा का प्रयोग वे अपनी सुविधानुसार करते हैं। इच्छानुसार करते हैं;

कहना था सो कह दिया, अब कहु कहना नाहिं।
एक रही दूजी भई, बैठा डरिया माहिं।।

कबीर की भाषा की अक्खड़ता ही उसका प्राण है। जब वे व्यंग्य पर उतर आते हैं, तब पंडित और मुल्ला, अवधूत और योगी सभी उनके बाणों से बिंध कर रह जाते हैं।

कबीर की कविताओं में साधारण जीवन का स्मरण हुआ है। यह श्रोता को सहज आकृष्ट करता है। उन्होंने अपने गुह्य कथनों के लिए रूपकों का सहारा लिया, उपमाएँ परिचित शब्दावलियों के बीच से लीं, पर उसमें गहन अर्थ की परतें हैं। संबंधों की दीवार भी उनकी भाषा के लिए रुकावट नहीं हैं :

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी जित खेचै तित जाऊँ।

यहाँ नाम के रूप में 'मुतिया' का प्रयोग अत्यंत सार्थक है। इसमें कुत्ते की सारी निरीहता हाथ बाँधे खड़ी हो जाती है। 'मुतिया' के रूप में वही कबीर है जो गगन गुफा का कोना-कोना झाँकते हैं, बड़े बड़े अवधूतों को ललकारते हैं। यहाँ उनकी निरीहता, विश्वास परायण मनुष्य की निरीहता है। निष्ठावान व्यक्ति की विनम्रता है। कबीर की भाषा में लापरवाही, सजगता और आक्रमण तीनों गुण दिखाई देते हैं। आक्रमण की भाषा तो सिद्धों और योगियों की भी थी, पर उसमें वह आत्मविश्वास नहीं था, जो कबीर के पास था। कबीर दंभी नहीं थे, पर यदि उनमें दंभ जैसा कुछ दीखता है, तो वह दरअसल उनका अखंड आत्मविश्वास है :

कबीर माया पापिनीं फंद लो बैठी हाटि।
सब जग तो बन्दे परा, गया कबीरा काटि।।

उपर्युक्त विश्लेषण कबीर की भाषा संबंधी प्रवृत्ति और प्रकृति को स्पष्ट करता है। परंतु उनकी भाषा के संबंध में कुछ सूचनात्मक जानकारियाँ भी आवश्यक है। डा. श्याम सुंदर दास का मत है, कि ''कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है।'' आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विचार था साखियों की 'भाषा सधुक्कड़ी अर्थात राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं कहीं पूरवी बोली का भी व्यवहार है। "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत ऊपर बताया जा चुका है। निस्संदेह कबीर की भाषा मिश्रित भाषा थी। इसका कारण भी यही है कि इन्होंने लंबी यात्राएँ की। व्यापक सत्संग किया। साथ ही

पूरब की बोली बाली तो इनका व्यवहार गत संस्कार थी। अन्यथा इन्होंने किसी औपचारिक शिक्षा के माध्यम से अपनी भाषा का निर्माण तो नहीं किया है। इसी कारण इनकी रचनाओं में खड़ी बोली, पंजाबी और राजस्थानी का प्रचुर प्रभाव है। उदाहरण :

खड़ी बोली : तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ
बारी केरी बलि गई, जित देखो तित तूँ।।

पंजाबी : झाँई पड़ी पंथ निहारि-निहारि

राजस्थानी : ना जाने कब मारसी

इस संदर्भ का विश्वनाथ त्रिपाठी ने उचित ही समाहार किया है, "कबीर की भाषा पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन दिनों कबीर रचना कर रहे थे उन दिनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का काव्य भाषा के रूप में विभाजन आज जैसा स्पष्ट नहीं था। कबीर मूलतः संत थे। उनकी रचनाओं का उद्देश्य अपने विचारों और अपनी अंतर साधनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना था।" इसीलिए प्रचलित भाषा में कबीर ने रचना की। संप्रेषणीयता उनकी भाषा की अनिवार्य और संभवतः एक मात्र शर्त है।

### 3.6.2 उलटबाँसी

कबीर के काव्य रूपों पर विचार करते समय कबीर की उलटबाँसियों पर विचार करना भी आवश्यक है। अभिव्यक्ति की निरंतरता से शैली का जन्म होता है किंतु इसके उलट अर्थ को व्यवहृति न मिलने से शब्द प्रतीक बनते हैं। भाषा के इतिहास में प्रतीकों का अपना विशिष्ट स्थान है, परंतु यह बतलाना दुरूह कार्य है कि किस शब्द में प्रतीक शक्ति है। कोई भी शब्द प्रतीक बन सकता है। इसकी योग्यता प्रयोक्ता के हाथ में होती है। 'उलटबाँसी' भारतीय चिंतन परम्परा का शब्द है। यह गूढ़ और रहस्यमयी बातों के ढंग से व्यक्त करने की शैली है। इस शैली का प्रयोग बौद्धो, नाथपंथियों में भी मिलता है। संभवतः उपनिषद्ों की कुछ उक्तियाँ भी इस श्रेणी में आती हैं।

कबीर की उलटबाँसियाँ उनकी प्रतीक योजना का अभिन्न अंग हैं। एक पद देखिए-

एक अचंभौ देखा रे भाई।
ठाढ़ा सिंघ गाइ चरावै गाइ।।
पहिलै पूत पिछे भई माई, चेला के गुर लागै पाई।
जल की मछरी तरवरि ब्याई, कुता कौ लै गई बिलाई।
बैलहि डारि गोंनि घरि आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाइ।
तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकौं तीनिऊँ त्रिभुवन सूझै।

अगर इस पद के सामान्य अर्थ पर विचार करेंगे तो हमारे हाथ शायद ही कुछ लगे। हमें इसका प्रतीकार्थ समझना होगा। सामान्य जीव इंद्रियों के वश में रहता है, पर सिद्धि प्राप्त होने पर इंद्रियाँ जीव के वश में आ जाती हैं। पहले साधक होता है, फिर साधना होती है और शिष्य या साधक जब पूर्ण रूप से अंतर्मुखी हो जाता है, विषयों से विरक्त हो जाता है, तब अंतरात्मा इसे अपनी ओर आकृष्ट करता है। पहले साधक अंतरात्मा से साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील था, किन्तु सिद्धि के निकट पहुँचने पर स्वयं अंतरात्मा उसकी ओर उन्मुख होती है। यही गुरु का शिष्य के पैर लगना है। वास्तव में यह सिद्धि की चरमावस्था को अभिव्यंजित करने के लिए रचा गया प्रतीक विधान है।

कबीर की अधिकांश उलटबाँसियाँ आध्यात्मिक-दार्शनिक उक्तियाँ हैं। इस शैली के कारण उनकी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियों में एक किस्म का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

**बोध प्रश्न**

7. उलटबाँसी क्या है? कबीर के काव्य से एक उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

## 3.7 कबीर के काव्य का वाचन और व्याख्या

आपने कबीर काव्य का अब तक जो अध्ययन किया है, उससे उनके काव्य की विशेषताओं को भलीभाँति समझ गए होंगे। कबीर काव्य के उपर्युक्त विवेचन के साथ हमने कबीर की रचनाओं के कुछ उदाहरण भी दिए हैं। इन रचनाओं में प्रयुक्त शब्द तथा अर्थों को समझने में कठिनाई आ सकती है। आप ध्यान से दोबारा इकाई को पढ़िए आपको कबीर की रचनाओं के निहितार्थ को समझने में काफी मदद मिलेगी। आगे हम कबीर काव्य के कुछ अंशों का वाचन प्रस्तुत कर रहे हैं। आपकी सुविधा के लिए कुछ अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या भी दी गई है। इनके आधार पर ही कबीर के पदों/साखियों की व्याख्या स्वयं करने का प्रयास करें।

1. **झीनी झीनी बीनी चदरिया।।**
   **काह के ताना काह के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।**
   **इँगला पिंगला ताना भरनी, सुशमन तार से बीनी चदरिया।।**
   **आठ कमल दल चरखा डोलै, पाँच तत्व गुण तीनी चदरिया।**
   **साईं को सियत मास दष लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया।।**
   **सो चादर सुर नर मुनि ओढ़िन, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।**
   **दास कबीर यतन से ओढ़िन, जयोंका त्यों धरि दीनी चदरिया।।**

**संदर्भ**

कबीरदास मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साहित्य के प्रमुख कवि हैं। यह पद जीवन की संभाव्यता, उसकी निर्मिति, ईश्वर और माया से उसके संबंध को प्रस्तावित करता है। इसमें इन तमाम संदर्भों को कबीर ने वस्त्र निर्माण की प्रविधि के व्याज से बताया है तथा एक व्यापक रूपक का निर्माण किया गया है।

### व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि जिस चादर का निर्माण किया है वह चादर 'झीनी झीनी' है। झीना होना चादर की जीर्णता, पुरानेपन का भी अर्थ देता है और उत्कृष्टता श्रेष्ठता का भी। परंतु आखिरी पंक्ति में कबीरदास ने जिस आत्मविश्वास का परिचय दिया है, वह उत्कृष्टता श्रेष्ठता का वाचक ज्यादा प्रतीत होता है। पुराने का संदर्भ उम्र की प्रौढ़ता से हो सकता। आगे कबीरदास पूछते हैं कि यह चादर किस ताने बाने से निर्मित हुई है? किस तार या सूत से निर्मित हुई है? कबीरदास कहते हैं कि इंगला पिंगला ताना बाना है और सुषमन तार से शरीर रूपी चादर का निर्माण हुआ है। अष्टचक्र दल चरखा है जिससे सूत का निर्माण होता है। पाँच तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) और तीन गुणों (सत्, रज, तम) से इस शरीर का निर्माण हुआ है। ईश्वर को शरीर रूपी कपड़े को सिलने में दस महीने लगते हैं। जैसे कुम्हार ठोक ठोक कर घड़े का निर्माण करता है, वैसे ही ईश्वर ठोक ठोक कर इस चादर का निर्माण करता है। ईश्वर द्वारा निर्मित शरीर रूपी इस चादर को सभी देवता, मनुष्य, ऋषि मुनि ओढ़ते हैं, पहनते हैं। दार्शनिक धरातल पर जीव चूँकि ईश्वर का अंश है। अतः जीवात्मा भी परमात्मा की तरह ही पवित्र और निर्मल है। परंतु जीव जीवन क्रम में विभिन्न विषय-वासना, माया के अधीन जीवन जीता है। इस कारण वे इस ईश्वर प्रदत्त और ईश्वर अंश जीवात्मा को मैला कर देते हैं। वासनायुक्त कर देते हैं। कबीरदास कहते हैं कि ईश्वर के दास कबीर ने इस शरीर और आत्मा को बहुत संयम और साधना से ओढ़ा है। इस साधना और संयम के कारण ही ईश्वर ने इस शरीर को जैसा पवित्र और निर्मल बनाया था, उसे वैसा ही रखा है।

### विशेष

i) इस पद में कबीर ने अपने दैनंदिन जीवन के अनुभव, उसकी शब्दावली से रूपक का निर्माण किया है। इसका लक्ष्यार्थ निश्चितरूपेण वह निर्गुण ईश्वर ही है, जो कबीर का आराध्य है, परंतु इस पद में जिस आत्मविश्वास का प्रसार हुआ है, वह भाषा में उनके अनुभव के ढल जाने की क्षमता के कारण ही।

ii) कबीरदास की आराधना में सारे मत मतांतरों की शब्दावली, उनकी आचार व्यवहार नीति दिखाई पड़ती है। इस पद में योग की शब्दावली का व्यवहार हुआ है।

iii) कबीरदास के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को जिस रूप में कहना चाहा उसे उसी रूप में कह दिया। बन गया तो सीधे सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। यह पद भाषा के स्तर पर उनकी इस मान्यता को स्पष्ट करता है।

2. **कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नांउं।**
**गले राम की जेवरी, जित खैंचै तित जाउं।।**

### संदर्भ

प्रस्तुत साखी मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति शाखा के सर्वप्रमुख कवि कबीरदास द्वारा रचित है। उनकी यह साखी 'निहकर्मी पवित्रता को अंग' में है। इसमें भक्ति की एकनिष्ठता रेखांकित की गई है।

### व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ। कुत्ता कहकर वह दासत्व भाव प्रदर्शित करते हैं। मेरा नाम मुतिया है। मुतिया शब्द बहुत व्यंजक है। इस शब्द की व्यंजना के कारण

एक भक्त की सारी निरीहता हाथ जोड़े सम्मुख हो जाती है। इस निरीहता की ही व्यंजना अगली पंक्ति में है। मेरा गले में राम नाम की रस्सी है। वह अर्थात राम, मेरे स्वामी जिधर खींचते हैं मैं उधर हो जाता हूँ। अर्थात मैंने उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया है। उनकी जैसी इच्छा होती है, मैं वैसा ही करता हूँ।

**विशेष**

i) यह एक 'साखी' है। साखी शब्द 'साक्षी' से बना है अर्थात प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कबीर ने जो, द्विपदी में लिखें, वे साखी कहलाए। यह साखी एक विशेष मनःस्थिति को दर्शाता है। पूर्ण समर्पण की मनःस्थिति को, जो जीवन का मनोवैज्ञानिक सत्य है। अन्यथा कबीर जैसा अक्खड़ ऐसा समर्पण कम ही करता है।

ii) 'राम' शब्द कबीर की कविता में निर्गुण राम के लिए आता है। सगुण राम के लिए नहीं। कबीर ने अन्यत्र लिखा भी है :

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।
कबीर के लिए राम का मर्म ही महत्वपूर्ण है।

iii) 'मुतिया' शब्द से भाषा की व्यंजकता में वृद्धि होती है।

**3. पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।**
**कहिबै को सोभा नहीं, देखें ही परवांन।।**

**संदर्भ**

यह साखी परचा अंग से लिया गया है।

**अर्थ**

परब्रह्म के तेज का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान तो भौतिक संदर्भ है। परंतु ब्रह्म तो समस्त लौकिकता का अतिक्रमण करता है। उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है। उस अनिर्वचनीय निर्गुण ब्रह्म के बखान में भाषा और तमाम भौतिक साधन, जिनसे उस शोभा को प्रत्यक्ष कराया जा सकता है, अक्षम हैं। इसीलिए उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। चूँकि उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है, इसीलिए उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

**4. जब मै था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।**
**सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहि।।**

**संदर्भ** : उपर्युक्त 'साखी' में आत्मज्ञान के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है।

**व्याख्या** : कबीरदास कहते हैं कि जब तक मुझे अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध था अर्थात् जब मैं अपने को ईश्वर से अलग समझता था, तब वस्तुतः मैं ईश्वर को नहीं पहचान पाया था। लेकिन अब जब मैंने अपने अंदर की ज्योति को अर्थात् आत्मज्ञान के दर्शन कर लिए हैं तब अज्ञान रूपी अंधकार भी समाप्त हो गया है। अब मेरे लिए सिर्फ ईश्वर ही सत्य है, मैं अपने आप को ईश्वर में लीन कर चुका हूँ। मेरी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई है।

**विशेष** : कबीरदास का यह पद रहस्यवाद की उस स्थिति को व्यक्त करता है जब आत्मा परमात्मा से एकाकार हो जाती है और अपनी स्वतंत्र सत्ता के बोध को त्याग देती है।

हम आपको अभ्यास के लिए पद और साखी दे रहे हैं, आप स्वयं व्याख्या करने का प्रयास कीजिए।

**अभ्यास**

**संतों भाई आइ ग्यान की आंधी रे।**
**भ्रम की टाटी सबै उडाणी माया रहै न बांधी।।**
**हिति चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलीडा तूटा।**
**त्रिस्नां छानि परी धर ऊपर, कुबधि का भांडा फूटा।।**
**जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पाणी।**
**कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाणी।।**
**आंधी पीछै जौ** जल बूढ़ा, प्रेम हरि जन भीना।
**कहै कबीर भान** क प्रगटें, उदित भया तम षीनां।।

**संदर्भ :**

.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................

**व्याख्या :**

.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................

**विशेष :**

.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................
.......................................................................................................................

**साखी**

**यहु तन जालौ मसि करौं, लिखौं राम नाऊँ।**
**लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाऊँ।।**

**संदर्भ :**

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

**व्याख्या :**

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

**विशेष :**

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 3.8 सारांश

- कबीर हिंदी के उन प्रारंभिक कवियों में है जिन्होंने भक्ति को अधिकार के रूप में देखा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती थी।
- अक्खड़ता उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा था। संकीर्णता और रूढ़ियों के प्रतिकार के क्रम में उनके व्यक्तित्व का यह पहलू सामने आता है।
- कबीर के जन्म तथा मृत्यु के संबंध विद्वानों में मतभेद है। यह माना गया है कि पंद्रहवीं शताब्दी में वे विद्यमान थे।
- कबीर के ग्रंथों की प्रमाणिकता भी संदिग्ध है। उनकी रचनाएँ बीजक नाम से संग्रहीत हुईं।
- कबीर के काव्य को तीन भागों - साखी, सबद और रमैनी में बाँटा गया है।
- कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनकी साधना पद्धति निर्गुण का अभिप्राय गुण रहित होना है। उन्होंने अपने ब्रह्म के लिए राम संज्ञा का इस्तेमाल किया है परंतु उनके 'राम' सगुण अवतारी राम से अलग हैं।
- कबीर की साधना में रहस्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है।
- कबीर की साधना पद्धति पर अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद आदि विभिन्न पंथों का प्रभाव है।
- कबीर प्रखर सामाजिक चेतना के भक्त कवि थे। उन्होंने वर्णवाद, जातिवाद, धार्मिक संकीर्णता पर निरंतर प्रहार किया। उन्होंने हर तरह की रूढ़ियों को त्यागकर योग और प्रेम के मार्ग की प्रस्तावना की।

- कबीर की भाषा का कोई एक रूप नहीं मिलता। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, पंजाबी, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं - बोलियों का मिला-जुला रूप कबीर की अभिव्यक्तियों पाया जाता है। उन्होंने अपनी साधनात्मक अनुभूति के लिए उलटबाँसी का भी प्रयोग किया।

## 3.9 शब्दावली

**अद्वैतवाद -** अद्वैतवाद दर्शन की वह शाखा है जो सिर्फ ब्रह्म की सत्ता में विश्वास करता है। वह जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं करता। जो अंतर दिखाई देता है वह मायाजनित भ्रम है।

**समाधि -** योग तपस्या आदि का अंतिम चरण जब मन की चंचलता का शमन हो जाता है तथा वह ब्रह्म पर पूर्णतः केंद्रित हो जाता है।

## 3.10 उपयोगी पुस्तकें


- कबीरदास - हजारी प्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- कबीर - विजयेन्द्र स्नातक; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- अकथ कहानी प्रेम की - पुरुषोत्तम अग्रवाल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- कबीर साहित्य की परख - परशुराम चतुर्वेदी; भारती भंडार, इलाहाबाद।


## 3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क) - (iii)

   ख) - (i)

   ग) - (ii)

   घ) - (iii)

2. देखिए भाग 3.2

3. क) डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोक जागरण की संज्ञा दी है।

   ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है।

   ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा में एकत्व का संबंध माना है।

   घ) डॉ. रामकुमार वर्मा ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है।

4. देखिए - भाग 3.4

5. देखिए - भाग 3.4

6. देखिए - भाग 3.5

7. देखिए - भाग 3.6

# इकाई 4 रविदास का काव्य

## इकाई की रूपरेखा


4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 रविदास का जीवन परिचय

- 4.2.1 जन्म और मृत्यु
- 4.2.2 माता-पिता और परिवार
- 4.2.3 जनश्रुति और दंतकथाएँ
- 4.2.4 जीवन कर्म

4.3 रविदास की रचनाएँ

4.4 भक्ति आंदोलन और रविदास

4.5 भक्ति भावना

- 4.5.1 राम का स्वरूप
- 4.5.2 मानव शरीर
- 4.5.3 भक्ति का उद्देश्य

4.6 रविदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

4.7 सारांश

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रविदास के जीवन का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- रविदास के जीवन से जुड़ी अनेक जनश्रुतियों को समझ सकेंगे;
- रविदास के कृतित्व संबंधी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- भक्ति आंदोलन में रविदास का स्थान निर्धारित कर सकेंगे; और
- रविदास के भक्ति भाव की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भक्त कवियों में रविदास का नाम बहुत आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका उल्लेख कबीर, दादू दयाल और मीराबाई के साथ किया जाता है। ये निर्गुण भक्तिकाव्य धारा की परंपरा के कवि माने जाते हैं। इनकी रचनाओं में ईश्वर के निर्गुण रूप की आराधना, सामाजिक विषमता पर व्यंग्य एवं सामाजिक भेदभाव का विरोध मिलता है। इनके जीवन से संबंधित अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। इन जनश्रुतियों में

उनका सात्विक जीवन अभिव्यक्त हुआ है। अनन्तदास संत कवि पीपा के पौत्र थे। उन्होंने अनेक मध्यकालीन संतों की परचयियाँ लिखी थीं, जो 'मठों, आश्रमों, गाँवों, चौपालों, सत्संग बैठकों में गाई-बजाई-सुनाई' जाती थीं। इन परचयियों में उन्होंने तमाम संतों के जीवन से संबंधित अतिप्रचलित जनश्रुतियों को एकत्रित कर रखा है। 'रैदास परचयी' की रचना उन्होंने संवत् 1645 में की थी।

अनंतदास ने 'रैदास परचयी' में उनके जीवन के बारे में प्रचलित दंतकथाओं और जनश्रुतियों को प्रस्तुत किया है। ये कबीर के समकालीन थे। उनकी अनेक मान्यताएँ कबीर से मिलती हैं। परंतु इनको कबीर से प्रभावित संत नहीं कहा जा सकता। इनका स्वतंत्र व्यक्तित्व था तथा इनका अभिव्यक्ति कौशल भी कबीर से भिन्न था। ये शांत प्रकृति के संत थे, इसलिए इनमें वर्णाश्रम का उग्र विरोध नहीं मिलता वरन् वे अपनी सहमति-असहमति व्यक्त करके आगे बढ़ जाते थे। वे सभी मनुष्य की समानता में विश्वास करते थे तथा इस धारणा में यकीन करते हैं। संसार में सत्य एकमात्र ईश्वर है। इस ईश्वर की भक्ति ही जीवन का चरम उद्‌देश्य है। उन्होंने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा, जो बिना 'गम' के हो- अर्थात् दुःख रहित हो, इस समाज को रविदास 'बेगमपुरा' कहते हैं।

## 4.2 रविदास का जीवन परिचय

### 4.2.1 जन्म और मृत्यु

सभी मध्यकालीन भक्तों और संतों की तरह रविदास या रविदास के जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। अभी तक हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि रविदास का जन्म और मृत्यु की तिथि और वर्ष कौन-सा है। इनका जन्म स्थान कहाँ है? इनके माता-पिता कौन थे? इन सब बातों के लिए परस्पर विरोधी मत मिलते हैं। उनके बारे में अनेक किंवदंतियाँ और जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उनके विश्लेषण के द्वारा हम कुछ अनुमानित निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी विद्वान मानते हैं कि रविदास नामक कवि ने भक्ति की रचनाएँ की थीं। साथ ही रविदास के बारे में अन्य भक्त कवियों ने टिप्पणियाँ की हैं। इन जनश्रुतियों में भी कवियों आपसी संबंधों का पता चलता है। इस बात में सभी विद्वान एकमत हैं कि रविदास की जाति चमार थी। ऐसा स्वयं रविदास ने अपनी अनेक साखियों में लिखा है। 'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारा' लिखकर उन्होंने स्वयं अपनी जाति की घोषणा की है।

रविदास के जन्म स्थान के बारे में दो-तीन मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म राजस्थान में या गुजरात में हुआ। कुछ विद्वान इन्हें 'मांडवगढ़' या 'मंडावर' का निवासी मानते हैं। यहाँ उनकी एक कुटी भी है तथा इनकी जाति के बहुत से लोग यहाँ निवास करते हैं। अधिकतर विद्वानों का मत है कि इनका जन्म काशी में हुआ था। स्वयं रविदास ने **'रैदास रामायणी'** में लिखा है-

> काशी डिग मांडूर सथाना, शुद्ध वरण करता गुजराना।
> मांडूर नगर लीन औतारा, **रविदास** सुभनाम हमारा।।

कुछ लोग इनका जन्मस्थान काशी के सीर गोवर्धनपुर को मानते हैं। उनके जन्म स्थान को लेकर भले ही विवाद हो लेकिन अधिकतर विद्वान इनका मृत्यु स्थान चितौड़ को मानते हैं। चितौड़ की रानी झाली इनकी शिष्या मानी जाती है। उनके ही निमंत्रण पर ये चितौड़ गए। यहीं इनकी मृत्यु हो गई।

विद्वानों का मत है कि इन्हें लम्बी उम्र मिली। अधिकतर विद्वानों के अनुसार उन्होंने 130 वर्ष का जीवन जीया। धन्ना भगत, मीरा और कबीर के जीवनकाल में वे उपस्थित थे। रविदास के शिष्य परंपरा में यह मान्यता प्रचलित है कि उनका जन्म माघ-पूर्णिमा के दिन रविवार को हुआ था।

चौदह से तैंतीस की माघ सुदी पंदरास।
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे श्री रविदास।।

इस दोहे के आधार पर तथा 'अन्य किसी प्रबल प्रमाण के अभाव में' प्रो. धर्मपाल मैनी संवत् 1433 का माघ पूर्णिमा को उनकी जन्म तिथि मानते हैं और इनकी मृत्यु संवत् 1584 को मानते हैं। इस दृष्टि से उनकी उम्र 150 वर्ष के आसपास ठहरती है, जो उचित जान नहीं पड़ती। कुछ विद्वान अन्य स्रोतों के माध्यम से इनका जन्म 1398 और मृत्यु 1518 मानते हैं। इस तरह उनकी आयु 120 वर्ष ठहरती है।

रविदास के बारे में यह मत भी प्रचलित है कि वे रामानंद के शिष्य थे तथा कबीर, मीरा और धन्ना भगत के समकालीन थे। इस आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म संवत् 1500 अर्थात सन् 1443 के आसपास मानते हैं। रविदास के सम्प्रदाय और शिष्य परंपरा में उनकी मृत्यु की तिथि चैत बदी चतुर्दशी मानी जाती है। इसलिए इनकी मृत्यु का अनुमान संवत् 1596 मानी जाती है। कुछ लोग कबीर से रविदास को वरिष्ठ सिद्ध करना चाहते हैं। अतः उनकी उम्र को 150 वर्ष या 130 वर्ष तक खींच ले जाते हैं। यदि उनका जन्म 1443 में और मृत्यु 1539 ई. में मानी जाए तो यह स्वाभाविक जान पड़ता है। हालाँकि यह भी प्रवाद प्रचलित है कि उनकी मृत्यु को किसी ने देखा नहीं। अतः शिष्यों ने उन्हें सदेह लुप्त होने को प्रचारित कर दिया।

### 4.2.2 माता-पिता और परिवार

इनके माता-पिता के नाम के बारे में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ लोग इनके पिता का नाम मानदास बताते हैं। रविदास रामायण में इनके पिता का नाम 'राहू' आया है, जो रग्घू का परिवर्तित रूप है। तथा इनकी माता का नाम धुर बनिया सिद्ध किया है। रविदास विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम 'लोना' या लोणा था। इनके संतानों के बारे में भी कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। फिर भी विद्वानों की खोज और अनुमान के अनुसार इनके पुत्र का नाम विजय दास था।

### 4.2.3 जनश्रुति और दंतकथाएँ

रविदास के जीवन के बारे में अनेक अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। कुछ कथाएँ उनके पूर्व जन्म के बारे में प्रचलित हैं। इन कथाओं में उनके पूर्व जन्म में ब्राह्मण होने की धारणा को व्यक्त किया गया है। इसके मूल में दो बातें मान्य हैं। एक तो रविदास बहुत प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे। इसकी स्वीकृति मिलती है। इसके साथ ही दूसरी मान्यता यह है कि रविदास 'नीची समझी जाने वाली' जाति के व्यक्ति थे। और माना जाता था कि ऐसी जाति को व्यक्ति इतना प्रतिभाशाली और प्रभावशाली नहीं हो सकता। अतः हो न हो, ये पूर्व जन्म में ब्राह्मण थे। ऐसी धार्मिक प्रतिभा तो सिर्फ ब्राहमणों में ही हो सकती है। 'भक्तमाल' की कथा के अनुसार रविदास रामानंद के शिष्य थे। इस कथा के अनुसार रामानंद का एक शिष्य हमेशा भिक्षा लेकर आता था तथा उसी का भोजन रामानंद करते थे। उनकी इस कुटिया के पास एक बनिया रहता था। वह हमेशा आग्रह करता था कि स्वामी जी उनके घर पर भिक्षा लेने के लिए अपने शिष्य को भेजें। स्वामी रामानंद उस बनिये की भिक्षा स्वीकार नहीं करते

थे। एक दिन तेज वर्षा होने लगी, जिसके कारण वह शिष्य बाहर कहीं जा न पाया। रामानंद को भोजन करवाना तो जरूरी है, यह सोचकर वह उस बनिये के घर से भिक्षा ले आया। स्वामी जी खाना खान लगे तो उन्हें पता चल गया कि आज उस बनिये के घर से खाना आया है। यह जानकर स्वामी रामानंद ने उस शिष्य को यह श्राप दिया कि जा तू किसी चमार के घर जन्म ले। और जनश्रुति के अनुसार रामानंद का यही शिष्य रविदास या रविदास के रूप में पैदा हुआ। पूर्व जन्म के इन्हीं संस्कारों के कारण रविदास इतने प्रतिभाशाली और प्रभावशाली हैं। अनन्तदास का भी विचार है कि रविदास पूर्व जन्म के ब्राहमण थे। ब्राहमण होते हुए भी उन्होंने मांस खा लिया। इस अपराध के कारण उन्हें चमार के घर जन्म लेना पड़ा। इसी तरह चितौड़ की झाली रानी ने संत रविदास के सम्मान में भोज दिया। ब्राहमणों से विवाद हुआ, तब रविदास ने अपनी त्वचा को चीरकर बताया कि इस त्वचा के नीचे सोने की जनेऊ है। अतः सिद्ध होता है कि रविदास भी पूर्वजन्म के ब्राह्मण है। इस तरह की कई कथाएँ रविदास के संदर्भ में प्रचलित हैं। जब रविदास का महत्व स्वीकृत हुआ, तब उनका ब्राह्मण वर्ग से संघर्ष हुआ। इन संघर्षों में रविदास की विजय का वर्णन किया गया है। एक जनश्रुति के अनुसार काशी के पंडित राज दरबार में पहुँचे और उन्होंने काशी नरेश से शिकायत की कि एक तथाकथित निम्न जाति का व्यक्ति जनता में धर्म का उपदेश दे रहा है, जो अनुचित है। धर्म का उपदेश सिर्फ ब्राहमण दे सकता है। राज दरबार में रविदास को बुलाया गया और उन्हें अपने समर्थन में अपना पक्ष रखने की अनुमति दी गई। रविदास ने जाति और संप्रदाय की धारणा का खंडन किया। काशी नरेश ने दोनों पक्षों को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया। जब तर्क-वितर्क से कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ, तब वहाँ उपस्थित जनसमुदाय की इच्छा के अनुसार भगवान का सिंहासन मँगवाया गया और दोनों पक्षों को उस सिंहासन पर विराजमान भगवान की मूर्ति का आह्वान करने के लिए कहा गया। प्रारंभ में पंडितों ने मूर्ति का आह्वान किया, परंतु मूर्ति अपने स्थान से नहीं हटी। जब रविदास ने आह्वान किया तो भगवान की मूर्ति रविदास की गोद में आकर बैठ गई। अब शर्त के अनुरूप पराजित पक्ष द्वारा रविदास को सिंहासन पर बिठाकर अपने कंधों पर नगर भ्रमण करवाना था, जो पराजित पक्ष के पंडितों ने किया।

इसी तरह के एक विवाद की जनश्रुति प्रयाग के कुंभ मेले से जुड़ी है। विवाद का निर्णय इस बिंदु पर होना था कि जिसकी शालिग्राम की मूर्ति पानी पर तैरने लगे वह सच्चा भक्त है। इस विवाद में भी पत्थर की बनी हुई रविदास की 'सालिग राम' की मूर्ति पानी पर तैरनी लगी, जबकि पंडितों की लकड़ी की मूर्ति हल्की होने के बावजूद भी डूब गई।

इसी तरह की एक कथा चितौड़ की भी है। झाली रानी ने रविदास के सम्मान में भोज दिया। वहाँ के ब्राह्मणों ने रविदास के साथ बैठकर भोजन करने से इंकार कर दिया। फिर तय हुआ कि ब्राह्मणों के लिए अलग से भोजन की व्यवस्था की जाए। यहाँ एक चमत्कार घटित हुआ। ब्राह्मण जब भोजन करने लगे तब उन्होंने देखा कि प्रत्येक ब्राह्मण के पास रविदास बैठे हुए हैं। इस चमत्कार को देखकर ब्राह्मणों ने रविदास से क्षमा माँगी।

### 4.2.4 जीवन-कर्म

रविदास की जाति चमार थी। चमार चमड़े का काम करते थे। मरे हुए जानवरों की खाल से जूते बनाने का काम करते थे। रविदास ने गर्व से अपनी जाति का और अपने कर्म का उल्लेख किया है। वे अपनी जाति को लेकर शर्मिंदा नहीं थे। सवर्ण लोग चाहे जो समझें, रविदास आत्मविश्वास से अपना परिचय देते थे। वे अपनी जाति को तो मानते थे, परंतु वे अपने आपको 'हीन' नहीं मानते थे। जो लोग उन्हें हीन मानते थे, रविदास उनसे सहमत नहीं थे। उन्हें अपने आपसे किसी प्रकार का असंतोष नहीं था। जो कुछ जीवन में मिला

है, उससे वे संतुष्ट थे। अधिक प्राप्त करने की आकांक्षा उनमें नहीं थी। हालाँकि वे जूते का व्यवसाय करते थे, परंतु अपने सांसारिक व्यवसाय में उनका मन नहीं लगता था। उनका मन ईश्वर भक्ति में और साधु-संगति में लगता था। इसलिए व्यवसाय की दृष्टि से वे सफल नहीं थे। परंतु उनको लोभ-लालच नहीं था। उसी गरीबी में ही वे संतुष्ट थे।

एक जनश्रुति के अनुसार एक बार स्वयं भगवान, रविदास के पास आए। उनकी गरीबी को देखा और उनकी आर्थिक दशा सुधारने का प्रयास किया। कहते हैं कि वे पारस पत्थर लेकर आए थे। माना जाता है कि पारस का स्पर्श लोहे से करने पर लोहा सोना बन जाता है। रविदास ने कहा कि मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरे जीवन-निर्वाह के लिए सब पर्याप्त है। बहुत आग्रह करने पर रविदास ने कहा कि इसे छप्पर में रख दो। वह पारस पत्थर देकर भगवान चले गए। साल भर बाद जब भगवान वापिस आए तो रविदास के घर में वैसी ही गरीबी दिखी। उन्होंने रविदास से उस पारस के बारे में पूछा तो रविदास ने बताया कि जहाँ आपने उसे रखा है, वह वहीं पड़ा है। ऐसा लोभ रहित जीवन रविदास की अपनी विशेषता है।

अपना अधिकांश समय साधु-संगति में बिताने पर उनके परिवार के लोग नाराज होने लगे। पिता ने उनका विवाह कर दिया। पत्नी ने पति के कामों में सहयोग किया। यह देखकर पिता ने उन्हें अपने घर से अलग कर दिया और पिछवाड़े में एक झोंपड़ा दे दिया। रविदास उसी झोंपड़े में सुख-पूर्वक रहने लगे। अनंतदास ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा-

> बड़ौ भयौ तब न्यारौ कीनौ, बाँरे औवे सो बाँरि न।
> राख्या बावरी के पिछवारे, कछु न कहयौ दीनौ रविदास बिचारे।।
> सीधो चाम मोल लै आवै, ताकी पनही अधिक बनावै।
> टूटे फाटे जरवा जोरे, मसकत करि काहु न निहारै।।

इसी तरह से उनका पारिवारिक जीवन चलता रहा। इसके अलावा रविदास ने पर्याप्त देशाटन किया। देश-विदेश के अनेक संतों-विचारकों से उन्होंने ज्ञान चर्चा की। अनेक लोग उनके शिष्य बने। कई स्थानों पर उनके स्मारक बनाए गए। कुंभ के अवसर पर उन्होंने प्रयाग की यात्रा की। मथुरा-वृंदावन की भी उन्होंने यात्राएँ कीं। कुछ विद्वानों का विचार है कि वे सुदूर दक्षिण में तिरुपति तक गए। इस अर्थ में वे कबीर के समानधर्मी थे। अन्य संतों और भक्तों की तरह वे भ्रमणशील व्यक्ति थे। इसी तरह अनेक साधु-संत उनसे मिलने आते थे और रविदास उनका सत्कार करते थे। जिनके जूते फटे हुए होते थे, रविदास उन्हें जूते बनाकर भेंट कर देते थे। इस अर्थ में वे व्यापारिक मनोवृति के नहीं थे। वे इस पर विश्वास करते थे कि सत्संग और चर्चा से ज्ञान का विकास होता है। इसलिए वे संवाद में विश्वास रखते थे। उनके जीवन काल में ही उनकी ख्याति बढ़ गई थी जो आज तक विद्यमान है।

वे वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक नहीं थे, वरन् जाति-पाँति के भेद को निरर्थक मानते थे। तब भी वे कबीर के समान विरोधी मत वालों के प्रति आक्रामक नहीं थे। इसलिए उनकी स्वीकृति राजा, रंक, ब्राह्मण, और दलित वर्ग सभी में समान रूप से थी। उनकी कविता में सामाजिक समरसता को हम उनके जीवन में भी देख सकते हैं।

निर्गुण भक्ति काव्यधारा के अधिकांश कवि वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन करते हैं। वे इसके समर्थक नहीं है। इसके साथ ही 'वेद प्रमाण है' इस धारणा का भी जोरदार खंडन करते हैं। इसी का एक निहितार्थ यह भी है कि वे जन्म से किसी ब्राह्मण को श्रेष्ठ नहीं मानते।

## 4.3 रविदास की रचनाएँ

रविदास मुक्तक चिंतक और कवि हैं। उन्होंने किसी प्रबंध काव्य की रचना नहीं की। यह भी जानकारी उपलब्ध नहीं है कि वे स्वयं शिक्षित थे या नहीं। शिक्षित नहीं होने के कारण

उनकी रचनाओं को उनके भक्तों और समर्थकों ने संग्रहीत किया होगा। इसलिए उनकी रचनाओं के प्रामाणिक पाठ को खोजना दुष्कर कार्य है। पाठ के अभाव में उनकी रचनाओं को वाणी कहा जाता है। रविदास जो बोलते थे, उसे भक्त लोग याद कर लेते थे। इस स्मृति को स्थायी करने के लिए परवर्ती काल में उनकी रचनाओं को लिखित रूप दे दिया गया।

रविदास की वाणी 'गुरु ग्रंथ साहब' में शामिल की गई थी। सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने सन् 1604 में इस आदि ग्रंथ को संपादित किया था। इस विशाल ग्रंथ में अनेक संतों और भक्तों की रचनाएँ शामिल की गई हैं। इसमें रविदास के 40 पद और एक दोहा शामिल किया गया है। इनके अलावा अनेक विद्वानों ने रविदास वाणी पर शोध कार्य किया है। इनमें वियोगी हरि, परशुराम चतर्वेदी, डॉ. बेणी प्रसाद शर्मा और डॉ. शुकदेव सिंह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ. शुकदेव सिंह ने 'रविदास बानी' शीर्षक ग्रंथ में उनकी सभी वाणियों को संपादित किया है।

जैसा कि हमने पहले भी बताया कि रविदास के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं पर उनके समकालीन भक्तों और संतों ने भी टिप्पणियाँ की हैं। 'भक्तमाल' में नाभादास ने रविदास के ऐतिहासिक महत्व पर टिप्पणी की है। इनके अलावा मीराबाई, कबीर, धन्ना भगत और सेना नाई ने इनका उल्लेख किया है। डॉ. शुकदेव सिंह ने अपने ग्रंथ में पंजाबी परंपरा की परचई को भी प्रकाशित किया है। यह रविदास भगत की परची है। इसके अलावा रविदास की परचई भी उपलब्ध है, जिससे उनके जीवन, साधना और कर्मों का परिचय मिलता है। इस परचई में कई अलौकिक घटनाओं को भी उल्लेख मिलता है।

## 4.4 भक्ति आंदोलन और रविदास

भक्ति आंदोलन के संदर्भ में आप विस्तार से इकाई संख्या 1 में अध्ययन कर चुके हैं। आपकी सुविधा के लिए हम पुनः संक्षेप में यहाँ भक्तिधाराओं की हिंदी में भक्ति आंदोलन के चार शाखाएँ प्रसिद्ध हैं- इनके मुख्य भाग दो हैं- सगुण और निर्गुण भक्ति। जो ईश्वर की सगुण रूप में आराधना करते हैं वे सगुण भक्त कहलाते हैं। हिंदी में मुख्यतः राम और कृष्ण भक्ति का बोल बाला रहा है। ये मूर्ति पूजा में, अवतारवाद में और ईश्वर के रूप में विश्वास करते हैं। इसकी दो शाखाएँ हैं- रामभक्ति और कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास और कृष्ण भक्ति के प्रतिनिधि कवि सूरदास माने जाते हैं। निर्गुण भक्ति शाखा के भी दो भेद स्वीकृत हैं- ज्ञान मार्गी निर्गुण भक्ति और प्रेममार्गी सूफी शाखा। निर्गुण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास माने जाते हैं। प्रेममार्गी सूफी शाखा इस्लाम से प्रचलित है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि मलिक मोहम्मद जायसी माने गए हैं।

रविदास ज्ञानमार्गी शाखा के निर्गुण कवि हैं। ये कबीर के समकालीन थे। निर्गुण शाखा के होते हुए भी रविदास ने अपने वचनों में सगुण भक्ति के पौराणिक प्रसंगों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है- विशेष रूप से भगवान के कल्याणकारी कार्यों का उल्लेख किया है। 'प्रह्लाद चरित' पर तो उन्होंने स्वयं कविता भी लिखी है। इसी तरह ईश्वर से प्रार्थना करते हुए वे ईश्वर के उन कार्यों का स्मरण करते हैं, जो ईश्वर के सगुण रूप को स्थापित करते हैं। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि रविदास कबीर की भाँति उग्र रूप में सगुण का खंडन नहीं करते। वे अपने मत को प्रतिष्ठित करते हैं। लेकिन मूर्ति पूजा अवतार वाद और अन्य पौराणिक गतिविधियों की कठोर निंदा करते हैं। निर्गुण भक्ति धारा के कवि सगुण मत की इन मान्यताओं का विरोध करते हैं। सगुण भक्त मानते हैं कि वेद प्रमाण है और ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अर्थात् समाज में सभी मनुष्य समान नहीं है। इस तरह वर्णाश्रम श्रेष्ठ है। निर्गुण भक्तों ने इन मान्यताओं का खंडन किया। वे कहते

हैं कि वेद प्रमाण नहीं है, वरन् अनुभव प्रमाण है, जिसे कबीर ने 'आँखिन देखी' कहा है। इसी तरह वे मानते हैं कि कोई मनुष्य श्रेष्ठ या अधम नहीं है। वे मानते हैं कि ऊँच-नीच की भावना का समाज में कोई स्थान नहीं होना चाहिए, सभी मनुष्य ईश्वर की संतान है, इसलिए सभी मनुष्य समान हैं। अर्थात् वर्णाश्रम कर्म सही नही है। इसके स्थान पर रविदास 'बेगमपुरा' की धारणा सामने रखते हैं, जहाँ मनुष्य को दैहिक, भौतिक और दैविक किसी प्रकार का ताप सहन करना नहीं पड़ता। इन्हीं आधारों पर निर्गुण कवियों ने साहित्य सृजन किया है।

**बोध प्रश्न**

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही ( ✓ ) अथवा गलत ( × ) का चिह्न लगाकर दीजिए :

   क) निर्गुण भक्तिधारा के कवि वर्णाश्रम व्यवस्था खंडन करते हैं। ( )

   ख) रविदास ने प्रबंध काव्य की रचना की। ( )

   ग) आदि ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' का संपादन 1604 में किया गया था। ( )

   घ) रविदास निर्गुण प्रेममार्गी शाखा के कवि हैं। ( )

2. रविदास का जीवन परिचय लिखिए। (लगभग 8 पंक्तियों में)

   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................

3. रविदास का जन्म और उनकी मृत्यु कब हुई ?

   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................

4. 'रैदास परचयी' के लेखक का नाम बताइए।

   ......................................................................................................
   ......................................................................................................

5. भक्ति आंदोलन में रविदास का स्थान निर्धारित कीजिए।

   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................
   ......................................................................................................

## 4.5 भक्ति भावना

भक्तिकाल के सभी कवि चाहे वे निर्गुण हो या सगुण ईश्वर की भक्ति में विश्वास करते हैं। इन कवियों में ईश्वर तर्क का, विचार का या दर्शन का विषय नहीं है, वरन् भक्ति का विषय है। इसका यह भी अर्थ होता है कि भक्त और भगवान का सगुण अथवा निर्गुण वैयक्तिक होता है। ईश्वर के स्वरूप के संबंध में चाहे जो भी मतभेद रहा हो, लेकिन इस बात से सभी एकमत हैं कि ईश्वर एक होता है, जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है। एक जीव होता है जो ईश्वर का अंश होता है तथा वह जीव या आत्मा ईश्वर की आराधना करती है। यह आराधना ही भक्ति है।

निर्गुण कवि उस निराकार ईश्वर की आराधना करते हैं जो सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। इस आराधना में कई बाधाएँ हैं जिन्हें माया के रूप में स्पष्ट किया गया। निर्गुण कवियों ने मनुष्य की चेतना का विवेचन किया है। इस चेतना में मनुष्य भक्ति में मन और इन्द्रियाँ आती हैं। ये चेतना के दो रूप ही सबसे बड़ी बाधा है। मनुष्य का मन दसों दिशाओं में भटकता है। वह एक ईश्वर पर केन्द्रित नहीं हो पाता। मनुष्य की इन्द्रियाँ ऐन्द्रिय सुख में लिप्त रहती हैं तथा करणीय और अकरणीय कार्य करती रहती है। मनुष्य का शरीर जब युवावस्था को प्राप्त होता है तब उसमें अहंकार का उदय होता है। ये सब भी भक्ति ईश्वर भक्ति में आने वाली बाधाएँ हैं। इन पर विजय प्राप्त करके भक्त अपने आपको ईश्वर भक्ति में लीन कर सकता है। अपने कार्य में रविदास भक्ति के इस स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं।

अपनी भक्ति को सूत्रबद्ध करते हुए रविदास कहते हैं-

> अब कैसे छूटै राम रट लागी।
> प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी।
> प्रभु जी तुम घन बन, हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
> प्रभु जी तुम दीपक, हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
> प्रभु जी तुम मोती, हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
> प्रभु जी तुम स्वामी हम, दासा, ऐसी भगति करै रविदासा।

रविदास ऐसी भक्ति करते हैं। भगवान और भक्त का रिश्ता अटूट है, न केवल अटूट है वरन् वह इस रिश्ते को सुंदर बनाते हैं। जीवन और प्रकृति के अनेक सुंदर उदाहरण देकर रविदास अपने मत को पुष्ट करते हैं। जैसे पानी यदि चंदन के संपर्क में आ जाता है तो पानी में भी चंदन की गंध मिल जाती है। प्रभु बादल हैं तो भक्त वह मोर है जो बादलों को देखकर नाचने लगता है या जैसे चंद्रमा को चकोर देखता ही रहता है। दीपत और बाती, मोती और धागा की तरह यह रिश्ता है। सामाजिक स्थिति के अनुरूप प्रभुजी स्वामी हैं और भक्त उसका दास है। रविदास भक्त को दास मानते हैं, भगवान को ऐश्वर्यशाली मानते हैं, परंतु भक्त का भी अपना महत्व है। वे माधव से विनती करते हैं कि हे माधव! इस रिश्ते को तुम तोड़ना मत। यदि तुम तोड़ने की कोशिश करोगे तब भी 'हम नहीं तोरहि'। हमारी आपसे सच्ची प्रीति है-

> सांची प्रीति हम तुम सिउं जोरी, तुम सिउं जोरि अवर संगि तोरी।।
> जहं जहां ताउं तहां सुमरी सेवा, तुम सों ठाकुर असरु न देवा।
> तुमरे भजन कटहिं जमु पांसा, भगति हेत गावै, रविदासा।।

इसी भक्ति के गीत रविदास गाता है :

जो तुम तोरौ राम, तुम सौ तोरि कवन सौ जोरौं।
तीरथ बरत न करूँ अँदेसा, तुम्हरे चरन कमल एक भरोसा।
जहं जहं जाओ तुम्हरी पूजा, तुम सा देव और नहिं दूजा।
मैं अपनो मन हरि से जोरौ, हरि सो जोरि सबन सो तोरों
पहर तुम्हारी आसा, मन, क्रम, वचन कहै रविदासा।

रविदास अपने मन, कम और वचन से कहते हैं कि मेरे सभी संबंधी भगवान से हैं। तीर्थ-व्रत जैसा कोई ब्राह्याचार मैं नहीं करता। मुझे तो तुम्हारे ही चरण कमलों पर भरोसा है।

भक्त और भगवान के अंतः संबंध को व्यक्त करते हुए रविदास लिखते हैं-

जब हम होते तब तूं नांही, अब तू ही मैं नाहीं।
अनल अगम जैसे लहर भइ ओदधि, जल केवल जल मांही।।
माधवे किआ कहीए प्रभु ऐसा, जैसा मनीए होइ न तैसा।।
नरपति एकु सिंघासनि सोइआ, सुपने भइआ भिखारी।।
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ, सो गति भई हमारी।।
राज भुइअंग प्रसंग जैसे हहि, अब कुछ मरमु जनाइआ।
कनिक कटंक जैसे भूलि परै, अब कहते कहनु न आइआ।।
सरबै एकु अनेकैं, सुआमी, सभ घट भोगवै सोई।
कहि 'रविदास' हाथ पै नेरै, सहजे होई सु होई।।

अर्थात् जब तक मैं रहता हूँ, भक्त के मन में अहं की चेतना रहती है, तब तक भगवान नहीं रहता। अहं भाव का लोप होने पर ही परमात्मा से मिलन संभव है। जैसे हवा से चलने वाली लहर उठती है और फिर जल में मिल जाती है। ऐसे ही आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। यहाँ रविदास अपनी बात स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण देते हैं। एक राजा अपने सिंहासन पर सोया हुआ है। सोते-सोते उसे सपना आ जाता है। इस सपने में वह भिखारी हो जाता है। तब इस राजा को काल्पनिक दुख होता है, वह परमात्मा से अलग होने के बाद आत्मा का होता है। फिर जिसके स्वामी राम हैं, उसको किसी चीज की कमी नहीं है। अभाव की कोई अनुभूति भक्त को तो हो ही नहीं सकती। उसे किसी प्रकार का 'त्रिविध ताप' तो होता ही नहीं। यहाँ तक कि ''जम के दूत छांड़ि करि भाजै' की स्थिति बनती है। यहाँ ध्यान देना चाहिए के यम के दूतों से शक्तिशाली तो इस भवसागर में कोई होता ही नहीं। इसलिए दीनबंधु करुनामै स्वामी औगन चित्त न धरै।'

जा पै दीनानाथु ढरै।
दीनबंधु करुनामै स्वांमी औगन चित न धरै।
निसंचर फुनि बंधु बिभीषन, तिहु सिर छत्र धरै।
बन बेरि-बेरि भखै भीलनी कै, लछिमन पेखि प्रजरै।।
दरिद सुदामा कियहु आपु सम, नैनन नीर ढरै।
कहि 'रविदास' क्रिस्न करनामैं, नाम लेत उबरै।।

### 4.5.1 राम का स्वरूप

रविदास के अनुसार राम निर्गुण-निराकार है। उनका स्मरण करते रहना चाहिए और यह राम के नाम के जाप के द्वारा किया जा सकता है।

अविगति नाथ निरंजन देवा, मैं क्या जानूं तुम्हारी सेवा।
बांधू न बन्धन छाउं न दाया, तुमहि सेऊं निरंजन रामा।
चरन पतारि सीस असमाना, सो ठाकुर कस संपट समाना।
सिव सनकादिक अंत न पाया, खोजत ब्रह्मा जनम गंवाया।
तोरो न पाती, पूजौं न देवा, सहज समाधि करौं हर सेवा।
नख प्रसेद जाके सुरसरि धारा, रोमावली अठारह भारा।

चारि वेद जिहि सुमिरत सासा, भगति हेतु गावै रविदास।

वह परमात्मा अविगत है, निरंजन है, उसके रहस्य को शिव और सनकादिक भी खोज नहीं पाए। उसको खोजते-खोजते ब्रहमा ने अपना जन्म निरर्थक गँवा दिया। इसकी पूजा के लिए न तो मैं फूल पती तोड़ता हूँ, न मूर्ति पूजा करना है। चारों वेदों में जिसका वर्णन है। जिसके चरण पाताल तक है और जिसका शीश आसमान तक हैं, यह असम्भवः सा प्रतीत होने वाला परमात्मा है। रविदास उसकी भक्ति के गीत गाता है। कबीर ने जिस राम के स्वरूप के लिए गहन चिंतन किया है, रविदास उसे सहज बोधगम्य रीति से अभिव्यक्त कर देते हैं। उनकी वाणी में कहीं भी दर्शन की जटिलता नहीं है।

यह परमात्मा सामाजिक दृष्टि से 'नीच' माने जाने वाले को उच्च पद पर स्थापित कर सकता है। उदाहरण देते हुए रविदास कहते हैं कि-

ऐसी लाज तुझ बिनु कौन करै।
गरीब निवाजु गुसाइयाँ, मेरा माथै छत्रु धरै।
जाकी जोति जगत कउ लागै, ता पर तुहीं ढरै।
नीचहं ऊंच करै, मेरा गोबिंदु, काहू तैं न डरै।।
नामदेव, कबीरु, त्रिलोचनु, सधना, सैनु, तरै।
कह 'रविदास' सुनहु रे संतहु, हरि जीउ तैं सभै सरै।

इसलिए हे संतों! भगवान अगर कृपा रखेंगे तो सब काम हो जाएँगे। नामदेव जाति के 'ओछा' थे, परंतु आज सारा लोक उनके यश गाता है। राम नाम की महिमा देखते कबीर इस दुनिया से 'देही सहित' सिधारे। अर्थात् उनके शरीर की मृत्यु नहीं हुई। यह तो 'बाजीगर' है। उसने यह संसार रचा। उसकी यह 'बाजी' झूठी है परंतु बाजीगर सच्चा है। वे तो मानते हैं कि 'सबमें हरि है हरि में सब है' अर्थात् सबमें परमात्मा है और परमात्मा में सब है। ऐसा ईश्वर कपट करने से प्रसन्न नहीं होता। सच्चे मन की भक्ति जरूरी है।

### 4.5.2 मानव शरीर

सभी निर्गुण कवि मानव तन की क्षण भंगुरता और नश्वरता का वर्णन करते हैं। इस के माध्यम से संत उपदेश देते हैं। संतों का मानना है कि मनुष्य को अपने तन के सौंदर्य का अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस अहंकार से मनुष्य नम्र नहीं रह पाता। नम्रता के बिना भगवान के प्रति समर्पण नहीं कर पाता। रविदास ने भी माना है कि यह तन घास की टाटी के समान है। यह घास की तरह जल जाएगा और मिट्टी में मिल जाएगा।

इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी।
जलि गइओ घासु, गलि गइओ माटी।
ऊंचे मंदर साल रसोई, एक घरी फुनि रहनु न होई।
भाई बंध कुटंब सहेरा, ओइ भी लागै काढु सबेरा।
घर की नारि उरहिं तन लागी, उह तउ भूतु-भूतु करि भागी।
कहि 'रविदासु' सभै जगु लूटिआ, हम तउ एक राम कहि छूटिआ।

मृत्यु के बाद सभी संगी साथी यहाँ तक कि स्त्री भी साथ छोड़ देते हैं। मृत्यु के पश्चात् शरीर का कोई महत्व नहीं रह जाता। एक अन्य पद में रविदास कहते हैं कि इस तन की निर्मिति देखने-विचारने लायक है।

जल की भीति पवन का थंभा, रकत बूंद का गारा।
हाड़ मांस नाड़ी को पिंजरु, पंखे बसै विचारा।।
प्रानी किआ मेरा, किया तेरा, जैसे तरवर पंखी बसेरा।
रखहु कंध उसारहु नीवां, साढ़े तीनि हाथ तेरी सीवां।।

बंके लाल पाग सिर ढेरी, इहु तनु होइगो भसम की ढेरी।
ऊंचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।।
मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा रामचंद, कहि 'रविदास' चमारा।।

रविदास कहते हैं कि आखिर साढ़े तीन हाथ का शरीर ही तो है। इस पर क्या गर्व करना। अंत में तो यह राख की ढेरी बन जानी है। इसलिए जो कुछ सत्य है, वह राम नाम है।

इसलिए वे अहंकारी व्यक्ति के संदर्भ में विचार करते हुए कहते हैं कि हे मन इस हाड़-मांस की शरीर को लेकर टेढ़ा क्यों चलते हैं। इसके भीतर तो थूक और विष्टा है। इसलिए अभी भी चेत जाओ, अन्यथा आपका जन्म अकारथ चला जाएगा। इसलिए हे बावरे मन् राम नाम का भजन कर । रविदास चमड़े का काम करते थे। अतः उन्होंने दर्शन के स्तर पर चमड़े का महत्व बनाते हुए कबीर को संबोधित किया-

कहत 'रविदास' सुनो कबीर भाई।
चाम बिना देह किनकी बनाई।

चाम की गाय है, बछड़ा भी उसका चाम का है। चाम का हाथी और उस पर बैठा हुआ राजा भी चाम का ही है। कई छंदों में रविदास की बानी में कबीर और दादू दयाल का भाव-साम्य मिलता है। बुढ़ापे का वर्णन करते हुए रविदास भी अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि अब न तो कानों से सुनाई पड़ रहा है न नजर से दिखाई दे रहा है और न जीव स्थिर है–

मध्यान गयौ जुरा चलि आई, अजहूँ जग रह्यो भरमाया।
पानी गयो पतनु छीजै काया, यहु तन जरा जराना।
पांचौ थाके जरा जरु साने, तो रामह मरमु न जाना।
हंस पंखेरु चंचलु माई, समुझि देखि मन मांहि।
प्रतिपलु मीचु गरासै देही, फुनि रविदास चेतहुं नांहि।

रविदास की बानियों में विवाद का स्वर नहीं है। वे सहज रूप से अपनी बात कहते हैं। कबीर की तरह वे भी सत्संग का महत्व समझते-समझाते हैं।

इस सबके बावजूद मनुष्य का मन उसके वश में नहीं है। यह मन भगवान में स्थिर नहीं है। चंचल है। चारों दिशाओं में भागता रहता है। इस मन में 'मैं' की भावना बहुत है। लोभ और मोह मे बसा हुआ है। काम भाव में डूबा हुआ है। इन्द्रियों के सुख के लिए लालायित रहता है। अपने विरोधी को समझाते हुए रविदास कहते हैं कि मन को मारने के लिए जंगल में जाने की कहाँ जरूरत है। फिर मूल प्रश्न यह है कि मन को मारकर आज तक किसने सिद्धि प्राप्त की है।

बन जाकरि इहि मनवा न मरहीं, मन को मारि कहहु कस तरहीं।
मन मारन का गुन मन काहीं, मनु मूरख तिस जानत नाहीं।
पंच विकार जौ इहि मन त्यागौं, तौं मन राम चरन महिं लागौ।
रिदै राम सुध करम कमावऊ, तौ 'रविदास' मधु सूदन पावऊ।

रविदास कहते हैं कि इस मन से संशय की गांठ नहीं छूटती 'काम, क्रोध, माया मद मतसर' ये पाँचों मिलकर मुझे लूट रहे हैं। रविदास की दृष्टि में मनुष्य की मुक्ति में यह सबसे बड़ी बाधाएँ हैं।

हम बड़ कवि, कुलीन, हम पंडित, हम जोगी संन्यासी।
ग्यांनी गुनी, सूर हम दाता, इह बुधि कबहुं न नासी।
पढ़े गुनै कछु समझि न परहीं, जौ लौं अनभै भाउ न दीसै।
लोहा कंचनु हिरनु होइ कैसे, जउ पारसहिं न परसै।
कहु 'रविदास' सभै नहिं समझसि, भूल परें जस बउरे।
मोहि अधारु नाम नराइन, जीवन प्रान धन मोरे।।

रविदास भी माया को कबीर की तरह 'ठगिनी' मानते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा मेरा मन जो, माया के हाथों बिक गया; इसका नियंत्रण कैसे किया जाए। इसके लिए रविदास सत्संग का महत्व समझाते हैं। सत्संग ज्ञानी, गुणी भक्तजनों की करनी चाहिए। ढोंगी लोगों की संगति नुकसानदेह होती है। सत्संग से ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान से मन में भाव उत्पन्न होता है। भाव भक्ति में रूपांतरित होता है। भाव के बिना भक्ति नहीं होती। अतः संतों ने 'भाव' को महत्व दिया है। संत साहित्य में 'भक्ति-भाव' पद प्रचलित है–

साध संगति बिना भाव नहिं ऊपजे, भाव बिन भगति नहिं होय तेरी।
कहै 'रविदास' एक बेनती हरि सिउं, पैज राखहु राजा राम मेरी।

यदि भगवान की भक्ति नहीं की तो यह मानव मेरी जन्म निरर्थक ही चला जाएगा और यह मानव जन्म अमूल्य है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद जीव मनुष्य देह धारण करता है। वे चेताते हुए कहते हैं कि यदि इन मानव योनियों में भक्ति नहीं की, तो कब करोगे। तुम्हारे जितने संगी-साथी हैं, वे सब चार दिनों के हैं। स्थायी संबंध को परमात्मा से है। अतः हमें उस स्थायी, शाश्वत संबंध पर हो ध्यान देना चाहिए–

जनम अमोल अकारथ जात रे।
सुमरन करौ कभउं नहिं हरि कौ, ज्यौं लौ नहिं छरत गात रे।।
ऐ सबु संगी दिवस च्यार के, धन दारा सुत पित मात रे।
बिछुरे मिलन बहुरि नह ह्वैहो, ज्यौं तरवर छिन पात रे।।
तौ कैसे हरिनाम लेहुगे, गर अटकै कफ-सिट बात रे।
काल कराल भ्रमत फंदक जयूं, करत अचानौ घात रे।।
चेतै नहिं अलपु मति मूरखि, छांडि अम्रित, विषु खात रे।
कहि 'रविदास' आस तज औरे, स्त्री गोपालह रंग रांच रे।।

ऐसी भाषा कबीर में दृष्टिगत नहीं होती। कबीर 'मूरख' व्यक्ति को फटकारते हैं, जबकि रविदास उसे आत्मीय सलाह देते हैं। प्राकृतिक जीवन के उदाहरण देते हैं। मनुष्य के भाव-विवेक को जाग्रत करते हैं। रविदास इस नादान व्यक्ति के लिए पीड़ा महसूस करते हैं जो अपने अमूल्य जन्म को 'अकारथ' नष्ट कर रहा है।

### 4.5.3 भक्ति का उद्देश्य

कई बार मन में यह प्रश्न उठता है कि आखिर भक्ति द्वारा भक्त क्या प्राप्त करना चाहता है। परमात्मा से मिलने का तात्पर्य क्या है ? रविदास ने इस विषय पर विचार किया है। एक पद में उन्होंने कई उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति ही भक्ति का चरम उद्देश्य है और कबीर की तरह देह सहित इस पृथ्वी से जाने का कोई रास्ता निकल जाए। अर्थात् अमरता की प्राप्ति ही भक्ति का चरम उद्देश्य माना है।

सो जप जपौं जो बहुरि न जपना, सो तप तपौ जो बहुरि न तपना।
सो गुरु करौं जो बहुरि न करना, ऐसो मरौ जो बहुरि न मरना।

ऐसा मरें कि फिर न मरना पड़े अर्थात् पुनः जन्म लेना न पड़े। जनम होगा तभी मृत्यु होगी। इस कामना की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति करना आवश्यक है।

वे ऐसे स्थान या शहर में रहने की परिकल्पना करते हैं, जहाँ कोई कष्ट नहीं है। गम नहीं है। अतः रविदास ने 'बेगमपुरा' की अवधारणा प्रस्तुत की। इस संसार में तो दुःख, क्लेश और पीड़ा है। कायिक, भौतिक और आत्मिक कष्ट है। इन सबसे मुक्ति की कामना भी रविदास करते हैं।

> अब हम खूब वतन कर पाया, ऊंचा खेर सदा मन भाया।
> बेगमपुरा सहर का नाऊं, दुःख अंदेस नहीं तिहिं ठाऊं।
> ना तसबीस, खिराजु न मालू, खौफ न खता न तरसु जवालु।
> काइमु दाइमु सदा पातिसाही, दाम न, साम एक सा आही।
> आवादानु सदा मसहूर, ऊहां गनी बसहिं मामूर।
> तिउं-तिउं सैर करहिं जिउ भावै, हरम महल मोहिं अटकावै।
> कह रविदास खलास चमारा, जो उस सहर सों मीत हमारा।

यह रविदास का आदर्श समाज है, आदर्श जीवन है। 'बेगमपुरा' नामक शहर के प्रत्येक वासी को रविदास मित्र मानते हैं।

हालाँकि ऐसा बेगमपुरा कहीं है नहीं। रविदास ने भी इसे देखा नहीं है, सिर्फ कामना की है। इसी तरह जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति की कामना की है। चूँकि मुक्ति अभी मिली नहीं है अतः रविदास का मूल भाव उदासी है। रविदास निराश नहीं है। उन्हें अपने परमेश्वर पर पूरा भरोसा है। उन्हें उनका मनचाहा मिल नहीं रहा अत-

> भन रविदास उदास ताहि थैं, करता को है भाई।
> केवल करता एक सही सिर, सत्तराम तिहिं ठांई।

**बोध प्रश्न 2**

6. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाकर दीजिए।

   क) रविदास ने 'प्रह्लाद चरित' नामक काव्य लिखा है। ( )

   ख) रविदास के अनुसार 'राम' सगुण-साकार हैं। ( )

   ग) निर्गुण कवि तन की अमरता में विश्वास करते हैं। ( )

   घ) भक्ति में अहं की चेतना तिरोहित हो जाती है। ( )

7. रविदास और कबीर की तुलना कीजिए।

   ..............................................................................................................

   ..............................................................................................................

   ..............................................................................................................

8. रविदास की कविता में 'राम' का कैसा स्वरूप दिखाई देता है (चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

   ..............................................................................................................

   ..............................................................................................................

   ..............................................................................................................

   ..............................................................................................................

## 4.6 रविदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

1. **काहे मन मारन बन जाई, मन की मार कवन सिधि पाई।**
   **बन जाकरि इहि मनवा न मरहीं, मन को मारि कहहु कस तरहीं।**
   **मन मारन का गुन मन काहीं, मनु मूरख तिस जानत नाहीं।**
   **पंच विकार जौ इहि मन त्यागौं, तौं मन राम चरन महिं लागौ।**
   **रिदै राम सुध करम कमावऊ, तौ 'रविदास' मधु सूदन पावऊ।**

**प्रसंग**

प्रस्तुत पद में रविदास अपने से भिन्न मत वाले साधुओं को संबोधित करते हैं। वे संतों, भक्तों, विचारकों के मत की असंगति को उजागर कर रहे हैं, वे मानते हैं कि मनुष्य का मन सभी समस्याओं की जड़ है। इसलिए यदि मन को मार दिया जाए तो सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

**व्याख्या**

वे उन साधुओं को आगाह करते हैं, पूछते हैं, जो इस मन को मारने के लिए वन में, जंगल में चले जाते हैं। उनसे वे प्रश्न करते हैं, अच्छा बताओ कि मान लिया कि आप वन में चले गए, वहाँ जाकर आपने मन को मार दिया, लेकिन मन को मार कर आप कौन सी सिद्धि प्राप्त कर लेंगे। फिर रविदास अपनी स्थापना करते हैं कि वहाँ जाकर भी आपका मन मरता नहीं है। यदि आपने अपने मन को मार ही दिया, तब भी आप मुक्त कैसे होंगे? फिर रविदास कहते हैं कि मन को मारने का यह गुण या विचार भी तो मन से ही आया हैं इसलिए ऐसे मूर्ख को मन की कोई समझ ही नहीं है।

अब अपना उपदेश देते हुए रविदास कहते हैं कि मन के पांचों विकारों को यदि मन से त्याग दें, तभी मन राम के चरणों में लगेगा। अंत में उनका मानना है कि यदि हृदय में राम का वास है और मनुष्य सात्विक कर्म करता है, तभी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।

इस पद मे रविदास सहज रूप से अपने मत को व्यक्त करते हैं और विरोधी विचारों का खंडन करते हैं।

**विशेष :**

इस पद में रविदास ने भक्ति का मार्ग स्पष्ट किया है तथा भटकाने वाले मार्ग की असंगति को उजागर किया है।

2. **ऐसो कछु अनुभौ कहत न आवै, साहब मिलै तौको बिलगावै।**
   **सब में हरि है हरि में सब है, हरि अपनो जिन जाना।**
   **सखी नहीं अउर कोई दूसर, जाननहार सयाना।**
   **बाजीगर संग में राचि रहा, बाजी का मरम न जाना।**
   **बाजी झूठ सांच बाजीगर, जाना मन पतियाना।**
   **मन थिर होइ तो कोइ न सूझै, जानै जाननहारा।**
   **कह रविदास विमल विवेक सुख, सहज सरूप सभारा।**

**प्रसंग :**

प्रस्तुत पद में रविदास ने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है। इस ईश्वर के साथ जीव अपना सहज संबंध कैसे बना सकता है, इसे समझाया है। इसमें किसी का खंडन नहीं है। वे अपने मत तो अपने समर्थकों को बताते हैं।

**व्याख्या :**

परमात्मा से मिलन के इस रहस्यमय अनुभव को मैं कैसे बताऊँ ? मुझे तो कहना भी नहीं आता। यह कोई सामान्य अनुभव तो है नहीं। साहब अर्थात् ईश्वर मिल भी जाए तो उससे कौन अलग होना चाहेगा ?

आगे रविदास अपनी मूल मान्यता को अभिव्यक्त करते हैं। यह मान्यता उनकी सभी वाणियों में बार बार मिलती है कि भगवान सभी में निवास करते हैं और सभी लोग भगवान में होते हैं। इसमें जीव-जंतु, जड़-चेतन सब शामिल हैं। उस भगवान के अलावा दूसरा कोई सखा या मित्र नहीं है। यह बात सभी समझदार लोग जानते हैं। इसे कहने की जरूरत नहीं है। यह परमात्मा तो बाजीगर है। हम उसके साथ रहते हैं, फिर भी उसकी बाजी के अर्थात इस दुनिया के मर्म को नहीं समझ पाते। इसका सबसे बड़ा रहस्य तो यह है कि यह बाजी अर्थात् यह दुनिया झूठ है। सत्य नहीं है। भले ही इसकी रचना स्वयं परमात्मा ने की है। परमात्मा सत्य है, यह जानने और विश्वास करने की जरूरत है। फिर यदि आपका मन परमात्मा में स्थिर हो गया, तो कोई और बात मन में आएगी ही नहीं। इस बात को बस जानने वाला ही जान पाता है।

इसलिए रविदास कहते हैं कि ज्ञान के साथ मल रहित सहज रूप में जीवन जीने से सारे सुख प्राप्त हो सकते हैं।

**विशेष :**

यह रविदास का दार्शनिक पद है। इसमें उन्होंने परमात्मा के स्वरूप को समझाया है, आत्मा से रिश्ता स्पष्ट किया है तथा परमात्मा से मिलने का सहज रास्ता भी बताया है।

3. **हरि सा हीरा छांडि कै करै आन की आस।**
   **ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रविदास।।**

**प्रसंग**

इस साखी में रविदास ने नादान-नासमझ लोगों पर टिप्पणी की है। इस टिप्पणी में ऐसे लोगों के जीवन पर रविदास की पीड़ा व्यक्त हुई है। हालांकि ये लोग रविदास के आसपास नहीं है। अन्य कोई भी उनको समझ देने वाला नहीं है।

**व्याख्या :**

परमात्मा हीरा के समान बहुमूल्य है। उसकी आराधना करनी चाहिए। उसकी भक्ति करनी चाहिए, लेकिन अज्ञानी लोग उस बहुमूल्य रत्न को छोड़कर दूसरी चीजों के लिए भटकते हैं। दुनिया की निरर्थक संपति के पीछे भागते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें 'हरि' जैसे 'हीरे' की पहचान नहीं है और उसे छोड़ दे रहे हैं वे अंततः यमपुर ही जाएँगे। उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती। रविदास अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहते हैं वे अपने अनुभव के आधार पर सही कह रहे हैं।

**विशेष :**

यहाँ रविदास शांत भाव से अपना मत व्यक्त करते हैं। कोई अतिरिक्त आग्रह उनमें नहीं है। हालांकि वे अपने विचारों पर दृढ़ हैं।

4. **रैणि गँवाइ सोइ करि गंवायो षाइ।**
   **हीरा यहु तंन पाइ करि कोडी बदले जाइ।।**

**प्रसंग**

इस साखी में रविदास ज्ञान विहीन सामान्य लोगों के जीवन पर टिप्पणी कर रहे हैं। ऐसे लोग सामान्य पशु सादृश जीवन जी रहे हैं। उनके जीवन का प्रमुख कर्म खाना और सोना है। जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है।

**व्याख्या**

इस साखी में रविदास टिप्पणी करते हैं कि नादान व्यक्ति रात तो नींद में व्यतीत कर देता है। कोई सार्थक काम नहीं करता। यह कार्य तो पशु भी करता है और दिन खाना खाने में गुजार देता है। असली समय तो यही है। फिर भक्ति कब करेगा। निष्कर्ष निकालते हुए रविदास कहते हैं कि मनुष्य को हीरे जैसा अमूल्य शरीर मिला है। इसी मानव तन से ही भक्ति हो सकती है, जो यह मनुष्य नादान करता नहीं। और यह शरीर तुच्छ कोड़ी के बदले जा रहा है। शरीर तो नष्ट होगा ही चाहे इसे भक्ति में लगा दो, चाहे खाने-सोने में लगा दो।

**विशेष**

रविदास इस साखी में निरर्थक जीवन की झांकी प्रस्तुत करके सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा दे रहे हैं।

## 4.7 सारांश

- संत रविदास मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के निर्गुण भक्ति शाखा के कवि हैं।
- इनका नाम कबीर, दादू, धन्ना भगत, सेन और मीराबाई के साथ लिया जाता है।
- इनकी रचनाओं को गुरु ग्रंथ साहब में स्थान मिला।
- इनके जीवन के बारे में अनेक किंवदंतियाँ और दंत कथाएँ प्रचलित हैं। इन दंत कथाओं में इनके अलौकिक कार्यों का उल्लेख मिलता है। इससे उनकी सामाजिक स्वीकृति का एहसास होता है। कुछ किंवदंतियाँ इनको पूर्व जन्म का ब्राह्मण सिद्ध करने का प्रयास करती हैं।
- निर्गुण मत की स्थापना के बावजूद इनमें कबीर की भांति खंडन-मंडन की प्रवृति नहीं मिलती। रविदास आत्मा और परमात्मा के अटूट रिश्ते में विश्वास करते थे। उनकी भक्ति का चरम लक्ष्य जन्म मरण के बंधन से मुक्ति रहा है।
- अपनी रचनाओं में उन्होंने उदासी को बहुत महत्व दिया। ईश्वर से मिलन न होने के कारण कवि उदास है और मिलन होने तथा जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होने कामना तथा प्रार्थना प्रभु से करता है।

## 4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. रविदास बानी - संपादक डॉ. शुकदेव सिंह
2. रविदास - धर्मपाल मैनी
3. संतगुरु रविदास वाणी - डॉ. बेणी प्रसाद शर्मा
4. मध्यकालीन धर्मसाधना - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. उत्तरी भारत की संत परंपरा - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

## 4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1. क) ✓

   ख) ×

   ग) ✓

   घ) ×

2. देखिए 4.2

3. देखिए 4.2.1

4. अनंतदास

5. देखिए 4.4

**बोध प्रश्न 2**

6. क) ✓

   ख) ×

   ग) ×

   घ) ✓

7. वे शांत भाव के कवि हैं। दोनों समकालीन कवि हैं। और दोनों एक ही काव्यधारा-निर्गुण काव्यधारा के कवि हैं। दर्शन के स्तर पर दोनों समान हैं। कबीरदास उग्र विचारों के कवि हैं, जबकि रविदास में उग्रता नहीं मिलती।

8. रविदास के अनुसार 'राम' निर्गुण-निराकार हैं। आकाश से पाताल तक व्याप्त है। उन्हें कोई आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने संसार की रचना की है।

# इकाई 5 जायसी का काव्य

**इकाई की रूपरेखा**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जायसी का व्यक्तित्व और रचना संसार

5.2.1 जन्म तथा परिवार

5.2.2 रचनाएँ

5.3 जायसी का परिवेश

5.4 जायसी की भक्ति

5.4.1 सूफी मत का दार्शनिक पक्ष

5.4.2 जायसी के काव्य में प्रेमतत्व

5.5 जायसी के काव्य में लोक जीवन

5.6 जायसी की भाषा और काव्य सौंदर्य

5.6.1 माधुर्य की प्रतिष्ठा

5.6.2 प्रतीकात्मकता

5.6.3 अप्रस्तुत की व्यंजना

5.6.4 प्रबंधात्मकता

5.6.5 अलंकार

5.7 जायसी के काव्य का वाचन और व्याख्या

5.8 सारांश

5.9 उपयोगी पुस्तकें

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 5.0 उद्देश्य

यह इस पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इस इकाई में प्रेमाश्रयी सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- जायसी के व्यक्तित्व और रचना संसार पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- उनके परिवेश की जानकारी दे पाएँगे;
- जायसी की भक्ति की विशिष्टताओं से अवगत होंगे;
- जायसी के काव्य में अभिव्यक्त लोक जीवन के विभिन्न पक्षों के बारे में बता सकेंगे;
- जायसी के काव्य की भाषागत विशिष्टताओं को रेखांकित कर पाएँगे और जायसी के काव्य का वाचन तथा व्याख्या कर सकेंगे।

## 5.1 प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति काव्यधारा की प्रेमाश्रयी शाखा, जिसे सूफी काव्य के रूप में भी जाना जाता है, के प्रतिनिधि कवि हैं। जायसी के काव्य में सूफी आराधना के तत्व तथा लोक जीवन के विविध पक्षों से संबंधित अभिव्यक्तियाँ हैं। उनकी 'अखरावत' तथा 'आखिरी कलाम' साधना परक रचनाएँ हैं, जबकि 'पद्मावत' में साधना और लोक जीवन परस्पर एक-दूसरे से घुले-मिले हुए हैं। जायसी की भक्ति में प्रेम केंद्रीय तत्व हैं। 'पद्मावत' में पद्मावती ब्रह्म की प्रतीक है जबकि रत्नसेन साधक का। इस काव्य-ग्रंथ में रत्नसेन का प्रमुख लक्ष्य पद्मावती की प्राप्ति है - अर्थात साधक द्वारा ब्रह्म को पाने का उद्योग इस काव्य में वर्णित है। लेकिन इस यात्रा में जायसी लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को भी उकेरते हैं। 'पद्मावत' एक प्रबंधात्मक कृति है जिसमें अवधी के ठेठ रूप का इस्तेमाल जायसी ने किया है। आगे जायसी के काव्य के इन प्रमुख पक्षों की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

## 5.2 जायसी का व्यक्तित्व और रचना-संसार

अन्य मध्यकालीन रचनाकारों की तरह जायसी के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है। जो जानकारी उपलब्ध है, वह भी पर्याप्त विवादग्रस्त है। कुछ जानकारी इनकी कविताओं से ही प्राप्त होती है। मलिक मुहम्मद जायसी में 'मलिक' शब्द इनका कुलनाम बताया जाता है तथा जायसी 'जायस' में प्रवास के कारण नाम में आया। मुहम्मद नाम में कुलनाम और प्रवास के कारण आया शब्द जुड़ने से इनका नाम बना- मलिक मुहम्मद जायसी।

### 5.2.1 जन्म तथा परिवार

जायसी के जन्म की तिथि के संदर्भ में भी मतभेद हैं। अंतःसाक्ष्यों का तर्कपूर्ण विश्लेषण करने से जायसी का जन्म-वर्ष 870 हिजरी (1464 ई.) और मृत्यु 949 हिजरी (1542 ई.) में मान सकते हैं। उनकी पंक्ति है, ''भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।।'' जन्म और मृत्यु के संदर्भ में जो बातें कहीं गयी हैं, उनका आधार वह पंक्ति ही है, पर तर्क और व्याख्या सबकी अलग है। 'आखिरी कलाम' में जायसी ने जायस के बारे में लिखा है :

> जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नावँ आदि उदयानू।
> तहाँ दिवस उस पहुने आएउँ। मा बैराग बहुत सुख पाएऊँ।।

'पद्मावत' में भी उन्होंने लिखा है, ''जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।'' अब इस बात पर भी अटकलें लगाई जाती हैं कि जायस जायसी का जन्म-स्थान है या ये जायस में कहीं से आकर बसे थे। ये अटकलें इसीलिए हैं, क्योंकि प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव है।

जायसी मलिक शेख ममरेज और मानिकपुर के शेख अलहदार की पुत्री की संतान बताए जाते हैं। यह जन प्रसिद्ध है कि जायसी बचपन में ही माता-पिता को खो चुके थे। साधु फकीरों के साथ समय बिताया और कुछ समय अपने नाना के पास मानिकपुर भी रहे। यह भी बताया जाता है कि मृत्यु के समय जायसी अत्यंत वृद्ध और संतानहीन थे। इनकी संतानहीनता को लेकर भी कई प्रकार के मत प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार इनके सात पुत्रों की अकाल मृत्यु छत गिरने से हुई थी। इसके पीछे गुरु का शाप बताया जाता है। कहा जाता है कि जायसी कुरूप थे। जायसी के बाएँ कान की श्रवणशक्ति जाती रही थी। 'स्तुति खंड' में आत्म परिचय देते हुए जायसी लिखते हैं :

एक नैन कबि मुहमद गुनी। सोइ बिमोहा जेइँ कबि सुनी।।
चाँद जइस जग बिधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजिआरा।।
जग सूझा एकइ नैनाहाँ। उवा सूर अस नखतन्ह माहाँ।।

× × ×

एक जस दरपन और तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवंत पाँव महि मुख जौवहिं कइ चाउ।।

परंतु मुँह की कुरूपता देख कर हँसने वाले भी इनकी कविता सुन कर द्रवित हो उठते थे, 'जेइ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु।।

जायसी शेरशाह सूरी के शासन-काल में थे। उन्होंने लिखा है, 'सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।' पद्मावत के प्रारंभ में जायसी शेरशाह को आशीर्वाद भी देते हैं :

दीन असीस मुहम्मद करहु जुगहिं जुग राज।
पातसाह तुम जग के जम तुम्हार मुहताज।।

जायसी स्पष्टतः सूफी मत से संबंधित थे। परंतु इनके गुरु के संदर्भ में भी विद्वानों में एक राय नहीं है। कुछ लोग सैयद अशरफ जहाँगीर को इनका गुरु बताते हैं, तो कुछ लोग शेख मुहीउद्दीन को। पर ये दोनों जायसी के गुरु प्रतीत नहीं होते। कुछ लोग शाह मुबारक बोलदे और शाह कमाल को भी इनका गुरु बताते हैं। 'चित्ररेखा' की पंक्तियों का हवाला देकर कालपी वाले मुहीउद्दीन महँदी को जायसी का गुरु कहा गया है :

महँदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिंक अस्थानू।।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि जायसी के जीवन में विविधता थी। उनका जीवन सपाट-समतल मैदान नहीं था। इस जीवन के संदर्भ में कुछ संकेत भले मिलते हैं, पर उसके संदर्भ में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

## 5.2.2 रचनाएँ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनकी तीन पुस्तकों का उल्लेख किया है, 'पद्मावत', 'अखरावत' और 'आखिरी कलाम'। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों का उल्लेख भी इनके नाम पर मिलता है - 'चित्ररेखा', 'मसलानामा', 'कहरानामा', 'सखरावत', 'चंपावत', 'इतरावत' आदि। परंतु इन रचनाओं की प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है। वैसे जायसी की प्रसिद्धि का आधार 'पद्मावत' ही है। संक्षेप में इनकी तीन रचनाओं की जानकारी दी जा रही है।

**अखरावत**

'अखरावत' को बहुत सारे विद्वान जायसी की आखिरी रचना मानते हैं। सैयद कल्बे मुस्तफा इनमें सबसे प्रमुख हैं और अन्य विद्वानों ने इनके मत को ही थोड़े हेर-फेर के साथ प्रस्तुत किया है। सैयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है, "अल्फाज का इंतिखाब, जुबान की रवानिगी, बंदिश की चुस्ती पता देती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौरे-आखिर का नतीजा है।" इसके बावजूद इसका सटीक रचनाकाल हमें ज्ञात नहीं होता।

'अखरावत' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को ध्यान में रख कर सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इस ग्रंथ का प्रारंभ जायसी ने सृष्टि की आदि शून्यावस्था से किया है। जब न गगन था, न धरती, सूर्य, चाँद। उस शून्य में करतार ने प्रथम पैगंबर मुहम्मद की ज्योति उत्पन्न थी -

गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
सेसई अंधकूप महँ रचा मुहम्मद नूर।।

## आखिरी कलाम

आखिरी कलाम' की रचना, शाहे वक्त आदि के संदर्भ में जायसी ने खुद ही लिखा है। 'शाहे वक्त' के संदर्भ में लिखा है, 'बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहं विधि साजा।।' रचना समय के संदर्भ में लिखा है, 'नौ सौ बरस छतीस जो भये। तब एहि कथा के आखर कहे।।' अर्थात 936 हिजरी (1532 ई.) में बाबर के समय 'आखिरी कलाम' की रचना हुई। जायसी ने इस काव्य में मसनवी शैली के अनुरूप ईश्वर-स्तुति की है। नौ सदी में जन्म की बात कह कर उन्होंने भूकंप और सूर्यग्रहण की भी बात की है। मुहम्मद साहब स्तुति, बाबर की प्रशस्ति, सैयद अशरफ की वंदना, जायस नगर का वर्णन आदि के बाद उन्होंने प्रलय का वर्णन किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''जायसी ने अपने 'आखिरी कलाम' को कुराण के अनुकरण पर ही बनाया है। प्रलय और अंतिम न्याय के दृश्य पूर्णतः इस्लाम सम्मत हैं। इस ग्रंथ में मुहम्मद साहब की महत्ता का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन है।''

### पद्मावत

जायसी की लोकप्रियता का मुख्य आधार 'पद्मावत' ही है। 'पद्मावत' की रचना समय के संदर्भ में उन्होंने लिखा है, 'सन् नौ सै सैंतालिस अहै। कथा आरम्भ बैन कवि कहै।।' इस तथ्य की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रस्तुत की है। कुछ विद्वानों ने 947 हिजरी (1540 ई.) में इस रचना का आरंभ होना बताया है किंतु इसका अर्थ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रकार किया है, ''इसका अर्थ होता है पद्मावत की कथा के प्रारंभिक वचन, आरंभ बैन कवि ने सन् 927 हिजरी (सन् 1520 ई.) के लगभग में कहे थे।'' इस संदर्भ में यह भी ध्यान देना जरूरी है कि इस रचना में 'शाहे वक्त' के रूप में शेरशाह सूरी का जिक्र है, 'सेरसाहि दिल्ली सुल्तानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।।' शेरशाह दिल्ली की गद्दी पर 1540 ई. में बैठा था। इसीलिए ज्यादातर विद्वान 1540 ई. में ही 'पद्मावत' का आरंभ स्वीकार करते हैं।

'पद्मावत' के काव्यरूप को लेकर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। नित्यानंद तिवारी जैसे विद्वान इसे रोमांचक आख्यान कहते हैं, तो कुछ विद्वान इसे आख्यान कहते हैं। आख्यान में इतिहास मिश्रित होता है। अधिकांश विद्वान इसे प्रबंध काव्य ही मानते हैं। 'पद्मावत' एक प्रेमाख्यान है, किंतु इसकी कथा शुद्ध काल्पनिक नहीं है। इसमें इतिहास के तत्व भ मौजूद है। इसका अंतःसाक्ष्य पद्मावत में उपलब्ध है :

सन् नौ सै सैंतालिस अहा। कथा आरंभ बैन कवि कहा।।
सिंहलद्वीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी।।
अलाउद्दीन देहली सुलतानू। राघव चेतन कीन्ह बखानू।।
सुना साहि गढ़ छेंकन आई। हिंदू तुरकन्ह भई लराई।।
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै।

इन पंक्तियों में जायसी ने कहा है कि आद्यंत जैसी कथा है, उसे ही वे 'भाखा-चौपाई' में निबद्ध करके प्रस्तुत करते हैं। सिंहल द्वीप की पद्मिनी की कथा जायसी ने सुनाई है। यह कथा सिंहल द्वीप की रानी से लेकर हिंदू तुर्क लड़ाई तक विस्तृत है। तात्पर्य यह कि जायसी ने जो वृत्त ग्रहण किया है वह आदि से अंत तक एक ही गाथा है। यह लोककथा के निकट जान पड़ता है। संभवतः इसीलिए चंद्रबली पांडेय का दावा है कि 'पद्मावत' की कथा 'रसपूर्ण और अत्यंत प्राचीन' है। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को है। इस कथन की पुष्टि के लिए चंद्रबली पांडेय ने निम्न पंक्तियों का सहारा लिया है :

कवि वियास कंवला रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी।।
नियरे दूर फूल जस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चाँटा।।

अर्थात कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहाँ एक से बढ़ कर एक कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है, फिर भी किसी कवि से न बन पड़ा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह कार्य तो मुझ जैसे अहिंदू से बन पड़ा।

ध्यान से देखने पर इस कथा का कुछ हिस्सा तो ऐतिहासिक है, परंतु कुछ हिस्सों की ऐतिहासिकता खंडित भी है। यह लोक प्रचलित कथा के ऐतिहासिक संदर्भों के सम्मिश्रण से निर्मित हुआ है।

## 5.3 जायसी का परिवेश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन को दो वर्गों में बाँटा है- निर्गुण भक्ति काव्यधारा और सगुण भक्ति काव्यधारा। फिर दोनों वर्गों के दो उपवर्ग बनाए। निर्गुण के उपवर्ग ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा हैं, तो सगुण के उपवर्ग कृष्णभक्ति धारा और रामभक्ति धारा। मलिक मुहम्मद जायसी इस प्रेमाश्रयी धारा के कवि माने जाते हैं। यह ठीक बात है कि तुर्को-अफगानों के साथ हिंदुस्तान में मुस्लिम धर्मावलंबी शासक आए। इनके आने से देश में व्यापक संघर्ष का उदय हुआ और राजनीति तथा समाज दोनों हलकों में यह संघर्ष जारी था। हिंदुस्तान में इसके पहले भी विजेता बन कर अनेक जातियाँ (रेस) आई थीं। पर वे यहाँ न सिर्फ बसे, अपितु हिंदू संस्कृति और जाति में विलयित भी हो गए। इस्लाम इस रूप में पहला धर्म था, जो हिंदू धर्म में विलयित नहीं होता है। वह एक संगठित धर्म-समुदाय के रूप में भारत में स्वतंत्र रूप से अस्तित्वमान रहा। विभिन्न स्तर पर जारी दो-तीन सौ वर्षों के संघर्ष ने दोनों समुदायों के सम्मिश्रण की ऐतिहासिक आवश्यकता उत्पन्न की। इस ऐतिहासिक आवश्यकता के बीच प्रेमाश्रयी कवियों का आविर्भाव हुआ। इन कवियों में निस्संदेह जायसी सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

कुछ विद्वान बताते हैं कि मलिक मुहम्मद जायसी एक ऐसे समय में हुए जब भारतीय समाज और जीवन में धार्मिक संघर्ष को सांस्कृतिक समन्वय में बदलने की आवश्यकता थी। जायसी आदि तमाम सूफी कवियों ने इस सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया को आरंभ किया, उसे एक विस्तृत भूमि तक पहुँचाया। मुल्ला दाउद की 'चंदायन' जायसी के पहले की रचना मानी गई है, कुतुबन की 'मृगावती' भी जायसी के थोड़े पहले की रचना है, बावजूद इसके, कुतुबन जायसी के आसपास के ही रचनाकार हैं। जायसी में सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रियागत पूर्णता है, संवेदनात्मक संरचना उच्च्व भूमि तक पहुँची हुई है, भाषा अपने निर्बाध प्रवाह के साथ है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य के इतिहास में जिसे भक्तिकाल कहा है, वह भारत में जनजागरण के विराट संदर्भों को भी निर्मित करता है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी 'संस्कृति के चार अध्याय' और श्री रामविलास शर्मा ने अपनी विभिन्न पुस्तकों में जनजागरण के संदर्भों का उल्लेख किया है। भक्तिकालीन जनजागरण व्यापक रूप में लोकजागरण के रूप में स्वीकृत है। जनजागरण की प्रक्रिया तब शुरू होती है, जब वहाँ की बोलचाल की भाषा में साहित्य रचा जाने लगता है, जब जाति का निर्माण होने लगता है। जाति यहाँ 'कास्ट' का अर्थ नहीं देती, वह 'नेशन' अथवा 'नेशनहुड' को व्यंजित करती है। सूफी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय की जिन चेष्टाओं को हम देख पाते हैं या भाषा के रूप में अवधी के जिस विकास को देखते हैं, उसने जाति, धर्म की कठोर दीवारों को सिरे से ध्वस्त भले न किया हो, पर शिथिल अवश्य किया। इसने 'जाति' के रूप में विकसित होने की संभावनाओं को तीव्र किया। इस दृष्टि से सूफी काव्य का हिंदी साहित्य में अन्यतम स्थान है। यही वह समय है जब धार्मिक विश्वासों की रूढ़ टकराहट से ऊबा भारतीय जन, विभिन्न विचारों, व्यवहारों, विश्वासों के मध्य भक्ति के माध्यम से मनुष्य मात्र की सार्थकता की खोज करता है, उसकी एकता की खोज करता है। इसी समय हिंदू-

मुस्लिम सभ्यताएँ सांस्कृतिक व्यवहार और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक-दूसरे पर प्रभाव डालती हैं।

इसी के थोड़े पहले कबीरदास हो चुके थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों संप्रदायों की धार्मिक कुरीतियों पर चोट की, उनके प्रतिनिधियों को फटकारा। इस क्रम में वे निरंतर नए रास्तों की खोज करते हैं और उस पर बढ़ते चलते हैं। जायसी या अन्य सूफी कवियों के यहाँ एक धक्के में सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। वे इस्लाम के प्रति आस्थावान बने रहते हैं। हिंदी सूफी काव्य इस्लाम के प्रति आस्थावान होकर भी मुख्य रूप से काव्य साहित्य ही है। काव्य में भी मुख्य रूप से प्रबंध काव्य ही। यह एक ऐसी विशेषता है जो इसे फारसी सूफी काव्य से पृथक करती है। ईरान के सूफियों ने इस्लाम की सीमा में ही प्रेम को जाना था। पर हिंदी सूफी कवि इस्लाम की सीमा का अतिक्रमण करते हैं। इसका कारण मुख्यतः सांस्कृतिक सम्मिश्रण की प्रक्रिया है। भारत आने के बाद सूफी मत का संपर्क हिंदू विचारधारा से हुआ। इससे सूफियों में कुछ नवीन भावों, विचारों का जन्म हुआ। इसके कारण ही ये सभी हिंदू जीवन में प्रचलित कहानियों को चुनते हैं। इन कवियों के यहाँ जीवन और भाषा का प्रवाह समाज से आया, तो उसकी दार्शनिकता इस्लाम से। जायसी जैसे कवि तो इस भेद को भी मिटाते से जान पड़ते हैं।

**बोध प्रश्न - 1**

1. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) जायसी शेरशाह के समय में मौजूद थे।

   (ख) 'आखिरी कलाम' में मसनवी शैली के अनुरूप ईश्वर की स्तुति की गई है।

   (ग) 'पद्मावत' पूर्णतः काल्पनिक प्रेमाख्यान है।

   (घ) 'अखरावत' में वर्णमाला के अक्षर को ध्यान में रखकर सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

   (ङ) मुल्ला दाउद की 'चंदायन' 'पद्मावत' के बाद की रचना है।

2. जायसी की 'पद्मावत' का परिचय दीजिए। (उत्तर सात पंक्तियों में दीजिए)।

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

3. जायसी के परिवेश पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

## 5.4 जायसी की भक्ति

मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' निर्गुण भक्ति की प्रेमाख्यान परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। डा. रघुवंश के अनुसार, ''जायसी की काव्याभिव्यक्ति में 'पद्मावत' पूरे प्रबंध का सांगोपांग रूपक-विधान नहीं है। उनकी मूल दृष्टि मानवीय जीवन के विभिन्न स्रोतों तथा पक्षों पर रही है, इनमें ही आध्यात्मिक संकेत तथा व्यंजनाएँ निहित होती रही हैं।'' इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली अगर वह सांगोपांग रूपक नहीं है तो भी जीवन का रूपक तत्व है, दूसरे इसमें जो आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ हैं वे जीवन के समानांतर और उसमें ही निहित हैं। ये आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ ही भक्ति का उपजीव्य हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जायसी की भक्ति को कथा की समानांतरता में ही समझा जा सकता है। जायसी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि वह उस समय के जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति है।

### 5.4.1 सूफी मत का दार्शनिक पक्ष

जायसी की भक्ति में दो तथ्य समानांतर दिखाई पड़ते हैं। ऊपर जिन आध्यात्मिक संकेतों और व्यंजनाओं की बात कही गई है, वे आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ सूफी मत से अलग हैं। इसीलिए जायसी की भक्ति को ठीक तरीके से समझने के लिए सूफी मत की सामान्य जानकारी आवश्यक है। सूफी मत इस्लाम की एक शाखा है, जो इस्लाम धर्म के वर्तमान रूप में उदय के लगभग 250 वर्षों बाद अस्तित्व में आया। सूफी मत का आविर्भाव धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध हुआ और इसका सार तत्व प्रेम है। सूफी मत लगभग 12वीं शताब्दी में भारत आया। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सफा', 'अहअल सुफ्फाह', 'सफ', 'सूफाह', 'बतूसूफा', 'सूफाना' एवं 'सूफ' आदि शब्दों से माना गया है। 'सफा' पवित्रता से संदर्भित है। पवित्र सदाचारी लोग सूफी कहलाते हैं। 'सफ' अर्थात पंडित, इस मत के अनुसार कयामत के समक्ष जो लोग अपने आचरण के कारण अ2लग पंक्ति में खड़े किए जाएँगे, उन्हें 'सूफी' कहा। 'अहल-अल-सूफ्फा के अनुसार मुहम्मद साहब के समय मदीने की मस्जिद नवगी के सामने 'सूफ्फा' (चबूतरा) पर आसन लगाने वाले भक्त सूफी कहलाए। 'अहल-अल-सूफ्फा' के 'सूफ्फाह' से सूफी शब्द बना। कालांतर में 'ऐहले सुफ्फाह' ही सूफी कहलाए। कुछ लोग 'सोफिस्ता' और 'सोकिया' आदि ग्रीक शब्दों से इसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। इन शब्दों का अर्थ 'आत्मज्ञान' से संबंधित हैं। कुछ लोग 'सूफ' शब्द से इसकी उत्पत्ति बताते हैं। अरबी शब्द 'सूफ' का अर्थ परम अथवा ऊन है। इस मत वालों का मानना है कि सूफी लोग सामान्य जन के विपरीत अच्छे वस्त्र के स्थान पर मोटा ऊनी वस्त्र पहनते थे। सूफी शब्द के उद्‌भव के संदर्भ में ये अलग-अलग विचार हैं। निश्चित रूप से शब्दों की व्युत्पत्ति का आधार विचार और व्यवहार ही है। व्युत्पत्ति के संदर्भ में भले ही एक मत न हुआ जा सकता हो, पर इतना अवश्य है और सभी मानते हैं कि सूफी संत खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे और उनका अंतिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। उस ईश्वर की, जो भौतिकता से परे है। उसे वही जान सकता है, जो स्वयं को जान लेता है। स्वयं को जानने का अर्थ आत्मा को जानना है। ईश्वर का साम्राज्य हृदय के भीतर है। उसे जाने बिना ईश्वर को जाना नहीं जा सकता। शरीर पर विजय प्राप्त करने के लिए आत्मा पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। सूफियों के मतानुसार इस आत्मा पर प्रेम के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है।

सूफी मत की पूरी साधना इस प्रेम की प्राप्ति की साधना है। इस साधना की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं। पहली शरीयत अर्थात धर्मग्रंथों के विधि निषेधों का पालन, दूसरी तरीकत अर्थात बाह्य कर्मकांड से ऊपर होना, तीसरा हकीकत अर्थात भक्ति के द्वारा सत्य का बोध। इस अवस्था में भक्त तत्वज्ञानी हो जाता है। चौथी मारफत अर्थात आत्मा का परमात्मा में लीन होना। यही सिद्धावस्था है।

## 5.4.2 जायसी के काव्य में प्रेमतत्व

इन विचारों के दार्शनिक आधारों से प्रभावित होकर जायसी की काव्यानुभूति ने अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस मार्ग में उन्होंने प्रेम को ही सारतत्व माना। जायसी कहते हैं, 'प्रेमघाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।' प्रेम का दुख हर कोई नहीं जान पाता। जिसे प्रेम होता है, वही इसका दुख जानता है। जायसी तथा अन्य समस्त प्रेमकथानक कवियों ने प्रेम को सिर्फ वैयक्तिक क्रिया या भावना के रूप में ही नहीं देखा है। वे प्रेम को जीवन के विविध पक्षों के साथ मिला कर प्रेम का व्यापक रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रेम के व्यष्टि और समष्टिगत भावनाओं के समाहार में ही जायसी की भक्ति और कवित्व दोनों का विकास होता है। इसीलिए कथातत्व और दार्शनिक विचारों का भी गहरा समाहार हुआ है। सूफियों की आध्यात्मिक भावना के अनुरूप जायसी ने भी प्रेम-तत्व को अत्यधिक महत्त्व दिया है। भारतीय परंपरा में प्रेम के दो पक्षों का वर्णन मिलता है- संयोग और वियोग पक्ष। संयोग पक्ष की अभिव्यंजना पद्मावती और नागमती दोनों रानियों के आश्रय से हुआ है। काव्य की नायिका पद्मावती है। अतः संयोग चित्रों में पद्मावती को ही ज्यादा स्थान और महत्त्व मिला है। नागमती और रत्नसेन का संयोग-चित्र तो मात्र एक ही स्थान पर मिलता है। यह भी संयोग का अधूरा चित्र है। इसमें यहाँ कवि की प्रवृत्ति भाव की पूर्ण अभिव्यंजना की ओर नहीं है। यहाँ कवि ने नागमती के रूठने और फिर रत्नसेन द्वारा मना लिए जाने पर उनके संयोग का उल्लेख मात्र किया है, 'कंठलाइ कै नारि मनाई। जारी से केलि सींचि पहुलाई।'

संयोग पक्ष के वर्णन का मुख्य आधार पद्मावती और रत्नसेन हैं। इस संयोग वर्णन में कवि ने प्रथम दर्शन की उत्कंठा से लेकर मिलन तक के चित्र सहृदयतापूर्वक उतारे हैं। सबसे पहले प्रथम दर्शन की मिलनोत्कंठा का मधुर चित्र द्रष्टव्य है जिसमें राजकुमारी पद्मावती के बारात आगमन के समय, विशेष उल्लास और प्रेम की अतिशयता का चित्रण कवि ने किया है-

हुलसे नैन डरस मदमाते। हुलसे अधर रंग रस राते।।
हुलस बहुत ओय करविपाई। हुलसि हिम कंचुकि न समाई।।
हुलसे कुच फचनीबँद टूटे। हुलसी भुजा, वलय कर फूटे।।
आजु चाँद घर आवन सुरू। आज सिंगर होइ सब चूरू।।
अंग-अंग सब हुलसे, कोउ कतहुँ न समाइ।
ठाकरि ठाँव विमोही, डाइ मुरछा तन छाइ।।

इस संयोग वर्णन की विशेषता यह भी है कि जायसी ने इसमें 'कांड' परंपराओं का ही अनुपालन किया है। यहाँ रत्नसेन और पद्मावती के संयोग की अनेक स्थितियों का वर्णन किया गया है। इसमें शारीरिक भोग-विलास के चित्र हैं पर भावात्मकता को ज्यादा प्रधानता दी गई है।

### वियोग पक्ष

जायसी ने यद्यपि संयोग पक्ष का भौतिक चित्र उकेरा है, पर उनकी कृति सिद्धि वियोग वर्णन में ही उभरी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी द्वारा वर्णित नागमती वियोग वर्णन को 'हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु' कहा है। जायसी ने वैसे तो रत्नसेन, पद्मावती और नागमती तीनों के वियोग का वर्णन संदर्भानुकूल किया है पर नागमती का वियोग चित्र जितना उत्कृष्ट, उत्कट और अद्वितीय बन पड़ा है वैसा अन्य दोनों का नहीं। रत्नसेन वियोग का अनुभव तब करता है जब वह पद्मावती को देख कर मूर्च्छित होता है और होश में आने के बाद उसे अपने समीप नहीं पाता। पद्मावती एक बार योग के प्रभाव से विरह

अनुभव करती है और दूसरी बार रत्नसेन के बंदी हो जाने के समय। पर इनमें नागमती की विकलता और व्यापकता नहीं है। प्रेम-निरूपण में जायसी ने विरह को अधिक महत्त्व दिया है। विरह की यह आत्यंतिक विशेषता है कि जीवन के लौकिक पक्ष और दार्शनिक संदर्भ साथ-साथ ही निबद्ध हैं। जैसे नागमती का वियोग नितांत लौकिक संदर्भ है पर प्रेम की आध्यात्मिकता में उसका बहुत विशिष्ट संदर्भ भी है। वर्णन की इस पद्धति में लौकिक प्रेम के समानांतर अथवा साथ-साथ अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी होने लगती है। 'पद्मावत' की खासियत यह है कि कथा के लौकिक अथवा अलौकिक संदर्भ एक-दूसरे से टकराते नहीं हैं। पूरी कथा लौकिक संदर्भ से पढ़ी जा सकती है। पर इन अलौकिक संदर्भों को छोड़ कर भी नहीं पढ़ी जा सकती। कथा के अलौकिक संदर्भ घटनाओं (हीरामन के मुख से पद्मावती के रूप का वर्णन सुन कर मूर्च्छित होना, रत्नसेन की सिंहल यात्रा, रत्नसेन पद्मावती के मिलन-प्रसंग आदि), वर्णनों (पद्मावती का नख-शिख वर्णन, सिंहल गढ़ वर्णन, रत्नसेन की मूर्च्छित अवस्था का वर्णन आदि), संवादों ('प्रेम- खंड' संवाद, नागमती वियोग खंड, मान सरोदक खंड आदि) में निहित हैं। उदाहरण के लिए यहाँ एक संदर्भ देखा जा सकता है। रत्नसेन पद्मावती का रूप देख कर मूर्च्छित हो जाता है। कवि ने रत्नसेन के पुनः सचेत होने की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है :

आवत जग बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा।।
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउं कहाँ।।
केइ उपकार मरन कर दीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा।।

इन पंक्तियों में रत्नसेन के मूर्च्छित हो जाने पर ध्यान में पद्मावती रूपी परम ज्योति के सामीप्य की जो आनंदमयी अनुभूति हो रही थी, उसी का वर्णन किया गया है।

एक अन्य प्रसंग है, जहाँ रत्नसेन के सातवें समुद्र में पहुँचने पर दुख का घट जाना, आनंद का प्रसार होना, सूर्य-किरण का उदित होना आदि कथनों के द्वारा साधक का अपनी साधना के निकट पहुँच जाना दिखलाया गया है।

देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइन होइ छावा।।
गा अंधियारा, दैति मसि छुटि। भी भिनसार किए दबि फूटी।।
अस्ति अहित सब साथी बोले। अंध जो अहै नैत विधि खोले।।

साधना के निकट पहुँचते जाने से साधक के सारे भ्रमों और संतापों का नाश हो जाता है और आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होती है।

अभिव्यंजना की इस शैली के कारण ही इस कथा के सब पात्र प्रतीक बन जाने की क्षमता रखते हैं। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि अगर ये पात्र इन प्रतीकार्थों को धारण करने में सक्षम न होते, तो पूरी कथा बहुत सतही और खोखली रह जाती। जायसी ने उपसंहार में लिखा है कि मैंने इस ग्रंथ का आध्यात्मिक अर्थ पंडितों से पूछा तो उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा, इस पृथ्वी के नीचे और ऊपर जो चौदह भुवन हैं, वे ही सब मनुष्य के शरीर में हैं :

मैं एहि अरथ पंडितन्ह पूछा। कहा कि हम किछु और न सूझा।।
चौदह भुवन जोतर उपराहीं। वे सब मानुस के घट माहि।।

इसके पश्चात कवि ने स्वयं कथा के प्रतीकों के आध्यात्मिक अर्थ दिए हैं। वह कहता है कि शरीर चित्तौड़गढ़ है, मन राजा, हृदय सिंहलगढ़ और पद्मावती बुद्धि का रूप है। पथ-प्रदर्शक तोता गुरु है। गुरु के बिना कोई ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। नागमती दुनियावी कार्य व्यापारों का प्रतीक है। कवि कहता है जो इसके चक्कर में पड़ता है, वह सँभल नहीं पाता। राघव चेतन को कवि शैतान का प्रतीक मानता है, तो अलाउद्दीन को माया। कवि कहता है कि 'पद्मावत' की प्रेम-कथा को इन प्रतीकों की रोशनी में ही पढ़ना

चाहिए-

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मिनि चीन्हा।।
गुरु सुअन जो पंथ देखावा। बिना गुरु को निरगुन पावा।।
नागमती एहि दुनियाँ धंधा। बाँचा सोइन जो एहिचित बंधा।।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू।।
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बुझिलेहु जो बूझै पारहु।।

कवि ने अन्यत्र कहा है कि मुहम्मद ने प्रेम कहानी कही है, जो भी इसे सुनता है वह ध यानी हो जाता है, 'कहा मुहम्मद प्रेम-कहानी। सुनि सो ग्यानी भए ध्यानी।।'

यह प्रेम ही जायसी की भक्ति का मुख्य आधार है। कहीं समुद्र है, कहीं डँसनेवाला साँप, कहीं बहेलिया - जो यौवन के पक्षी पर घात लगाए बैठा है। नागमती का संदेश दूर तक और देर तक गूँजता है :

पिउ सो कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि करहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लाग।।

सँदेसड़ा शब्द की ध्वनि मार्मिक संकेत प्रस्तुत करती है। नागमती कहती है कि हे भौरें! हे कौवे, प्रिय को यह संदेश देना कि वह स्त्री (जिसके लिए नाम या संज्ञा अब अनावश्यक है) जल मरी। हमारे रंग रूप की कालिमा उसी के धुएँ का स्पर्श है। देखा जाए तो यह स्पष्टतः अतिकथन है, पर परिस्थिति और संदर्भ के कारण मार्मिक अभिव्यक्ति बन पड़ी है। इसी तरह के अन्य मार्मिक संकेत नागमती वियोग प्रसंग में हैं :

जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात।
सेइ पंखी जाइ जरि, तरिकर होइ निपात।।

प्रेम विरह की विषम स्थिति का यह सहज मनोविज्ञान है कि मनुष्य अपनी स्थिति की तुलना कुछ समान और कुछ विपरीत परिस्थितियों के अन्यान्य संदर्भों से करता है। जायसी ने नागमती के वियोग वर्णन में नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का चित्रण किया है। एक स्थल पर नागमती की मार्मिक स्थिति द्रष्टव्य है :

परबत समुद्र अगम बिच, बीहड़ धन बन ढाँख।।
किमि कै भैंतोंकन्त तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख।।

पर्वत और समुद्र रत्नसेन और पद्मावती के बीच भी है, जब वह पद्मावती से मिलने जा रहा होता है तब यह समस्या आती है कि नागमती रत्नसेन तक कैसे पहुँचे? 'न पाँव न पाँख' यहाँ अतिव्यंजक है। यह सिर्फ स्त्री की असहायता, निरीहता या अकेलेपन का वक्तव्य नहीं है। पित सत्तात्मक समाज में स्त्री की मर्यादा और स्वतंत्रता का भी प्रश्न है। रत्नसेन पुरुष है, तो उसके पैर हैं। वह घर की दहलीज लाँघ सकता है। लाँघ गया। पर नागमती के पाँव घर की मर्यादा से जुड़े हैं। वह मर्यादाबोध के कारण घर का त्याग नहीं कर पाती। अन्यथा वह भी रत्नसेन के पीछे-पीछे निकल पड़ती। मर्यादाभाव के कारण ही वह पीड़ा स्वीकार करती है। इसीलिए नागमती के प्रेम संदेश में वह सरलता है, जो सीधे हृदय को छूती है, 'मोहि भोग सौं काजन बारी। सौंह दीढि कै चाहतहारी।' नागमती कहती है कि उसे भोग की लालसा शेष नहीं रह गयी है। वह केवल प्रिय को देखना चाहती है। इस निवेदन में प्रेमजन्य तन्मयता स्वयं ही प्रकट हो जाती है। इस तन्मयता के कारण ही नागमती अपने वियोग में सबको शामिल कर पाती है। वह वन-उपवन में घूम कर अपना दुख बखानती है। पक्षियों से प्रार्थना करती है। यह संवेदनात्मक दृष्टि से बहुत बड़ी संकल्पना है।

नागमती के विरह वर्णन की एक बड़ी उपलब्धि बारहमासा भी माना जा सकता है। बारहमासा में जायसी ने अलग-अलग महीनों के अनुसार नागमती के वियोग का वर्णन

किया है। शुक्ल जी ने जायसी ग्रंथावली में एक बारहमासा उद्धृत करते हुए इसका गंभीर विश्लेषण किया है :

दहि कोइला भइ मांसु सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा।।
रकत न रहा बिरह तन जरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा।।
× × ×
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै कहीं बिथा केहि भाँति।।

यह नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप में व्यक्त हुई है। हिंदू दांपत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं माधुर्य से ओत-प्रोत चित्र यहाँ है। अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौंदर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाती है। इस बारहमासे में वर्ष के बारह महीनों का वर्णन विप्रलंभ श्र ंगार के उद्दीपन की द ष्टि से है; जिसमें आनंदप्रद वस्तुओं का दुखप्रद होना दिखाया जाता है, जैसा कि मंडन कवि ने कहा है-

'जेइ जेइ सुखद, दुखद अब तेइतेइ कवि मंडन बिछुरत जदुपत्ती।'

बारहमासा में नागमती की व्यथा का जैसा सजीव और मार्मिक अंकन कवि ने किया है, वैसा हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

जायसी का काव्य जीवन का रूपक है। रूपक में प्रतीकों की संगति रहती है। 'पद्मावत' की पूरी कथा का एक आधार अगर उसकी लौकिकता और ऐतिहासिकता अथवा अर्द्ध ऐतिहासिकता में है, तो उसकी पूरी कथा इसका अतिक्रमण भी करती है। कथा के अतिक्रमण का आधार उसका ऐतिहासिक संदर्भ नहीं, दार्शनिक और आध्यात्मिक संदर्भ है।

**बोध प्रश्न 2**

4. 'सूफी' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए इस साधना पद्धति पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

5. जायसी की भक्ति में प्रेम के महत्व की विवेचना कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

## 5.5 जायसी के काव्य में लोक जीवन

शुक्ल जी ने जायसी को भक्ति की प्रेमाख्यान शाखा का कवि माना है। प्रेम कथाओं में प्रेमी-प्रेमिका का साहचर्य, संबंध और ऐकांतिक आदर्श ही मुख्य आधार रहता है। 'पद्मावत' भी प्रेम को आधार मान कर चला है पर उस कथा के विस्तार में लोक-जीवन के यथार्थ का समाहार है। जायसी की इस प्रेमाख्यान की मुख्य विशेषता है कि यहाँ प्रेम की गरिमा और महत्ता के साथ जीवन के पारिवारिक और सामाजिक पक्ष निरंतर मौजूद रहे हैं। इसीलिए इसमें जीवन के व्यापक पक्षों का निष्पादन हुआ है।

'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में प्रेम-कथा के रूप में तत्संबंधी स्थितियाँ एवं मनोभावों का वर्णन है, पर उत्तरार्द्ध में जीवन के अन्य पक्षों का चित्रण है। प्रेम दो व्यक्तियों का नितांत वैयक्तिक सरोकार है। परंतु जायसी ने जिस प्रतीक विधान का निर्माण किया, उसने प्रेम को निर्वैयक्तिक बना दिया। प्रेम की यह निर्वैयक्तिकता मनुष्य मात्र की संपदा हो जाती है। इस महाकाव्योचित कहानी में जायसी ने पद्मावती को ईश्वर की अद्वितीय प्रेम सत्ता का प्रतीक बताया और रत्नसेन को प्रेम-व्याकुल जीवन का। मध्ययुगीन समाज और दर्शन में जहाँ ईश्वर सर्वोच्च सत्ता का पर्याय है, उस समाज में कवि की इस प्रतीक योजना ने प्रेम को जन तक पहुँचने का भी संदर्भ बताया और प्रेम के माध्यम से जन के ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया। अगर ऐसा नहीं होता, तो जायसी का पूरा कवि कर्म निरर्थक हो जाता।

संकेत प्रधान कहानी को जायसी इतने राग से कहते हैं कि लौकिक अर्थ कहीं भी धुँधला नहीं पड़ता। जायसी के लोक को या जायसी द्वारा निर्मित लोक को समझने के लिए हमें इस बात को भी समझना होगा कि जायसी का संदर्भ बिंदु क्या है, जायसी यह कथा किसके लिए कह रहे हैं। किसकी कथा है यह तो स्पष्ट है ही। सामान्यार्थ में पद्मावती, रत्नसेन और नागमती की कहानी है तो प्रतीक में ईश्वर और जीवात्मा की। एक स्तर पर यह प्रेम की कहानी है तो दूसरे स्तर यह प्रेम को पाने के संघर्ष और प्रेम को बचाए रख सकने के संघर्ष की भी कथा है। इस रूप में यह सिर्फ प्रेम की कथा नहीं है; प्रेम और संघर्ष की मिलीजुली कहानी है। सामान्य जन के पास जो प्रेम और संघर्ष के हथियार हैं उससे जायसी की लोक चेतना ज्यादा साफ और स्पष्ट होगी।

सामान्य जन के पास प्रेम का आधार या उसे बचाए रख सकने का आधार उनका जीवन व्यापार है। जहाँ वे लोक और विश्वास के विरुद्ध जाते दिखाई पड़ते हैं, वहाँ भी वे उन विश्वासों का अतिक्रमण नहीं करते। वे अपने प्रेम की सिद्धि उस समाज और उसके मूल्यों के बीच ही चाहते हैं। जायसी ने इस प्रेम कथा की सिद्धि समाज के बीच ही चाही और इस कारण वह समाज कहीं भी और कभी भी उनकी कविताओं से गायब नहीं हुआ। इसके बावजूद कि वे सूफी विचारों से प्रभावित थे और उनकी काव्यानुभूति मूर्ति की बनावट में इसका असर है, जायसी की सृजनात्मकता को लोक संस्कृति से व्यापक आधार प्राप्त हुआ।

जायसी लोक संस्कृति के विविध रूपों को अपने काव्यानुभव में घुलाते हैं। लोक संस्कृति की पहचान का अर्थ तथ्यों की सूची रखना नहीं है, न ही शब्दों की बड़ी पूँजी (जो जायसी के पास थी) ही इसे प्रस्तावित करती है - पर इनके द्वारा भी लोक संस्कृति की पहचान का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके द्वारा लोक संस्कृति के मानस का साक्षात्कार होता है, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष इस प्रबंध से हमें प्राप्त होता है। वास्तव में शब्दों में वह लोकभूमि द्रष्टव्य होती है। जन्म-मृत्यु, राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, शृंगार-क्रोध, मैत्री-शत्रुता, स्मृति-विस्मृति, गीत, कथा, स्थापत्य, युद्ध, आभूषण, जादू-टोना, रहस्य आदि तमाम भाव वस्तु एवं गतिविधियाँ एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं। भोजन, शृंगार, सरोवर, शतरंज, चौगान, सौंदर्य-घटक, वेश्याओं का, पनिहारिनों का, स्त्रियों का, भोज, आनंदोत्सव, दूतियाँ आदि मिल कर 'पद्मावत' का ऐसा संसार निर्मित करते हैं जिस पर लोक संस्कृति की विशिष्ट छाप अंकित है।

'पद्मावत' का प्रारंभिक सिंहल द्वीप अंश इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है जहाँ पनिहारिनों और बाजार का चित्र है:

पानि भरै आवहि पनिहारी। रूप स्वरूप पदमिनी नारी।।
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।।

पर इस सामान्य के सजीव इतिवृत्त से ही उस अद्वितीय सत्ता की भी व्यंजना हो जाती है :

माथै कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।
जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप।।

इसी क्रम वे हाट-व्यापार के चित्र भी हैं, जहाँ का रत्न-द्रव्य, शृंगार चकित करने वाला है,

'झनक हाट कहकुहँ लीथी। बैठ महाजन सिंघलदीप।।'

× ×

कोई करै बेसाहिनी, काहू केर बिकाइ।
कोइ चले लाभ सन, कोई मूर गवाई।।

हाट का ध्वन्यार्थ दूर तक जाता है। पर लौकिक संस्कृति की जमीन से दूरी फिर भी नहीं बनती। ये तमाम वर्णन 'पद्मावत' में शृंखलाबद्ध हैं। लौकिकता का अतिक्रमण 'पद्मावत' के रूपक की अनिवार्यता है पर जायसी की विशिष्टता कथन-परिवेश की उस बुनावट में है जो लोक संस्कृति के अनुभवों तथा प्रत्यक्षों के भीतर रूप लेती है।

## 5.6 जायसी की भाषा और काव्य सौन्दर्य

कबीरदास और जायसी की भाषा की तुलना करते हुए विजयदेव नारायण साही लिखते हैं, ''एक अर्थ में जायसी हिंदी के पहले विधिवत् कवि हैं। मैं यह नहीं कहता कि कबीरदास ने कविता के द्वारा एक अत्यंत कठिन समय में अभिव्यक्ति की समर्थ और शक्तिशाली राह नहीं बनाई। कबीरदास के पथ-प्रदर्शन और क्षमता के बिना शायद जायसी के लिए 'पद्मावत' को लिख पाना भी संभव न होता। परंतु कबीर अपनी प्रतिभा के सहारे भाषा को ठेल-ठेलकर आगे बढ़ाते हैं। उनकी कविता में इस प्रयास के चिह्न बराबर दिखते हैं। लेकिन जायसी में पहली बार हिंदी भाषा सहज काव्य-प्रवाह में बहने लगती है।'' आगे वे लिखते हैं, ''हिंदी का अवधी रूप, जिसे जायसी ने अपने काव्य-माध्यम के लिए चुना, समूचा का समूचा काव्यमय हो जाता है। कवि का प्रयास कहीं दिखता नहीं। लगता है कि समूची अवधी भाषा कविता ही है जो जायसी की क़लम से अपना स्वरूप ग्रहण करती चलती है। जब भाषा में इस तरह की अपनी स्वतःस्फूर्त गति दिखे तो हम बेखटके समझ सकते हैं कि हम एक बड़े कवि के सामने उपस्थित हैं।'' भाषा का सहज प्रवाह कवि के सामर्थ्य का वाचक है। यह मात्र विचार की तार्किकता का मसला नहीं है, कविता की संवेदनात्मक जीवंतता का संदर्भ है। साही जी भाषा की संवेदनात्मक धड़कन से जायसी के काव्य

सामर्थ्य को चिह्नित करते हैं। यह बहुत महीन बात इसलिए भी है, क्योंकि विद्वानों के द्वारा जायसी की भाषा शुद्ध साहित्यिक अवधी नहीं मानी जाती। शुद्ध साहित्यिक अवधी तो तुलसीदास की थी। किंतु भाषा के रूप में अवधी जो यात्रा जायसी से तुलसीदास तक करती है वह एक स्तर पर जनभाषा से शिष्ट भाषा तक की यात्रा भी है।

### 5.6.1 माधुर्य की प्रतिष्ठा

जायसी की अवधी लोकभाषा के अधिक निकट है। लोकभाषा में जो अनगढ़पन होता है, उसके परिष्कृत रूप में आने से पहले जो खुरदुरापन होता है, वह कविता को प्रायः गुणात्मक रूप में समृद्ध ही करता है। इस अनगढ़पन में माधुर्य की प्रतिष्ठा करके जायसी ने लोक चेतना के साथ ही अपने काव्य सामर्थ्य का भी परिचय दिया। जायसी ने कविता का जो दूरस्थ दार्शनिक आधार ग्रहण किया, वह भी लोकभाषा के कारण नई विशिष्टता पाते हैं। कविता की भाषा जायसी के यहाँ निरंतर घटित होते हुए आवेगों के बीच संभव हो पाती है। भाषा में यह सब संभव हो पाया तो इसके पीछे कवि का आत्मविश्वास बहुत बड़ी निधि है। वे कहते हैं, 'जोरी लाइ रकत कैलेई। गाढ़ि प्रीति नयतन्ह जल भेई।'

यह भाषा की ताकत है। पाठक जायसी के कविकर्म से गुजरता हुआ कविता की भाषिक क्षमता से भी गुजरता है। इस भाषा का माधुर्य अत्यंत सघन है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है, ''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य 'भाषा' का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है। 'मंजु', 'अमंद' आदि की चाशनी उसमें नहीं है।'' भाषा के इस माधुर्य ने कविता को असंभावित संदर्भों से बाहर निकाला। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए, तो पूरे निर्गुण परिपाटी के काव्यत्व में माधुर्य कम ही दिखाई देता है। वह तर्कों पर आधारित है। उसे ईश्वर के सगुण रूप और जनता के सर्वस्वीकार्य रूप के समानांतर अपनी स्थापनाएँ रखनी थीं। इसीलिए निर्गुण काव्य परंपरा और उसकी पूर्वज कविता में तर्काधिक्य है। एक दूसरी बात और भी समझनी है। भक्ति की निर्गुण शाखा भक्ति के ढाँचे से बाहर नहीं है। सगुण भक्तिपरक कविताओं के समानांतर ये कविताएँ ईश्वर के लोक प्रकट रूपों का वर्णन नहीं करतीं। एक रूप में निर्गुण कविता ईश्वर के तात्त्विक स्वरूपों का वर्णन करती है। कबीर आदि निर्गुण संत ईश्वर के स्वरूप का वर्णन तत्त्व मीमांसा में ही तो करते हैं, 'जाके मुह माथा नहिं, नहीं रूपक रूप / पुहुपवास ते पातला ऐसा तत्र अनूप।' जायसी आदि तमाम प्रेमाख्यान कवियों ने भी ईश्वर के स्वरूप को निर्गुण ही माना है - 'रहा आपु महँ आपु समाना'। ('अखरावत') सृष्टि के सर्गोन्मुख होने के पूर्व वह अव्यक्त था, - 'बरज बीज बीरौं अस, ओहि न रंग न भेस।' परंतु जायसी आदि कवियों ने इस 'न रंग, न भेस' वाले ईश्वर की कथा, कथा और प्रबंध के माध्यम से कही। वह भी उस कथा में जो जनजीवन में व्याप्त था। कविता में माधुर्य के निर्माण में इस तथ्य की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

### 5.6.2 प्रतीकात्मकता

उपर्युक्त संदर्भ से हम एक बात और भी समझ सकते हैं। कथा में जो भाषा कही जा रही है, वह एक स्तर पर तो कथा को सहज स्वीकार्य बना ही रही थी परंतु साथ ही, अर्थ की समानांतरता भी सदैव निर्मित करती चलती है। ऐसे में इस भाषा में कल्पना, प्रतीक विधान, अन्योक्ति का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। 'पद्मावत' की पूरी कथा ही एक स्तर पर प्रतीक है। उसके तमाम पात्र प्रतीक हैं। 'पद्मावत' (ईश्वर), नागमती (सामान्य जीव), रत्नसेन (साधक), सुआ तोता (गुरु) आदि प्रतीक रूप में भी हैं। गढ़, द्वीप सब प्रतीक रूप हैं। इस संदर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि जायसी के कुछ शब्दों के पारिभाषिक संदर्भ निश्चित कर दिए गए हैं। वे इतने रूढ़ हो चुके हैं कि उसमें कोई सृजनात्मक आवेग नजर

नहीं आता। इसके बावजूद प्रतीकात्मकता जायसी की भाषा का अविभाज्य अंग है।

### 5.6.3 अप्रस्तुत की व्यंजना

'पद्मावत' की अन्योक्ति और समासोक्ति में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का जैसा सुंदर विधान है, वैसा हिंदी के कम ही कवियों में दिखाई पड़ता है। अप्रस्तुत की व्यंजना के लिए जिन प्रस्तुत वस्तुओं का उपयोग किया गया है और प्रस्तुत के लिए जिन आवस्तुत भावों, वस्तुओं का प्रयोग है - वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक ओर बोध का निर्माण करती हैं, तो दूसरी ओर भावों को उद्दीप्त करती हैं। 'पद्मावत' की पद्मावती कमल है, शशि की ज्योति है, हँसती है, तो फूल झड़ते हैं। रोती है तो मोती बिखरते हैं। इधर जैसे ही सूर्य (रत्नसेन) को राहू लगा, तभी कमल के मन में उसका आभास हो गया। कवि अप्रस्तुत के माध्यम से नायिका की प्रेमाभिव्यक्ति करता है, 'चार घड़ी वह ग्रसित रही, फिर विधाता ने उसके हृदय में ज्योति प्रकाशित की।' यह पूरा वर्णन क्रम अप्रस्तुत में ही आगे बढ़ता है, 'मान नाऊँ सुनि कँवल बिगासा। फिरि कै भँवर लीन्ह मधु खासा।।' योग मार्ग की जो व्यंजनाएँ चित्तौड़गढ़ के प्रस्तुत वर्णन में हैं, वे रोचक भले न हों ज्ञानप्रद अवश्य हैं। जायसी के यहाँ वर्णन बहुत अधिक है। विशेषतः सिंहल द्वीप, नखशिख, भोज, बारहमासा, चढ़ाई और युद्ध के। इन वर्णनों से उनकी अच्छी जानकारी और परिचय प्राप्त होता है।

### 5.6.4 प्रबंधात्मकता

'पद्मावत' एक प्रबंध काव्य है। जायसी कथा कहते हैं। प्रबंधात्मक कविता की सामर्थ्य इस बात से भी स्पष्ट होती है कि घटनाओं का संयोजन किसी कवि ने किस प्रकार किया है। जायसी के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं, ''पद्मावत की कथावस्तु का प्रवाह स्वाभाविक है। केवल कुतूहल उत्पन्न करने के लिए घटनाएँ इस प्रकार कहीं नहीं मोड़ी गई हैं जिससे बनावट या अलौकिकता प्रकट हो। किसी गुण का उत्कर्ष दिखाने के लिए भी घटना में अस्वाभाविकता जायसी ने नहीं आने दी है। दूसरी बात यह है कि वर्णन के लिए जायसी ने मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर रखा है। परिणाम वैसे ही दिखाए गए हैं जैसे संसार में दिखाई पड़ते हैं। कर्मफल के उपदेश के लिए उनकी योजना नहीं की गई है।'' यह वैशिष्ट्य जायसी में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इस प्रबंध के पूर्ण निर्वहण के लिए भाषा का समृद्ध होना भी उतना ही अनिवार्य है। जायसी की भाषिक क्षमता का अंदाजा इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि लगभग एक बोलचाल की भाषा में, जिसके साहित्य का विस्तार तब तक हो भी न पाया हो, इस समृद्ध प्रबंधात्मकता का निर्वाह उन्होंने किया। इस कृति की रचना मसनवी शैली में की गई है। जायसी ने दोहा चौपाई का प्रयोग किया है। इसमें भारतीय और फारसी दोनों ही पद्धतियों का समन्वय दिखाई देता है।

### 5.6.5 अलंकार

जायसी की भाषा में अलंकरण का विशेष महत्त्व है। अलंकरण का संदर्भ परंपरागत भी है। जायसी के यहाँ पहले के कथनों, रूढ़ियों की स्म ति बार-बार उभरती है। परंतु जायसी की कवि प्रतिभा इस परंपरागत संदर्भ में भी अपना एक व्यक्तित्व अर्जित करती चलती है। यह अपनापन साद श्यों में भी है और विरोधी वस्तुओं के संगठन में भी। वही कवि की आलंकारिक योजना के पीछे काम करने वाला निजी तर्क है - खास विशेषता। इसी कारण परंपरागत उपमान होने पर भी प्रयोग संदर्भ में उपयुक्त और भावाभिव्यक्ति में सहायक हैं। यह चित्र देखिए

'सखा रूप बिमोहा हिएँ हिलोर करेइ। पाय छुबै मनु पावौं तेहि मिसु लहरैं लेइ।।'

जायसी की कविता की भाषा निरंतर घटित आवेगों के मध्य अपनी रचनात्मक सिद्धि प्राप्त करती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जायसी की भाषा का सहज प्रवाह, आवेग कहीं अवरुद्ध नहीं होता। जहाँ लोक और लोकोत्तर का संतुलन बाह्य धारणात्मकता तक

सीमित है, वहाँ कविता की रचनात्मक सिद्धि गायब है। ऐसी स्थिति में रूढ़ प्रतीकों और धारणाओं का खटकता है, पर जायसी के 'पद्मावत' में ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं।

**बोध प्रश्न-3**

6. जायसी के काव्य में चित्रित लोक जीवन के विभिन्न पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए)

.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................

7. जायसी के काव्य की भाषागत विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए)

.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................

## 5.7 जायसी के काव्य का वाचन और व्याख्या

जायसी के काव्य के विवेचन के साथ हमने 'पद्मावत' के कुछ अंशों को वाचन के लिए भी प्रस्तुत किया है। इन अंशों के साथ कठिन शब्दों के अर्थ दे दिए गए हैं। लेकिन कई बार शब्दों का अर्थ जानने पर भी हम काव्य के भावार्थ को नहीं समझ पाते। पठित अंशों के भावार्थ को समझने में यह विश्लेषण आपकी मदद करेगा। हम यहाँ 'पद्मावत' की कुछ चौपाइयों और एक दोहे की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। आप इन्हें ध्यान से पढ़िए और अन्य अंशों की स्वयं व्याख्या करने की कोशिश कीजिए।

1. **सिंघल दीप कथा अब गावौं। ओ सौ पदुमिनि बरनि सुनावौं।**
**बरन क दरपन भाँति विसेखा। जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा।।**
**धनि सो दीप जहँ दीपक नारी। सो सौ पदुमिनि दइअ अवतारी।**
**सात दीप बरनहिं सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू ।।**
**दिया दीप नहिं तस उजियारा। सरॉ दीप सरि होइ न पारौ।।**
**जंबू दीप कहौं तस नाहीं। पूज न लंक दीप परिछाहीं।।**
**दीप कुसस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा ।।**
**सब संसार परथमै आए सातौं दीप।**
**एकौं दीप न उत्तिम सिंहल दीप समीप।।**

### संदर्भ

यह अंश हिंदी साहित्य की सूफी काव्य परंपरा के अप्रतिम कवि मलिक मुहम्मद जायसी की श्रेष्ठ कृति 'पद्मावत' से लिया गया है। यह पद सिंघल द्वीप-वर्णन

खण्ड से लिया गया है। इस काव्य अंश से जायसी 'पद्मावत' की कथा की मुख्य भूमि पर उतरते हैं।

### व्याख्या

जायसी कहते हैं कि अब मैं सिंघल द्वीप की कथा कहता हूँ और पद्मावती का वर्णन सुनाता हूँ। जायसी आगे कहते हैं कि वर्णन की विशेषता दर्पण की तरह होती है। जिसका जो रूप होता है उसकी शक्ल वैसी ही दिखाई देती है। वह द्वीप धन्य है जहाँ स्त्रियाँ दीपक के समान हैं और दैव ने उस पद्मावती का अवतार कराया। सब लोग सात द्वीपों का वर्णन करते हैं पर एक भी द्वीप उससे तुलनीय नहीं है। दिया द्वीप में वैसा उजाला नहीं है, सरण द्वीप उसकी बराबरी नहीं कर सकती। जम्बू द्वीप भी वैसा नहीं है। लंकाद्वीप उसकी बराबरी नहीं कर सकता। कुशस्थल द्वीप में जंगल भरा है। महुस्थल द्वीप मनुष्यों को हराने वाला है। सारे संसार के सातों द्वीपों में सिंघल द्वीप के समान उत्तम एक भी द्वीप नहीं है।

### विशेष

2. सिंघल द्वीप पद्मावती का निवास स्थान है। चूँकि कथा के रूपकत्व के अनुसार पद्मावती ईश्वर का पर्याय है। मध्यकालीन बोध में ईश्वर सर्वोच्च और निर्विवाद सत्ता है। अतः मध्यकालीन बोध अथवा आधुनिक सत्ता संरचनाओं में ईश्वर का निवास स्थान असंदिग्ध रूप से विशेष महत्त्व रखता है। इसीलिए सिंघल द्वीप के अनेक महत्त्वों में एक महत्त्व यह भी है।

2. जिन द्वीपों के नाम यहां दिए गए हैं वे द्वीप वास्तविक स्थलों के नाम हों, इसकी संभावना कम ही दिखाई पड़ती है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'यहाँ जायसी ने मध्यकालीन भूगोल की कहानियों में कल्पित सात द्वीपों का वर्णन किया है।'

2. **तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।।**
**तन तिनुवर या झूरों खरी। मैं विरहा आगरि सिर परी।।**
**साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भए मूँज तन छूँछा।।**
**बंध नाहिं ओर कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।।**
**ररि दूबरि भई टैक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।।**
**बरसहि नैन चुअहिं घर माहाँ।। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।।**
**कोरे कहाँ ठाठ नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।।**

**संदर्भ** : यह उपर्युक्त काव्यांश मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा लिखित 'पद्मावत' प्रबंध काव्य के 'नागमती वियोग खंड' में से लिया गया है। राजा रत्नसेन जोगी बनकर सिंहलद्वीप गए हुए हैं और लगभग एक साल बीत चुका है। उनकी पत्नी नागमती उनके वियोग में अपनी भावनाओं को बारहमासा के रूप में व्यक्त करती है। 'बारहमासा' की शुरूआत आषाढ़ माह से होती है ओर यह जेठ-आषाढ़ पर ही समाप्त होता ने नागमती के विरह वर्णन में सामान्य नारी की विरह वेदना को वाणी दी है। इन चौपाइयों के दो अर्थ किए जाते हैं। एक अर्थ अनुसार जेठ-आषाढ़ की तपती धूप में विरह से दग्ध होकर

नागमती किस तरह रोगग्रस्त हो गयी है, इसका मार्मिक चित्रण है। दूसरे अर्थ के अनुसार नागमती अपने घर के छप्पर की दुर्दशा का वर्णन करती हैं और अपने पति से प्रार्थना करती है कि वह आए और घर के छप्पर को ठीक कराए। यहाँ विरोधाभास यह है कि जायसी यह भूल गये हैं कि नागमती मामूली ग्रामीण स्त्री नहीं है वरन् इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़गढ़ की रानी है। वह झोपड़ी में नहीं महलों में रहती है। लेकिन जायसी ने अगर ऐसा वर्णन किया तो इसका कारण यह था कि उनके जीवानानुभव में तो ग्रामीण स्त्री की पीड़ा ही थी। जायसी ने नागमती के बहाने सामान्य नारी के मन की पीड़ा को वाणी देकर लोक जीवन के साथ अपनी गहरी संपृक्ति को व्यक्त किया है। उपर्युक्त चौपाइयों की व्याख्या करते हुए हमें इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना होगा। चौपाइयों के दो अर्थों का आधार क्या है। आधार है कवि द्वारा प्रयुक्त द्विअर्थी शब्द। उदाहरण के लिए पहली चौपाई में प्रयुक्त 'छाजनि' का अर्थ छाजन नामक रोग भी है और छप्पर भी है। दूसरी चौपाई में ''तन'' शरीर के अर्थ में है और 'तान' के अर्थ में भी 'आगरि' का अर्थ खान से भी है और अर्गला से भी। साँठि' पूंजी को भी कहते हैं और सरकंडे को भी इस प्रकार दोहरे अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग करके जायसी ने इन चौपाइयों को दो अर्थों में प्रस्तुत किया है। हम यहाँ दोनों अर्थों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

**व्याख्या 1** : नागमती जेठ-आषाढ़ के माह में अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि अब मेरे शरीर में विरह की जेठ-असाढ़ी तपने लगी है अर्थात् विरह की ज्वाला में शरीर दग्ध हो रहा है। यह तपन मेरे लिए गहन या सघन छाजन रोग हो गयी है। इस रोग से शरीर कमजोर हो गया है और सूखता जा रहा है। मेरे सिर पर विरह की खान आ पड़ी है। मेरे पास कोई पूँजी तो है नहीं इसलिए अब स्नेह से कोन मेरी बात पूछेगा? बिना प्राण के मेरा शरी मूँज की तरह छूँछा हो गया है। बिना पति के मेरा कोई बंधु है न कोई सहारा देने वाला है। मुहँ से कोई बात नहीं निकलती। मैं किससे रो-रोकर अपनी दुखद कथा सुनाऊँ ? मैं रो-रोकर दुबली हो गयी हूँ और बिल्कुल बेसहारा भी हूँ। जब थंभ ही नहीं रहा तो थूनी कहाँ उठ सकती है अर्थात् बिना पति के सहारे के मैं भी आधारहीन हो गयी हूँ। मेरी आँखें आँसू बरसाती रहती हैं, सारा घर आँसुओं से भर गया है। हे कंत, तुम्हारे बिना न शोभा है, न छाँह है। तुम्हारे न होने से हे कंत, अब कौन नया साज सजाएगा ? तुम्हारी अनुपस्थिति में तो वस्त्र भी शोभा नहीं देते।

**व्याख्या 2** : नागमती ज्येष्ठ आषाढ़ के माह में अपने घर की दीन-हीन दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि अब ज्येष्ठ आषाढ़ की गर्मी पड़ने लगी है। मेरे लिए फूस का छप्पर दुखदायी हो गया है। इसका तान सिमटकर फूस का ढेर मात्र रह गया है। मैं उसके नीचे खड़ी सूखती जा रही हूँ। छप्पर में लगी अर्गला निकल गई है और दरवाजा खोलने वालों के सिर पर आ गिरती है। छप्पर के नीचे उसके अगले सिरे पर मजबूती के लिए बाँधा जाने वाला सरकंडे के बत्ते का तो हना ही क्या जबकि सरकंडा ही गिर चुका है। डोरी के खुल जाने से गूँज भी कमजोर पड़ गयी है। बंधन भी नहीं रहा ओर छप्पर जिस पर टिका रहता है वह दीवार भी नहीं है। सहारे के लिए छोटी आड़ी लगी हुई बाक भी नहीं है। ऐसे में रो-रोकर अपनी व्यथा किस से कहूँ। यह दुपल्ली की छान भी अपनी जगह से खिसक गयी है। उसमें जो खंभा लगा था वह भी नहीं रहा। इससे सहारे के लिए लगाई जाने वाली बल्ली (थूनी) भी नहीं लग सकती। छप्पर में भी धुआँ निकालने के लिए जो धूमनेत्र (नैन) बने थे, उनमें से अब पानी घर में टपकता है। हे कंत, तुम्हारे बिना यह छप्पर अब छाँह नहीं करता। पूरे बाँस (कोरे) भी नहीं है जिससे कि छप्पर का नया ठाठ बनाया जा सके। हे कंत, तुम्हारे बिना छाजन नहीं छाई जा सकती।

**विशेष :**

- उपर्युक्त दोनों अर्थों में से दूसरे अर्थ केवल विरह की भावात्मक वेदना को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि पति के न रहने से ग्रामीण स्त्री की दीन-हीन दशा का भी अत्यंत

मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

- चौपाइयों में जायसी का काव्य पर लोक जीवन के प्रभाव की अभिव्यंजना हुई है।

**3. सुभर समुद अस नैन दुई मानिक भरे तरंग।**
**आवत तीर जाहिं फिरि काल भँवर तेन्ह संग।।**

**संदर्भ** : उपर्युक्त दोहा 'पद्मावत' के नखशिख खंड में से लिया गया है। इसमें कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने हीरामन तोता द्वारा पद्मावती की आँखों के सौंदर्य का वर्णन किया है।

**व्याख्या** : पद्मावती के दोनों नेत्र जल से भरे समुद्र की तरह हैं जिनकी लहारों में माणिक्य भरे हैं। काली पुतलियाँ रूपी काल भँवर उन लहरों के साथ किनारे तक आते हैं और लौट जाते हैं।

जायसी ने नेत्रों की उपमा समुद्र से और काली पुतलियों को काल भँवर बताकर पद्मिनी के सौंदर्य में विराटता की व्यंजना की है। इस दोहे में कवि ने प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार का प्रयोग किया है और काल भँवर में रूपक का। समुद्र और काल-भँवर दोनों में जो विराटता का बोध होता है वह पद्मिनी के सौंदर्य को दिव्य और अलौकिक बनाता है।

**अभ्यास**

निम्नलिखित काव्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

**4. गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। परखि देखु तैं ओहि की छाया।।**
**पाइअ नाहिं जूझ हठि कीन्हे। जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।।**
**नौ पौरी तेहि गढ़ मँझिआरा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।**
**दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।।**
**भेदी कोई जाइ ओहि घाटी। जो लै भेद चढ़ै होइ चाँटी।**

**संदर्भ** :

..........................................................................................

**व्याख्या** :

..........................................................................................

**5.. पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।**
**से धनि बिरहें जरि गई तहिक धुआँ हम लाग।।**

**संदर्भ** :

..........................................................................................

**व्याख्या** :

..........................................................................................

**विशेष** :

..........................................................................................

## 5.8 सारांश

- मलिक मुहम्मद जायसी निर्गुण भक्ति काव्यधारा की प्रेमामार्गी शाखा (सूफी काव्य) के प्रमुख कवि हैं। अंतः साक्ष्यों के अनुसार इनका समय 1464 ई. से 1542 ई. के बीच

है।

- 'अखरावत', 'आखिरी कलाम' तथा 'पद्मावत' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।
- सांस्कृतिक सम्मिश्रण इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।
- सूफी आराधना पद्धति के अनुरूप जायसी ने भक्ति में प्रेम तत्व को सर्वाधिक महत्व दिया है। प्रेम के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों को जायसी ने अपने काव्य में पिरोया है।
- जायसी का पद्मावत प्रबंध काव्य है जिसमें चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन और पद्मिनी की प्रेम और बलिदान की कथा को काव्य का विषय बनाया गया है। इस कथा का आधार इतिहास और कल्पना दोनों है।
- पद्मावत में लौकिक प्रेमाभिव्यक्तियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है।
- 'पद्मावत' में लोकजीवन तथा उसके सांस्कृतिक पक्षों का विषद वर्णन है। इसके बारहमासा, पनिहारी, बाजार आदि के चित्रण में देखा जा सकता है।
- जायसी की भाषा अवधी है। उन्होंने अवधी के ठेठ रूप का इस्तेमाल किया है। पद्मावत में प्रतीकात्मकता, अन्योक्ति आदि प्रविधियों का भी प्रयोग किया गया है।
- जायसी में धार्मिक और साम्प्रदायिक संकीर्णता से उपर उठकर मानवीय भावनाओं को अपने काव्य का विषय बनाया। जिसके कारण आज भी उनका काव्य हमारे लिए महत्वपूर्ण है।

## 5.9 उपयोगी पुस्तकें

- जायसी - विजयदेव नारायण साही; हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
- जायसी - रामपूजन तिवारी; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

## 5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) - ✓
   (ख) - ✓
   (ग) - ×
   (घ) - ✓
   (ङ) - ×
2. देखिए - भाग 5.2
3. देखिए - भाग 5.3
4. देखिए - भाग 5.4
5. देखिए - भाग 5.4
6. देखिए - भाग 5.5
7. देखिए - भाग 5.6

# इकाई 6 मीराबाई का काव्य

## इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मीराबाई का परिचय

6.2.1 रचनाकार व्यक्तित्व

6.2.2 जीवन-परिचय

6.2.3 मीराबाई की रचनाएँ

6.3 विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव

6.4 भक्ति-भावना

6.4.1 मीरा और आंडाल की भक्ति भावना की तुलना

6.4.2 वेदनानुभूति बनाम प्रेमानुभूति

6.5 गीतिकाव्य धारा

6.6 अभिव्यंजना शिल्प

6.6.1 काव्य-भाषा

6.6.2 प्रतीक योजना

6.6.3 अलंकार योजना

6.6.4 छंद-विधान

6.7 मीरा के काव्य का वाचन और व्याख्या

6.8 मूल्यांकन

6.9 सारांश

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- भक्ति-आंदोलन की सगुण भक्ति-धारा से मीरा का संबंध समझा सकेंगे;
- मीरा के व्यक्तित्व, जीवन एवं रचनाओं के बारे में बता सकेंगे;
- मीरा की भक्ति-भावना का विश्लेषण कर सकेंगे;
- गीतिकाव्य-धारा में मीरा के योगदान की चर्चा कर सकेंगे;
- मीरा काव्य के अभिव्यंजना शिल्प की विशिष्टताओं को बता सकेंगे; और
- मीरा के कुछ पदों की व्याख्या कर सकेंगे।

## 6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने भक्तिकाव्य के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है। आप जान चुके हैं कि भक्तिकाव्य की दो प्रमुख धाराएँ हैं-निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा। निर्गुण भक्तिधारा की दोनों शाखाओं ज्ञानाश्रणी और प्रेममार्गी के प्रमुख कवि कबीर और जायसी के विषय में आपने इकाई चार और पाँच में पढ़ा है। सगुण भक्ति-धारा की दो शाखाएँ हैं- कृष्ण भक्तिशाखा और राम भक्तिशाखा। इस इकाई में आप प्रमुख कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा के काव्य-सौंदर्य का अध्ययन-आस्वादन करेंगे।

## 6.2 मीराबाई का परिचय

### 6.2.1 रचनाकार-व्यक्तित्व

मीराबाई के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण दो विरोधी भावों के सामंजस्य से होता है। एक ओर तो उनमें युग और जीवन-संघर्ष की कठोरता के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर भक्तिधारा की कोमल निर्मलता को गिरधर गोपाल के प्रेम की तन्मयता, अनन्यता में उनका मन एकाकार होता दिखाई देता है। मीरा में विदग्ध प्रेमिका का प्रणय निवेदन, मधुर आकर्षण, और समर्पण का साकार स्वरूप मिलता है। यदि जीवन-संघर्ष से शक्ति पाना ही रचनाशीलता की कसौटी मानी जाय तो मीरा के व्यक्तित्व के समकक्ष हिंदी के भक्तिकाल में दूसरा व्यक्तित्व खोज निकालना कठिन है। मीरा राजसत्ता को ठुकराती हैं, पुरुष-अत्याचार को पराजित करती हैं और भक्तिपथ की घोर साधिका बन जाती हैं। यह सच है कि उन्होंने निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानियों और योगियों से भी बहुत कुछ सीखा था- पर योगवाद के दर्शन में उनकी आस्था न थी। वैष्णव भक्ति धारा के प्रवाह में अपने व्यक्तित्व को निमग्न कर लेना ही उन्हें भाता था।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

### 6.2.2 जीवन परिचय

मीरा के जीवनवृत को लेकर विद्वानों में भारी मतभेद रहा है। कुछ जनश्रुतियों का आधार लेकर इन्हें महाराणा कुंभा की पत्नी और जयमल राठौर की पुत्री कहा गया है। कर्नल टण्ड ने मीराबाई को विद्यापति का समकालीन माना है। सर्वप्रथम मीरा को विद्यापति का समकालीन मानने का मत डॉ. ग्रियर्सन ने व्यक्त किया था। किन्तु गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने इस मत का खण्डन किया है। इधर की खोजों से भी विद्वानों ने सिद्ध किया है कि मीरा को विद्यापति का समकालीन मानना उचित नहीं है। इसी प्रकार उन्हें जयमल राठौर की पुत्री भी नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता यह है कि जयमल मीरा के पिता न होकर चचेरे भाई थे। मीरा के पिता का नाम रत्नसिंह था और वे उन्हीं की इकलौती पुत्री थीं। इस आधार से अनुमान लगाए गया है कि मीराबाई का जन्म सन् 1498 ई. के आसपास हुआ होगा। कुछ ऐसे भी विद्वान है जो मीरा का जन्म 1504 ई. मानते हैं। किन्तु इस मत को अधिक समर्थन नहीं मिला है।

मीरा का जन्म स्थान जोधपुर से 35 मील दूर कुड़की नामक गाँव है। मीरा अपने पदों में कई बार 'मेड़तणी' होने का उल्लेख करती हैं। यह भी लोक प्रचलित मत है कि मीरा का बचपन से ही 'गिरधर गोपाल' के प्रति विशेष अनुराग था। एक साधु से प्राप्त कृष्ण की मूर्ति को वे अपने साथ ससुराल ले गई थीं- इस घटना से संबंधित अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। कुछ भी हो मीरा के व्यक्तित्व पर उनके पितामह रावदूदा की गहरी छाप पड़ी। मीरा की माता का बचपन में देहांत हो जाने के कारण और पिता का युद्ध में व्यस्त रहने के कारण पालन-पोषण ठीक से न हो सका। वे रावदूदा के पास कुड़की से मेड़ता लाईं

गईं और उनका विवाह बाल्यावस्था में ही महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ सन् 1516 ईं में हुआ। विवाहोपरांत वे अपनी ससुराल मेवाड़ गई। थोड़े ही समय के बाद उनके पति का देहांत हो गया। इस प्रकार मीरा अपनी युवावस्था में ही विधवा हो गई। पति के न रहने पर मीरा ने गिरधरनागर की ओर एक निष्ठभाव से चित्त को लगा दिया। साधु संतों की संगति की ओर झुक गईं। राजमहल त्याग कर मंदिरों में गिरधर की मूर्ति के आगे तन्मयभाव से नृत्य करने का उल्लेख भी कई पदों में मिलता है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि मीरा का तुलसीदास से पत्र-व्यवहार हुआ था और तुलसी ने 'जाके प्रिय न राम वैदेहीं' जैसा पद उन्हीं को सांत्वना देने के लिए लिखा था। किंतु समय के हिसाब से यह पत्र-व्यवहार असंभव है। यह मान्यता है कि मीरा राजस्थान छोड़कर वृंदावन में भी रही थीं और जीवगोस्वामी से भेंट हुई थी। कहते हैं कि जीवगोस्वामी का दंभ उन्होंने यह कहकर तोड़ा था कि ब्रज में एक मात्र पुरुष कृष्ण हैं- शेष सभी स्त्रियाँ हैं। किंवदंती प्रसिद्ध है कि वृंदावन में चैतन्य संप्रदाय के जीवगोस्वामी रहा करते थे एवं वहाँ के संत समाज में उनकी बड़ी ख्याति थी। मीरा उनसे मिलने गई तो उन्होंने पहले तो मिलना स्वीकार नहीं किया। मीरा ने इस अवसर पर कहा- 'मैं तो अब तक समझती थी कि वृंदावन में भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग गोपी या स्त्री हैं, पर मुझे अब ज्ञात हुआ है कि भगवान के अतिरिक्त अपने का पुरुष समझने वाले यहाँ पर और भी विद्यमान हैं।' इस कथन से जीवगोस्वामी जी अत्यंत प्रभावित हुए और प्रेमावेश में नंगे पांव मीरा से मिलने भाग कर बाहर आये। मीरा उनके साथ रूकीं तथा सत्संग किया। किंतु कुछ समय बाद ही वृंदावन त्यागकर मीरा द्वारिका चली गई।

## 6.2.3 मीराबाई की रचनाएँ

मीराबाई के नाम से कुल सात-आठ कृतियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें 'मीराबाई की पदावली' को छोड़कर शेष सभी कृतियाँ अन्य कवियों द्वारा ही लिखी मानी जाती हैं। जिन कृतियों का भ्रमवष मीरा के नाम से संबंध जोड़ा जाता है- वे हैं- 'नरसी जरी रो माहेरो, 'गीतगोविंद की टीका, 'रागगोविंद, 'सोरठ के पद, 'मीराबाई का मलार, गर्वागीत, राग-विहाग और फुटकल पद'।

मीराबाई की एकमात्र प्रामाणिक और उल्लेखनीय कृति 'पदावली' है। इसके, विद्वानों ने अनेक संशोधित सम्पादित संस्करण निकाले हैं। इनमें 'मीराबाई के भजन' लखनऊ 1898 ई. नवल किशोर प्रेस, 'मीराबाई की शब्दावली' बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद 1910 ई0 'मीराबाई की पदावली' साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1932 ई. 'मीराबाई की प्रेम साधना' अजंता प्रेस पटना 1947 ई. 'मीरा स्मृतिग्रंथ' बंगीय परिषद् कलकत्ता 1950 ई. 'मीरा बृहद पद संग्रह' लोक सेवक प्रकाशन, काशी और 'मीरा सुधा सिंधु' मीरा प्रकाशन समिति, थीलवाड़ा, राजस्थान 1957 ई. प्रमुख हैं। मीरा के पदों में अन्य संतो के पद भी मिल गए हैं। ऐसी स्थिति के कारण मीरा के मूल पदों को छाँटकर उनका प्रामाणिक पाठ तैयार करना सरल कार्य नहीं है। यहाँ पर 'मीराबाई की पदावली' पर थोड़ा विचार करना अपेक्षित है।

### मीराबाई की पदावली

वास्तविकता यह है कि मीराबाई की प्रामाणिक रचनाएँ उनके पद ही हैं। इन पदों की संख्या 25 से लेकर 500 तक घोषणा की गई है। मीरा के पदो के आज लगभग पचास संग्रह मौजूद हैं। परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संकलित-संपादित में कुल 202 पद दिए गए हैं। इन सभी पदों में मीरा का भक्त हृदय मधुराभक्ति रस की भावना से छलकता मिलता है। मीरा (प्रकृति) कृष्ण (पुरुष) के सामने आत्म समर्पण का भाव लेकर उपस्थिति मिलती हैं। मीरा के जीवन-संघर्षों का इन पदों में जगह-जगह वर्णन मिलता है। गिरधर को मीरा ने सर्वत्र 'कांता भाव' से देखा है और उनका हृदय विरह में लोक की सीमाओं का स्वच्छन्द

रूप से अतिक्रमण करता है। इन पदों पर विभिन्न संत-सम्प्रदाओं का प्रभाव भी साफ दिखाई देता है। दक्षिण भारत की भक्त कवयित्री आंडाल (आठवीं शताब्दी) की भांति मीरा में कृष्ण के प्रति अखण्ड अनुरक्ति का भाव मिलता है। वैष्णव रस की पद परम्परा में आंडाल की भांति मीरा का नाम भी प्रातः स्मरणीय कहा जा सकता है।

**बोध प्रश्न**

1 क) मीराबाई के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण किन दो विरोधी भावों के मेल से हुआ ?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

ख) मीराबाई को किस सम्प्रदाय के लोगों ने अपने सम्प्रदाय में शामिल करना चाहा था और मीरा की इस पर क्या प्रतिक्रिया थी?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

ग) मीरा ने जीवगोस्वामी का दम्भ किस तरह तोड़ा ?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

घ) मीरा को जहर पिलाने की किंवदंती की चर्चा चार पंक्तियों में कीजिए ?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 6.3 विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव

मीरा का सम्पूर्ण सृजन सम्प्रदायवाद की छाप से मुक्त है लकिन अपने युग की विचारधाराओं से वे बेखबर नहीं है। यह प्रश्न विवाद का विषय रहा है कि मीरा किस सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थीं। मीरा पर निर्गुण-सगुण सम्प्रदायों के प्रभाव एक साथ दिखाई देते हैं- पर वे किसी से भी बद्ध नहीं है। उनपर हठयोग का असर दिखाई देता है-पर गोरखनाथ के दर्शन से वे दूर हैं। मीरा में हठयोग का सीधा प्रभाव नहीं मिलता। केवल 'जोगी और 'जोगिन' जैसे शब्दों का ही प्रयोग पाया जाता है। जैसे :

जोगी मत जा, मत जा पाई परू मैं तेरी चेरी हो।

एक स्थान पर मीरां जोगिन बनने को भी तैयार है

तेरे खातिर जोगण हूँगी करवट लूँगी कासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी।

योगियों के घ्यानयोग से मीरा परिचित हैं- यथा

तेरो मरम नहि पायो रे जोगी।
आसन मारि-गुफा में बैठी, ध्यान हरी को लगायो।

योगासन की मुद्रा में गुफा ध्यान करने का संकेत नाथ-संप्रदाय का प्रभाव है।

संत शक्ति से मीरा ने कुछ विधानों को माना है और कुछ का निषेध किया है। उदारता, शील, धैर्य, क्षमा आदि विधेय कर्म हैं और क्रोध, अहंकार, काम, लोभ आदि निषिद्धकर्म। यथा-

रामनाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सत्संग बैठ नित हरि चरचा सुन लीजै।
काम, क्रोध, मद, लोभ मोह कूँ, बहा चित से दीजे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर ताही के रंग भीजै।

अर्थात् मन तूं राम रस का पान कर और बुरी संगति को छोड़कर सत्संग में प्रवृत हो। काम, क्रोध आदि विकारों का नाश करने के लिए हरि की चर्चा आवश्यक है- वही इन बुराइयों से बचा सकता है। चित्त यदि भगवान के आनंद में -रस में मग्न हो जाय- तो जीवन धन्य हो सकता है। इसीलिए मीरा गिरधर नागर अर्थात् लोकरक्षक ब्रहम की शरण में गई है।

संतों की भांति मीरा सत गुरु महिमा का बखान करती हैं। आत्मा और परमात्मा के अद्वैत की भावना भी उन्हें मान्य हैं। वे कहती हैं कि आत्मा परमात्मा में ऐसे ही अंतर नहीं है- जैसे सूर्य और धूप में अंतर नहीं है। मीरा को और कोई नहीं भाता है वे केवल सुंदर श्याम की रट में मग्न हैं-

तुम बिच हम बिच अंतर नहीं, जैसे सूरज धामा।
मीरा के मन अवर न भावै, चाहे सुंदर श्यामा।

संत भाव से मीरा ने जगह-जगह अपने पदों में संसार के चमकीले वैभव की असारता का संकेत दिया है- यथा-

भज मन चरण कँवल अवणासी।
तेजाई दीसाँ धरणा गगन माँ, तेताई उठ जासी।
तीरथ बरतां ग्यान कथंता, कहा लिया करवट कासी।
या देही को गरब करणा, माटी माँ मिल जासी।
यो संसार चहर री बाजी, सांझ पडयां उठ जासी।
कहा भयां या भावा पहरयां, घर तज लयां सन्यासी।
जोगी होयां जुगत णां जाणा, उलट जन्म फिर फाँसी।
अरज करा अबला कर जोरया, श्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, कात्याँ म्हारो गाँसी।

मीरा के इस पद का अर्थ है कि हे मन। उस अविनाशी कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण कर। ब्रह्म के चरणों की महिमा अपार है- वे ही रक्षा करेंगे। इस धरती और आसमान के बीच जो कुछ दिखाई देता है वह सब नष्ट हो जाएगा। तीर्थ यात्रा, व्रत, ज्ञान की बातें,

काशी निवास से स्वर्ग आदि सभी बातें, झूठी हैं। इस शरीर का घमण्ड नहीं करना चाहिए- शरीर तो नाशवान है। मिट्टी में मिल जाएगा। यह संसार चिड़ियों का खेल है जो संध्याकाल में खत्म हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधुओं के वस्त्र या भगवा वस्त्र पहनने से क्या लाभ ? और गृह त्यागकर सन्यासी होने में भी क्या अर्थ ? यदि योगी होकर मुक्ति को नहीं पाया तो सब कुछ व्यर्थ है। केवल दिखावा करने से आवागमन की फाँसी समाप्त नहीं होती है। मीरा-हाथ जोड़कर विनय कर रही है कि गिरधर नागर अर्थात् लोकरक्षक कृष्ण! मेरी सांसारिक बाधाओं को नष्ट कर दीजिए। इस पद में संत मत की सभी विशेषताएँ एक साथ दिखाई देती हैं। यह संत संगति का मीरा पर सीधा प्रभाव है।

संत कवि कबीर, दादू आदि बाहरी आडंबरों का कठोरता से खंडन करते रहे हैं। यह संत स्वभाव मीरा में भी मौजूद है पर वे कुछ प्रवृत्तियों की घोर निंदा करने में चूक नहीं करती हैं। मीरा की भक्ति में हृदय का वेग अधिक है- यह उनके नारी-मन का एक पक्ष भी है। वैष्णव-संप्रदायों के बाल-लीला, रामलीला, नागलील वर्णन भी मीरा के पदों में मिलते हैं। सच बात यह है कि वैष्णवभाव चिंतन का यह पक्ष मीरा का संतोष देता है कि पूर्ण ब्रहम् पूर्णावतार कृष्ण वृंदावन में नित्य लीला करते हैं। राधा-भाव से मीरा कृष्ण को अपनी गलियों में आते पाती हैं-

आवत मोरी गलियन में गिर धारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी।

## 6.4 भक्ति-भावना

भारतीय परंपरा में भक्ति को प्रेमरूप एवं अमृतस्वरूप कहा गया है। इसी प्रेमा-भक्ति की निष्ठा को लेकर मीरा भक्तिकाव्य में उभरती हैं। मीरा का सीधा संबंध किसी वैष्णव-सम्प्रदाय से नहीं रहा- पर गिरधरनागर, वृंदावन बिहारी को अपना आराध्य मानकर उन्होंने भक्ति की है। विशेष बात यह भी है कि मीरा में अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भांति भक्त एवं कवि दोनों का मेल दिखाई देता है। किन्तु उनका कवि रूप उनके भक्त के रूप के सामने कम उभर पाया है।

मीरा की भक्ति में भगवान के प्रति विनय की भावना प्रबल है। घर-परिवार के लोगों के उपालम्भ, व्यंग्य, कष्ट, मीरा को और ताकत देते हैं। मीरा की भक्ति में अबला की दयनीयता नहीं है- झेलने का साहस है। मीरा की भक्ति भावना में बचपन से ही जिस माधुर्यभाव के बीज थे- उनका अंकुरण ही आगे चलकर हुआ। विवाह के बाद मीरा ने अपने पति भोजराज को नटवर कृष्ण के रूप में ही देखा और विधवा हो जाने पर तो कृष्ण के विरह में वे निरंतर बेचैन रही हैं। साथ ही गोपीभाव या ब्रज गोपियों के भक्ति-भाव को ही मीरा ने अपना आदर्श माना। फलतः उनके पदों में माधुर्य भाव की भक्ति का साकार सागर उमड़ पड़ा। कृष्णप्रेम, कृष्ण सौंदर्य, कृष्ण लीला आदि विषयों को अपने पदों में प्रधानता देकर मीरा ने मधुर-रस और मधुरभक्ति की मनोरम व्यंजना की है। उन्होंने गिरधर या लोकरक्षक ब्रहम को अपने पति (रक्षक) के रूप में देखा :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट, मेरी पति सोई।

मीरा में हृदय की इतनी अधिक विशालता है कि वे राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं मानती हैं। राम का रत्न पाकर तो मीरा का भक्त मन सब कुछ पा जाने का अनुभव करता है। यथा;

पायो जी मैंने रामरतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु किरपा करि अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सबै खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो।
सत की नाग खेवाहिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख-हरख जस गायो।।

इस पद का भाव है कि हमें रामरूपी रत्न मिल गया है। यह बहुमूल्य रत्न गुरु ने कृपा करके दिया है। यह वह वैभव है-जिसे मैंने हर जन्म में पाना चाहा था और वह अब मिल गया है। यह सम्पत्ति प्राप्त कर संसार के सब कष्ट कट गए हैं। यह ऐसी पूँजी है जो खर्च करने पर कम न होकर बढ़ती है। इसे चोर चुरा नहीं सकता- बल्कि प्रतिदिन सवाई होती रहती है। सत्य की मेरी इस नाव का खेवन भगवान है। इसलिए मैं भव सागर पार हो गई हूँ। मेरे स्वामी वे गिरधर हैं जो इन्द्र जैसे तानाशाह का गर्व चूर करते हुए सभी जीवों की रक्षा करते हैं। मैं इसी विश्वास मैं उनके गुणगान करती हुई थकती नहीं हूँ।

मीरा का 'जोगी' ब्रह्म गगन मण्डल में रहता है- मुक्त विचरता है। किन्तु मीरा को ब्रह्म का सगुण-साकार रूप ही ज्यादा भाता है। बल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों की कीर्तन-भजन पद्धति का रंग मीरा पर पूरा चढ़ा हुआ है। मीरा अच्छी तरह जानती है कि इष्ट या आराध्य के प्रति श्रद्धा मिश्रित अनुराग ही भक्ति है। भक्ति के तीन उपादान हैं- भक्त, भावना और भक्ति। भक्त आश्रय है- भगवान आलंबन और भावना दोनों के बीच संबंध शक्ति है। भक्त अपने ईश्वर को दास्य, वात्सल्य, सखा दाम्पत्य आदि भावों से भजता है। मीरा नवधा-भक्ति की ओर जाती हैं- पर उनका मन रागानुगा, भक्ति या माधुर्य भाव की भक्ति में ही अधिक आनंद पाता है। श्रद्धा, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास, सखा और आत्मनिवेदन भाव की भक्ति को नवधा भक्ति कहते हैं- इस भक्ति के सभी गुण प्रायः मीरा में मिल जाते हैं। मीरा का भक्ति भाव गोपी भाव का है। दक्षिण भारत की भक्तिन आंडाल में कृष्ण भक्ति भाव की मीरा से गहरी समानता है। कहा जाता है कि मीरा अपने को ललिता नाम की गोपी का अवतार भी समझती थीं। ध्यान रखना होगा कि मीरा में माधुर्य भक्ति का पोषण दास्य-भक्ति में प्राप्त विनय-निवेदन आदि भाव में से हुआ है। पर सूर, तुलसी की भाँति उन्होंने दीनता के भाव को नहीं अपनाया है। वे अजामिल, गणिका, सदना, कसाई आदि भक्तों का संकेत भर कराती हैं दास्य-भाव में रमती नहीं है। मीरा की भक्ति-भावना में दाम्पत्य प्रेम की स्थापना दृढ़ता से मिलती है। प्रेम के विविध रूपों में पति-पत्नी भाव का प्रेम अधिक स्थिर होता है। पति-पत्नी भाव की यह प्रीति ही मधुर रस का आधार है। मीरा के भक्ति-भाव की मूल धुरी में प्रेम का समर्पण है :

मण थे परस हरि के चरण।। टेक।।
सुभग सीतल कँवल कोमल जगत ज्वाला हरण।।
इण चरण प्रहलाद परस्याँ, इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटल करस्याँ, सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रहमाण्ड भेटयाँ, नरवसिखाँ सिरी भरण।
इण चरण कालियाँ नाथ्या, गोपलीला, करण।
इण चरण गोवरधन धारयाँ, गरब मधवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारा तरण।

इस पद का भावार्थ यह है कि हे मन। तू निरंतर कष्टों का हरण करने वाले ब्रहम के चरणों का स्पर्श कर। विष्णु के इन चरणों की महिमा अनंत है। ये चरण सुंदर शीतल तथा कमल की तरह कोमल हैं और संसार के तापों से मुक्ति देते हैं इन चरणों का स्पर्श करके ही

भक्त प्रहलाद को इन्द्र के समान ऊँचा पद प्राप्त हुआ। इन चरणों की शक्ति ने ही भक्त ध्रुव की भक्ति को अमरता प्रदान की। भगवान के चरण अनाथों को शरण देने वाले हैं। इन्हीं चरणों ने संसार की सृष्टि की है एवं उसे शोभा श्री दी है। इन चरणों ने ही काली नाग को वश में करके जन-मन को भय मुक्त किया है। यही चरण गोपियों के साथ रास लीला करते हैं- यही चरण तानाशाहों के गर्व को चूर करने के लिए गोवर्धन पर्वत उंगली पर उठा लेते हैं। यह चरण ही भक्त के लिए नौका हैं- इन्हीं चरणों की दासता में जीवन है।

मीरा की भक्ति में विश्वास का स्वर पूरी तरह है। कहीं भी उनके मन में संशय या द्वन्द्व नहीं है। यह भक्तिभावना कठिन से कठिन समय में मानव को धैर्य का संदेश देती है।

### 6.4.1 मीरा और आंडाल की भक्ति-भावना की तुलना

मीरा और आंडाल दोनों ही कृष्ण भक्त कवयित्रियाँ हैं। दक्षिण भारत की आलवार भक्ति-धारा का कोमल प्रवाह आंडाल (शताब्दी) के हृदय से प्रवाहित होता है और उत्तरी भारत की भक्ति-धारा को मीरा रस सिक्त कर देती हैं। दोनों ही कृष्ण के प्रेम-सौंदर्य संसार में एकाकार हो गई हैं। मीरा के गिरधर नागर और आंडाल के 'रंगनाथ' छबीले मुरलीधर कृष्ण ही हैं। दोनों ही अपार्थिव आलौकिक विराट प्रेम भूमि पर खड़ी है और दोनों ही 'गोपी-भाव' से माधुर्य-भक्ति में तल्लीन हैं। दोनों की तन्मयता ने गीति परम्परा से भारतीय भक्ति साहित्य को समृद्ध किया है।

आंडाल की विचारधारा पर वैष्णव चिंतन की गहरी छाप है और मीरा पर भी। फिर मीरा के आविर्भावकाल तक रामानुजाचार्य की वैष्णव विचारधारा का प्रसार हो चुका था। आंडाल के पदों में (तिरूप्पावै संग्रह में) मीरा की भाँति ही दास्य-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। यही दास्यभाव दोनों में आत्मदान प्रेरित एकाग्रता को जन्म देता है। दोनों ही कृष्ण लीला के रस को मोक्ष के रस से अधिक महत्वपूर्ण मानती हैं। आंडाल की भावना तो वृंदावन में लता-गुल्म बनने की है। वे गोपियों के चरणों की रौंदी हुई धूल बनने के लिए भी प्रार्थना करती हैं। मीरा और आंडाल के पदों का तात्विक विश्लेषण किया जाये तो हम दोनों में प्रेम की अटूट केन्द्रीयता और आनंद भाव की तन्मय शक्ति पाते हैं। भक्ति का प्रपत्ति मार्ग दोनों ने अपनाया है। प्रश्न उठता है कि प्रपत्ति मार्ग क्या है ? आत्मनिवेदन को ही प्रपत्ति कहते हैं। भक्ति-मार्ग में इस शब्द का प्रयोग शरणागति के अर्थ में होता है। समस्त वैभव का परित्याग करके भगवान की शरण में जाना ही प्रपत्ति है। इसके लक्षण हैं-भगवान के गुणों का वर्णन, पूर्ण समर्पण, दीनता के भाव से स्तुति, भगवान के रक्षक रूप पर दृढ़ विश्वास। मीरा और आंडाल में इन सभी भावनाओं के एक समान लक्षण मिलते हैं संक्षेप में, कह सकते हैं कि मीरा तथा आंडाल में अद्भुत समानताएँ हैं और दोनों ही भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक शक्ति की अखंडता को सामने लाती हैं।

### 6.4.2 वेदनानुभूति बनाम प्रेमानुभूति

मीरा की प्रेमानुभूति उनके भक्तिभाव का ही एक प्रबल रूप है। लेकिन यहाँ स्पष्ट रूप से यह जान लेना भी आवश्यक है- कि मीरा का प्रेम-अनुभव लौकिक और अलौकिक दोनों तरह के प्रभाव लिए हुए हैं। यह प्रेम कहीं भी वासना का पर्याय नहीं है इसमें, आत्मा-परमात्मा के मिलन का रहस्यवाद है। भावना के क्षेत्र की रहस्य साधना मीरा के गोपी भाव का एक अपना ही लोक है। कृष्ण के अनेक रूपों के दर्शन मीरा बराबर करती हैं। भागवत धर्म में भक्त का जो रूप प्रकट होता है-उसी रूप में विरहिणी मीरा दिखाई देती हैं। मीरा कहीं तो कृष्ण के प्रेम की चातकी हैं, कहीं विरह कोकिला, कहीं होली खेलने को व्याकुल गोपी, कहीं प्रेमोन्माद में नृत्य करती हुई प्रेयसी। मीरा का प्रेम इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय का स्पर्श करता है। सूफी प्रेम का दर्द भी कहीं-कहीं झलकता मिलता है।

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै को जिण लाइं होय।

मीरा के घायल हृदय में प्रेम का घाव गहरा है। इतना गहरा घाव न कबीर में है, न सूर में है, न तुलसी में। प्रेमघाव से घायल मीरा चिर सुहागिनी हैं प्रियतम की प्रतीक्षा में पूरी रात जाग कर व्यतीत कर देती हैं- कृष्ण के बिना 'सखी मेरी नींद नसाणी हो' तक ही स्थिति नहीं है- उनसे आगे हैं-यथा :

हेरी महासूँ हरि बिनि रहस्यो न जाय।। टेक ।।
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रहया रिसाय।
पहरों भी राख्यो, चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराशी सौ क्यूं छोड़ी-जाय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अवरून आवै म्हारीदाय।।

भावार्थ यह है कि सखि में कृष्ण के बिना नहीं रह सकती। कृष्ण प्रेम की दीवानी देखकर सास लड़ती है, ननद खिजाती है, राणा क्रोध करता है, तालों में बंद करवा देता है, चौकी बिठाता है पहरा लगवाता है। पर कुछ भी हो पुरानी प्रीत टूट नहीं सकती है। मुझे तो केवल कृष्ण चाहिए और कोई नहीं। इस प्रकार यह पद अनन्य प्रेम भाव का है।

**बोध प्रश्न 2**

क) मीरा पर किन-किन सम्प्रदायों का प्रभाव है ? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

ख) मीराबाई की भक्ति-भावना पर अपने विचार दस पंक्तियों में लिखिए ?

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

ग) मीरा तथा आंडाल की तीन समानताएँ बताइए ?

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

घ) सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाकर उत्तर दीजिए ? मीरा की भक्ति में

| | |
|---|---|
| तमन्यता है | ( ) |
| अक्खड़ता है | ( ) |
| नीरसता है | ( ) |
| वेदना है | ( ) |

## 6.5 गीतिकाव्य-धारा

अनादिकाल से मनुष्य सुख-दुःख के चरम क्षणों की अभिव्यक्ति गीतों में करता आया है। यदि आज हम गीतिकाव्य को परिभाषित करना चाहते हैं तो कहते हैं कि हृदय के प्रबलतम भावों की प्रबलतम सहज अभिव्यक्ति का नाम गीत है। जाहिर है कि गीत में सहज आत्माभिव्यक्ति, प्रबल वैयक्तिक अनुभव, संगीतात्मकता, भावस्फूर्त शब्द और शैली जैसे तत्व मिले रहते हैं। मूलतः गीत मानवीय वृत्तियों को सहज स्थिति के साथ अभिव्यक्ति देता है। फलतः उसमें हृदय का सौंदर्य, आंतरिक भावावेग की तरलता, निश्छलता और लयात्मक गति रहती है। आज चाहे गेयता गीतिकाव्य का लक्षण न माना जाए पर हिंदी के मध्यकाल में गेयता गीत का अनिवार्य धर्म था। विद्यापति के पद, सिद्धों नाथों के चर्या गीत, कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे संत भक्तकवियों के गीतों की गेयता शक्ति से हम सभी परिचित हैं। अन्य काव्यरूपों से गीतिकाव्य की एक अलग पहचान का रूप है- उसका अन्तर्मुखी भावपरक दृष्टिकोण। गीतिकार एक सीमित दायरे में वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ हो जाता है। इस दृष्टि से गीत कवि की निजी भावनाओं का गिने-चुने शब्दों में प्रकाशन है। गीत में मुक्त भाव और स्वच्छंद कल्पना लयात्मक संगीत में फूट पड़ती है। यही कारण है कि गीतिकाव्य का रचनाकार अपनी भावानुकूल लयों में अपनी भावनाओं को व्यक्त करता हैं गीतिकाव्य में आत्माभिव्यक्ति एवं वैयक्तिकता से तात्पर्य है-तीव्र भावावेग का उठना। गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ हैं- (1) आत्माभिव्यक्ति (2) गेयता या संगीतात्मकता (3) भाव का तीव्र-प्रभाव एवं अन्विति (4) सहज प्रेरणा (5) कोमल शिल्प विधान (6) आकार की संक्षिप्तता।

गीतों की यह परम्परा लंबे काल से अबाध चली आ रही थी। बौद्ध सिद्धों के चर्या-गीतों, नाथों के गीत-पदों में यही परम्परा दिखाई देती है। सिद्धों के गीतों में रागों की अव्यवस्था और विषय की कठिनता के कारण वे जनता के कंठहार न बन सके। साथ ही सिद्धों के गीतों का साम्प्रदायिक रंग भी प्रचार-प्रसार में बाधा थी। लेकिन मीरा ने साम्प्रदायिक रंग से मुक्त होकर सरल-सहज लोक की भाषा में अपने हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त किया। इसी ढंग की आत्माभिव्यक्ति ने उनके गीतों को सरलता, रमणीयता, प्रभावोत्पादकता तथा सहज लय-योजना प्रदान की है। मीरा के दुःख सुख के भाव-भक्तिभावना से ओत-प्रोत होकर आए जिनमें भक्त-हृदय का दिव्य संगीत भी गूँज रहा था।

पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में विद्यापति, नरसी मेहता, चण्डीदास की रचनाएँ जिस गीत-पद्धति पर हुई थी- मीरा ने उसी का लोक विस्तार किया है। यही पद्धति मीरा के समकालीन अथवा परवर्ती भक्त सूरदास, नंददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास गदाधर भट, हरिदास, हितहरिवंश आदि में विकसित होती रही। जैसे मीरा के प्रत्येक पद में आराध्य देव कृष्ण के नाम, रूप, गुण, चरण, लीला आदि का वर्णन रहता है- वैसे ही अन्य वैष्णव भक्तों के पदों में भी।

गीतिकाव्य की इस कसौटी पर यदि हम मीरा के गीतों को कसते हैं तो कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से विद्यमान गीत परम्परा का मीरा ने सफल उपयोग किया है। प्राचीन लोकगीतों की शैली को मीरा ने अपने पदों में सार्थक ढंग से अपनाया है। जैसे 'हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' गीत वस्तुतः गीतिकाव्य का वह सर्वश्रेष्ठ रूप है जो संस्कृत में जयदेव के ''गीतगोविंद'' में मिलता है- जिसमें एक ओर रागों का प्रबल विधान है- तो दूसरी ओर राधा कृष्ण लीला का मधुर गान। यही परम्परा समय के साथ मैथिल कोकिल विद्यापति में फूटती है और मानव-मन सौंदर्य से भर जाता है। यही गीतिकाव्य धारा हिंदी के भक्तिकाल-निर्गुण और सगुण कवियों में वेग से प्रवाहित होती है। आगे चलकर वैष्णव-भक्त संगीत की राम और कृष्ण भक्ति धारा इस गीति परम्परा में प्रेम, आनंद और माधुर्य का सम्मिश्रण है। मीरा इसी युग युगांतर से चली हुई परम्परा की उत्तराधिकारी बनी हैं और इसी परम्परा को उनसे नवजीवन प्राप्त हुआ है। वैष्णव भाव की पदपरम्परा का जो रूप दक्षिण भारत के आलवार भक्तों में - विशेषकर भक्तिन आंडाल में मिलता है- कुछ-कुछ वैसा ही भाव जगत मीरां के पदों का भी है। आत्माभिव्यक्ति का वेग और संगीतात्मकता दोनों ही आंडाल एवं मीरा के गीतों में दिखाई देती है। मीरा का अनुभूति-पक्ष बहुत सशक्त है। मीरा के गीतों से सूर के गीतों की तुलना करते हैं तो कहा जा सकता है कि मीरा के गीतों में हृदय के आवेगों की तीव्रता सूर से ज्यादा है मीरा की वैयक्तिक वेदना में सूर की गोपियों की वेदना से कसक, तड़प और दर्द अधिक है। सच्चाई यह है कि हिंदी की वैष्णव भावधारा का कोई भी हिंदी कवि मीरा के गीतिकाव्य की सहज आत्माभिव्यक्ति और तरल संगीतात्मकता का मुकाबला नहीं कर सकता है।

मीरा के सभी पद गीतों के रूप में है और अधिकांश एक टेक देकर (चार से दस) चरणों से जोड़ दिए गए हैं। यह पूरा का पूरा पद शास्त्रीय संगीत की राग रागनियों के अंतर्गत रखा जाता है। मीरा के समय तक रामानन्द, कबीर, नरसी मेहता; चैतन्य महाप्रभु तथा निर्गुण-सगुण भक्तों की राग-रागनियों का एक विराट संसार सामने आ चुका था। इस परिवेश का प्रभाव भी मीरा पर पड़ा होगा। लोक-संगीत की छाप लेकर कबीर, सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णदास, रैदास, दादू सभी के पद आ रहे थे। फलतः गायन, वादन, नृत्य, भाव-प्रदर्शन चारों का संगीत-समुच्चय एक धारा के रूप में मीरा की पदावली में प्रवाहित है-

गायन- माई म्हां गोविंद के गुण गाणा।
वादन- नृत्य ताल पर बावेण मिरदंग बाजां, साधां आगे नाचां।
नृत्य- पग बांध घुंघरयां बाजा रही।

भाव- प्रदर्शन i) हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जानै कोय।
ii) चलो रे माणा गंगा-जमुना तीर।

मीरा के गीतों में मुख्य विषय उनका अपना जीवन है। इन गीतों पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है और घटनाओं की तड़प का दर्द भी अंकित है। गिरधर की छवि ही मीरा के भौतिक जीवन के कष्टों का हरण करती हैं आज भी इन गीतों में मानव को शांति देने की शक्ति है।

**बोध प्रश्न 3**

क) गीतिकाव्य की परिभाषा तथा विशेषताएँ दस पंक्तियों में बताइए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

ख) अन्य काव्यरूपों से गीतिकाव्य की पहचान का अलग कारण चार पंक्तियों में लिखिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

ग) मीरा ने अपने गीतों में किस शैली का उपयोग किया है- सही (✓) तथा गलत (×) का निशान लगाइए।

1) कला गीतों की शैली

2) लोक गीतों की शैली

3) दरबारी प्रेम गीतों की शैली

घ) मीरा के गीतों में वह ऐसी कौन सी विशेषता है जो उन्हें कबीर, सूर, आदि भक्त कवियों से ज्यादा सफल गीतिकार सिद्ध करती है। दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 6.6 अभिव्यंजना शिल्प

मीराबाई के पदों में अनुभूति और अभिव्यंजना के तत्वों का एकाकार रूप ऐसा है कि इनके बीच पार्थक्य की रेखा आसानी से नहीं खींची जा सकती। मीरा के काव्य में भाव-पक्ष की प्रधानता है और कला-पक्ष उसी का सहयोगी बन कर आया है। ऐसी स्थिति के कारण मीरा ने चमत्कार प्रदर्शन वाली अभिव्यंजना को नहीं अपनाया है। कला और उसके भड़कीले रूपों से उन्हें मतलब नहीं था- वे तो आराध्य के प्रति भावना की भाषा में अपना आत्मनिवेदन कर रहीं थीं। मीरा की आत्म-विस्मृति में भक्त उभर गया है और कलाकार दब गया है। आलौकिक-अपार्थिव आलंबन कृष्ण के प्रति लौकिक या पार्थिव भावनाओं के फलस्वरूप मीरा का दृष्टिकोण रचनाकार और रहस्यवादी के दृष्टिकोणों का मिश्रण हो गया। मीरा के भक्ति भावों में रहस्य स्थायी वृत्ति नहीं है। यहाँ स्थानीय वृत्ति हैं- कृष्ण का रूप-सौंदर्य वर्णन, भजन, लीला-गान।

मीरा की रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय करना कठिन है। उनके पद वाचिक परम्परा की गेयपद्धति में रहने के कारण काव्य-भाषा की दृष्टि से बदलते रहे हैं। जैसे 'कहै कबीर सुनो भाई साधों'' को लगाकर अनेक पद लोकजीवन में बनाए जाते रहे हैं वैसे ही ''मीरां के प्रभु गिरधर नागर'' को जोड़कर भी लोक में अनेक पद बनते रहे हैं। दरअसल मीराभाव

और कबीरभाव ने जनता के हृदय में कितने सम्मान का स्थान पाया है- यह सब उसी का लोकप्रमाण है।

### 6.6.1 काव्य-भाषा

कबीर की भाँति मीराबाई की काव्यभाषा के आधार में भी कई बोली रूप मिश्रित हैं। ''मीरांबाई की पदावली'' की भूमिका (पृष्ठ 65) में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने दिखाया है कि मीरा में चार भाषा स्तरों का प्रयोग है :

**1) राजस्थानी**

थे तो पलक उघाड़ों दीनानाथ

मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।

साजनियाँ दुसमण होय बैठया, सबने लगूँ कड़ी

**2) ब्रजभाषा**

यह विधि भक्ति कैसे होय

मण की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर घोय।

**3) पंजाबी**

ही कांनां किन गुंथी जुल्फाँ कारियाँ

**4) गुजराती**

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'मध्यकालीन हिंदी काव्य-भाषा' नामक अपने शोधग्रंथ में डॉ. ग्रियर्सन का यह मत दिया है कि 'जिस प्रकार पंजाबी उत्तर पश्चिम में मध्य प्रदेश की प्रसारित भाषा का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार राजस्थानी उसके दक्षिण-पश्चिम में प्रसारित भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। इस अंतिम प्रसार कार्य में मध्य प्रदेश की भाषा राजस्थानी क्षेत्र से होती हुई गुजरात के समुद्र तट तक पहुँच गई है। यहाँ यह गुजराती का रूप धारण कर लेती है। (भाषा सर्वेक्षण-1-1- पृष्ठ 314)।

मीरा की भाषा में सर्जनात्मक क्षमता अपेक्षतया कम है। सूर या तुलसी जैसा भाषा का कुशल प्रयोग नहीं दिखाई देता। यहाँ लोकगीतों की तरह सीधी अभिव्यक्ति पर बल है, लाक्षणिक प्रयोग बीच-बीच में जहाँ-जहाँ भले ही मिल जाएँ। नारी होने के कारण मीरा की तन्मयता और विरह भावना कुछ अपने आपमें प्रमाणिकता लगती है, पर उनके पदों का भाविक गठन उतना सशक्त नहीं है। उदाहरण के लिए लोकगीत जैसे सीधे-वर्णन देखने के योग्य हैं :

1. कारी अंधियारी बिजली चमकै, बिरहिणी अति डर पायेरे।
2. गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाये रे।

यह सीधा परम्परित वर्णन है, भाषिक प्रयोग से कोई विशिष्ट अर्थक्षमता उत्पन्न नहीं होती। मीरा में भाव की तन्मयता अधिक है- पर भाषा का वैसा ही सावधान संप्रेषण नहीं है।

मीरा की मूल काव्य-भाषा का निर्णय करना इसलिए भी कठिन है कि प्रायः सभी मीरा-पदावलियों के पद मौखिक परम्परा, संदिग्ध तथा अशुद्ध हस्तलिखित गुटकों से लिए

गए हैं। भाव-भाषा के बदलाव के कारण इन पदों में ब्रज मिश्रित राजस्थानी की प्रधानता है। सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों का मत है कि मीरा की मूल भाषा तो राजस्थानी ही थी पर लोक प्रचलित होने पर उसका रूप परिवर्तित होता गया। मोतीलाल मेनारिया उसमें राजस्थानी के साथ ब्रजी और गुजराती का मिश्रण भी मानते हैं। मीरा के आज जो पदसंग्रह उपलब्ध हैं-

उनमें राजस्थानी, ब्रजी, गुजराती, पंजाबी, खड़ी बोली और पूरबी आदि कई भाषाओं का मिश्रण मिलता है।

भ्रमणशील साधुओं, कीर्त्तन-मंडलियों, भजन गायकों ने मीरा के पदों की भाषा में व्यापक परिवर्तन किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मीरा की मूल भाषा राजस्थानी है जो पश्चिमी हिंदी की एक प्रधान शाखा है। मीरा गुजरात तथा ब्रज प्रदेश में रहीं- इन प्रदेशों की भाषा का प्रभाव भी आया। साथ ही लोक में प्रचलित नाथ-पंथियों-हठयोगियों की शब्दावली भी स्वतः ही आई जैसे- 'त्रिकुटी महल' का पद में प्रयोग। संगीत और भाव प्रवाह की गति भी लोकस्पंदन लेकर आई है जिसमें लोकगीतों, लोककथाओं , लोकोक्तियों- मुहावरों का सहज ढंग से प्रयोग हुआ है- यथा

माई री म्हा लिया गोविंदा मोल।
ये कहयां छाणे म्हां का चोजड़े, लिया बजंता ढोल
ये कहचां मुहोधो म्हाँ कहयां सस्तों, लियां रीतराजां तोल।

इस एक पद में ही मोल लेना, ढोल बजाकर लेना, तराजू में तोलना आदि मुहावरों का एक साथ प्रयोग हुआ है और इन मुहावरों ने मीरा की काव्य भाषा को प्रभावशाली बनाया है।

### 6.6.2 प्रतीक योजना

मानव प्रतीक सृष्टा प्राणी हैं। वह आदि काल से ही भाषा में प्रतीकों की भावाभिव्यक्ति के लिए सृष्टि करता आया है। दार्शनिक एवं भावात्मक स्थितियों को प्रकट करने के लिए वेदों, उपनिषदों, रामायण-महाभारत, भागवत की परम्पराओं ने नए प्रतीकों का ढाँचा तैयार किया है। आलवार, नायनमार तथा अन्य भक्तों ने दक्षिण भारत में ब्रहम चिंतन के लिए सूर्य-चन्द्र के प्रतीक लिए हैं। मीरा ने कल्पना से ज्यादा यथार्थ के प्रतीक चुने हैं। ये प्रतीक धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिदृश्य के भीतरी सच या रहस्य को अभिव्यक्त करते हैं। मीरा का नारी-मन दाम्पत्य प्रेम अथवा कांता भाव के प्रतीकों से अपनी बात कहने में सुविधा महसूस करता है। मीरा प्रतीकों से ही भक्ति का मर्म प्रस्तुत करती हैं :

बड़े घर तालो लागां री, पुर बला पुन्न जगा बारी।
झीलरयां री कामण म्हारो, डाबरां कुण जावांरी।
गंगा जमणा कामणा म्हारे, म्हां जावां दयिवारी।
हेल्या मेल्या कामणा म्हारे, पेढया मिल सरदारां री।
कामदारां सूं कामणा म्हारे, जोवा म्हा दरबारां री।
काय कोयरसूं कमणा म्हारे, हीरा रो वौपारारी।
भाग हमारो जाग्या रे, रतनाकर म्हारो सीयां री।
अमूत प्यालो छाडयां रे, कुण पीवां नीरा री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मनरथ करस्यां पूरचारी।

अर्थात् बड़े घर से लगन लग गई है अवश्य ही पूर्व जन्म के पुण्य उदित हुए हैं। मेरा झील तालाब, गंगा-जमुना से अब कोई संबंध नहीं है, मैं तो (कृष्ण) सागर से मिल गई हूँ। छोटे-छोटे देवताओं की आराधना से मेरा काम नहीं चला है या उस विराट के दरबार में पहुँचने

के लिए किसी अन्य से मेल-जोल करने की जरूरत नहीं है क्योंकि मैं प्रमुख (सरदारों) अगुआ लोगों में स्थान पा चुकी हूँ। मेरा कामदारों से मतलब नहीं रहा- मैं सीधे विराट ब्रह्म (कृष्ण) के दरबार में जाती हूँ। मैं लोहे की घन पर चढ़ चुकी हूँ अब मेरा राँगे और काँच से कोई लगाव नहीं है। क्योंकि मैं तो घन से ही चकनाचूर हो जाती हूँ। अब मुझे न सोने से काम है न चाँदी से मैं तो हीरों का व्यापार करती हूँ। मेरा भाग्य उदित हो गया है कि रत्नों की राशि से मेरा प्रत्यक्ष संबंध है। ठीक बात है कि अमृत के प्याले को छोड़कर गंदला पानी भला कौन पीना पसंद करेगा। गिरधर मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करेंगे।

उपर्युक्त पूरे पद में प्रतीकों की भरमार है। 'गंगा जमुणा कामणा म्हारे' 'सोना रूपां सूं कामणा म्हारे' 'दरिया' 'चांदी' 'हीरा' आदि तमाम प्रतीकात्मक शब्द विराट ब्रह्म की अनन्य भक्ति को व्यक्त करने के लिए आये हैं। 'कोकिला' 'बादल' जोगिया' 'गिरधर' 'धूतारा जोगी' 'कंवल अविनासी' 'पपीहा' 'दादुर' 'झांझर' आदि जीवन के हर क्षेत्र से मीरा ने प्रतीक लिए हैं। इन प्रतीकों ने मीरा के भावों को व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। 'पंचरंग चोला पहराया' में रहस्यवाद के प्रतीकों की ध्वनि दिखाई देती है।

### 6.6.3 अलंकार योजना

अलंकारों का प्रधान कार्य भाव का उत्कर्ष करना, रूप, क्रिया और गुण के अनुभव को चित्ररूप में स्पष्टता से प्रस्तुत कर देना है। अलंकार काव्यशोभा का सृजन नहीं कर सकते। केवल शोभा में वृद्धि कर सकते हैं। इसलिए काव्य के बाहरी उपादान हैं- आंतरिक गुण नहीं। कवि यदि केवल चमत्कारी कला के लिए अलंकारों का प्रयोग हिंदी के रीतिकालीन कवियों की भाँति करता है- तो वे अस्वाभाविक लगते हैं। किन्तु यदि सहजरूप में अलंकार का प्रयोग होता है तो वह भाव को स्पष्टता, प्रभाव वृद्धि, बिंबात्मकता (चित्र रूप) देता है।

मीरा का ध्यान अराध्य के रूप और क्रिया पक्ष पर केन्द्रित रहा है- चमत्कार पक्ष पर उनका ध्यान न था- उनके पदों में अलंकार एकदम सहजभाव से हृदय सौंदर्य का प्रकाश लेकर आए हैं। मीरा के उपमान, अप्रस्तुत विधान का कार्य भावों की तीव्रता को व्यक्त करना है- कलात्मक शिल्प की उन्हें परवाह नहीं है। मीरा परम्परागत उपमानों के प्रयोग में अधिक सक्षम है। 'कुण्डल अलका', 'तज सखर ज्यो मकर मिल धाई', 'जैसे सूरज घामा' आदि परम्परागत उपमान हैं। अनुप्रास–शब्दालंकार मीरा में बार-बार आता है, वर्णों की आवृत्ति होने पर अनुप्रास अलंकार होता है जैसे-कुंडल।

मोर मुकुट माथ्या तिलक विराज्यां, कुंडल अलकां कारी जी।

अर्थालंकारों में मीरा को रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि बहुत प्रिय हैं- जैसे

**रूपक-**अंसुवाँ जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।

**उपमा-** ज्यूं चातक घट कू रटै, मछरी ज्यू पाणी हो।

इन उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मीरा का अलंकार-विधान उनके भावों के उत्कर्ष में सहायक रहा है।

### 6.6.4 छंद-विधान

मीरा के छंद-विधान पर चर्चा करने से पहले आपके लिए यह समझना उपयोगी होगा कि छंद क्या है या किसे कहते हैं। अक्षरों की संख्या एवं क्रम आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों में अनुशासित पद्य-रचना छंद कहलाती है। छंद शब्द का अर्थ है-रक्षित करने के साथ

प्रसन्न करना। अर्थात् छंद भाव को आकार में बाँध कर आगे बढ़ाता है। भाव की गति की व्यवस्था ही छंद मात्र का आधार है। छंद में लय, गति का विशेष प्रवाह तथा काल का बोध कराने वाली नैसर्गिक शक्ति है। वह गति, प्रवाह एवं विराम के क्रमिक संघात से जन्म लेती है तथा उसके लिए आकृति या भाव को पुनः पुनः दुहराना अनिवार्य है। मन के अव्यवस्थित भावों को व्यवस्था देने वाली लय ही शब्दबद्ध हो छंद रूप में परिणत हो जाती हैं। अतएव काव्य का अनिवार्य एवं सहज माध्यम लय और छंद ही हैं।

मीरा के पदों को देखने पर पाते हैं कि मीरा ने लोक जीवन में मौजूद छंदों का प्रयोग किया है। यही कारण है कि आज तक मीरा के नाम से प्रचलित जितने भी पद मिलते हैं- वे प्रायः पिंगल शास्त्र या छंद शास्त्र की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। एक प्रधान कारण यह भी है कि इन पदों की रचना पिंगल को दृष्टि में रख कर नहीं की गई। विशेष रूप से ये पद गायन के लिए ही रचे गए और पीछे से गायकों, वादकों, नर्तकों, भजन कीर्तन मंडिलियों ने उनमें सुविधानुसार परिवर्तन कर लिए हैं। इन छंदों के नाम सार छंद, विष्णु पद, दोहा छंद, उपमान छंद, सवैया छंद, शोभन छंद, त्राटक छंद, कुण्डल छंद तथा चान्द्रायण छंद आदि विद्वानों ने गिनाए हैं।

सार छंद का प्रयोग 'पदावली' के लगभग एक तिहाई पदों में हुआ है। यह एक मात्रिक छंद है जिसमें 16 और 12 पर विश्राम से 28 मात्राएँ होती हैं तथा अंत में दो गुरु आते हैं जैसे-

> पग घुंघुरू बांध मीरा नाची रे।
> मैं तो अपने नारायण की आपइ हो गई दासी रे।
> लोग कहें मीरा भइ बावरी, न्यात कहैं कुल नासी रे।

मीरा ने एक ही पद में एक से अधिक छंदों का एकत्र प्रयोग भी किया है किन्तु ऐसा करना पद-परम्परा में कोई दोष नहीं माना जाता। विभिन्न राग-रागनियों के प्रयोग में भी मीरा काफी स्वच्छंदता से काम लेती हैं। निष्कर्ष यह है कि मीरा की छंद-योजना गेय परम्परा के अनुकूल होने पर भी शुद्ध या दोष रहित नहीं है। मीरा और अन्य भक्तों ने इन पदों को इतनी तल्लीनता से गाया है कि छंद की ओर उनका ध्यान तक नहीं गया है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने लिखा है-मीराबाई के पदों में छंदों का कम ध्यान है। पर राग-रागनियों में रचना का रूप रहने के कारण गान भी लय मात्रा की विषमता को ठीक कर देता है। मीरा में छंदशास्त्र न देखकर उनकी उस भक्ति भावना की ओर ध्यान देना चाहिए जिसने उन्हें कृष्णकाव्य के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

**बोध प्रश्न 4**

क) मीरा की काव्य भाषा को प्रभावित करने वाली चार भाषाएँ कौन-सी हैं ?

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

ख) मीरा की मूल भाषा के निर्णय करने में कौन-सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं ?

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

ग) मीरा के पदों में किस भाषा की प्रधानता है ?

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

घ) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर कीजिए-

i) मीरा की कविता में ................................ की प्रधानता है (काल्पनिकता/यथार्थ)

ii) मीरा की कविता में ............ अधिक प्रबल है। (भाव पक्ष/कला पक्ष)

iii) मीरा का अलंकार विधान उनके ................. में सहायक रहा है।

(भावों के उत्कर्ष/काव्य में चमत्कार की सृष्टि)

ङ) मीरा के छंद विधान की विशेषताओं पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

## 6.7 मीरा के काव्य का वाचन और व्याख्या

किसी भी पद्यांश या गद्यांश की व्याख्या करने का एक खास तरीका है। संदर्भ सहित व्याख्या से तात्पर्य है कि दिए गए पद्यांश का संदर्भ और प्रसंग बताते हुए उसकी व्याख्या की जाए तथा उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष की प्रमुख विशेषताओं की और संकेत किया जाए। यहाँ हम मीरा के कुछ पद लेंगे उन पदों में आए कठिन शब्दों का अर्थ भी देंगे। दो पदों की व्याख्या हम करके-बताऐंगे शेष की व्याख्या आप स्वयं करने का अभ्यास करें।

**पद- (1) बस्यां म्हारे णेणण में नदंलाल।।टेक।।**
**मोर मुकुट मकराक्रत कुण्डल अरुण तिलक सोहाँ भाल।**
**मोहन मूरत सांवरां सूरत णेणा बणणा बिसाल।**
**अधर सुधारस मुरली राजां उर बैजंती माल।**
**मीरां प्रभु सतां सुखदायां, भक्त बछल गोपाल।**

**शब्दार्थ -** बस्यां-बसो। णेणण मां-आंखों में। मकराक्रत-मछली के आकार का। मोहण-मोह लेने वाली। बण्या-बने हुए। अधर-नीचे का ओठ। राजा-बिराजमान। बैजंती माला-घुटनों तक लंबी। मोतियों की पचरंगी माला। बछल-वत्सल।

**संदर्भ -**

कृति का नाम

रचनाकार का नाम

**प्रसंग-**

किसका कथन

रचनाकार की विशेषताएँ

मीराबाई किस प्रकार की भक्त कवि हैं

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

उनके आराध्य देव कौन हैं

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

उनकी कविता में किस पक्ष की प्रधानता है

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

**व्याख्या**

मीरा अनन्य भक्तिभाव से निवेदन कर रही हैं कि हे कृष्ण! मेरी आँखों में हमेशा निवास करो। कभी भी एक पल के लिए भी आँखों से ओट न हो। तुम्हारे रूप सौन्दर्य को बढ़ाने वाला मोर पंखों का मुकुट, कानों में मछली के आकार के कुण्डल और माथे पर लाल तिलक लगा हुआ है। तुम्हारा यह अनुपम सौन्दर्य मन को मोह लेने वाला है। तुम्हारी साँवली सलोनी देह अत्यंत कांतिशाली है और तुम्हारे नेत्रों की भंगिमा अद्‌भुत है। तुम्हारे अधर पर अमृत रस का पान करने वाली और अमृत रस का ही पान कराने वाली मुरली और हृदय पर वैजयंती माला शोभित है। मीरा कहती है कि हे प्रभु तुम संतों को सुख देने वाले हो- तुम्हारा भक्त वत्सल रूप भक्त हृदयों का अडिग विश्वास है।

**विशेष**

1. रूप सौन्दर्य के वर्णन के माध्यम से अनन्य भाव की भक्ति का संकेत है।
2. कृष्ण की यह छवि लगभग सभी कृष्ण भक्तों के काव्य में मिलती है- सूरदास, रसखान आदि में।

3. चित्रात्मक भाषा में रूप चित्रण है।

4. ब्रज भाषा मिश्रित राजस्थानी हैं।

**(2) राणा जी थे जहर दियों म्हे जाणी।।टेक।।**
**जैसे कंचन रहत अगिनि में, निकसत बाराबाणी।**
**लोक लाज कुल काण जगत की, दह बहाय जस बाणी।**
**अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला वैराणी।**
**तरकस तीर लग्यों मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।**
**सब संतन पर तन मन बारों, चरण कंवल लपराणी।**
मीरां के प्रभु राखिलई है, दासी अपनी जाणी।।

**शब्दार्थ**

म्हे-मैं। कंचन-सोना। दहत-जलता। बाराबाणी-अत्यंत दमकने वाला। कुल काण- कुल की मर्यादा। अबला-असहाय स्त्री। हियरे-हृदय में। गरब गयो-भीतर गहरे गया। सनकाणी-पागल हो गई। बारों- न्यौछावर करना।

इस पद का संदर्भ एवं प्रसंग स्वयं लिखें (पिछले पद की भाँति)

**व्याख्या**

मीरा ने अपने जीवन के कष्टों का संकेत जगह-जगह अपने पदों में दिया है। प्रस्तुत पद एक ऐसा ही ऐतिहासिक पद है। राणा जी (ससुराल की ओर से मीरा को सताने वाला राणा) तुमने जहर पिलाया है- मैं जानती हूँ। लेकिन मैं जहर पीकर भी मरूँगी नहीं। क्योंकि मैंने प्रेम का अमृत पी रखा है। मेरी कृष्ण के प्रति अनुराग भावना ऐसे ही चमक उठी है जैसे आग में तपकर सोना चमक उठता है। मैंने लोकलाज, कुल मर्यादा को स्वच्छंदभाव से चुनौती देकर ऐसे बहा दिया है जैसे पानी को। राणा तू अपने घर का परदा कर ले अर्थात् अपने परिवार की हालत को देख मैं तो बंधनों से मुक्त अबला और पागल स्त्री हूँ। मेरे ह्रदय में तो कृष्ण के तरकस से निकला प्रेम-बाण गहरा घुस गया है जिसकी चोट और कसक से मैं बेचैन हूँ। मैंने संत-जनों को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है और कृष्ण के चरण कमलों में लिपट गई हूँ। मुझे विश्वास है कि वे कृष्ण अपनी दासी मीरा की रक्षा अवश्य करेंगे।

**विशेष**

1. मीरा के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना का संकेत है-

   राणा का जहर देना और मीरा का प्रेम-मार्ग से न डिगना।

2. स्वच्छंदभाव धारा के भक्त का जीवन-दर्शन मीरा ने अपनाया था। उसकी इस पद में प्रबल अभिव्यक्ति मिलती है।

3. प्रेमानुभूति की तीव्रता-'तरकस तीर' से व्यक्त की गई है जिसमें अनुभव से बना बिंब मौजूद है।

4. दास्य भक्ति- 'चरण कमल लपटानी' से स्पष्ट है।

5. आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता।

6. राजस्थानी भाषा।

यहाँ उपर्युक्त पदों की विशेषताओं का संकेत आपको मिल गया है। इन पदों की अन्य विशेषताएँ जैसे अन्य भक्त कवियों से भाव-साम्य, संगीत-योजना, अलंकार योजना, प्रतीक और बिंब-योजना, काव्य-भाषा आदि का संकेत भी आप व्याख्या के बाद ''विशेष'' में दे सकते हैं। पाठ को ध्यान से पढ़ने पर आप में यह आत्मविश्वास उत्पन्न होगा कि आप मीरा के पदों की विशिष्टताओं को स्वयं ही बता सकेंगे।

कविता की व्याख्या करना आप सीख चुके हैं-नीचे हम दो पद दे रहे हैं जिनकी व्याख्या आप स्वयं कीजिए।

3. **हेरी म्हा दरद दिवाणी महारां दरद न जाणयाँ कोय।**
**घायल की गति घाइल जाणै, कितिणा घाण होय।**
**जौहरी की गति जौहरी जाणै, क्या जाण्या जिण खोय।**
**दरद की मारयां दर-दर ढोल्यां बैद मिलणाना कोय।**
**मीरा री प्रभु पीरमिटांगा जब बैद सांवरिया होय।।**

**शब्दार्थ** : दरद दिवाणी- विरह के दुःख से पागल। म्हारां-मेरा। गति-हालत। जिण-घायण-जिसके घाव। बैद-वैद्य। सांवरिया-कृष्ण।

**संदर्भ** : रचना का नाम

रचनाकार का नाम

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

**प्रसंग-** किसका कथन

किस से कथन

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

**व्याख्या**

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

4. **तनक हरि चितवाँ म्हारी ओर।**
**हम चितवां ये चित वो णाहरि, हिवणो बड़ो कठोर।**
**म्हारी आसा चितवनि थारी, और णा दूजां दोर।**
**ऊभ्यां ठाड़ी अरज करुँ छूँ, करतां करतां भोर।**
**मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, देस्यू प्राण अंकोर।।**

**शब्दार्थ** : चितवां-ध्यान देना, देखना। थे-तुम, आप। दोर-दौड़, स्थान। ऊभ्या ठाड़ी-आशा में खड़ी-खड़ी। भोर-प्रातः काल। अंकोर-न्यौछावर।

## 6.8 मूल्यांकन

भक्ति-साधना की तन्मयता और भक्तिरस की दृष्टि से कृष्ण भक्ति-परम्परा में मीरा का नाम अद्वितीय है। कृष्ण के अनुराग में समर्पित मीरा में भक्ति का अबाध प्रवाह है। दक्षिण भारत की भक्तिन आंडाल से मीरा के भाव-विधान की गहरी समानता है। दोनों ही कांता-भाव एवं दास्य भाव से भक्ति करती हैं।

मीरा ने राजकुल में जन्म लेकर भी सामंतवाद की रूढ़ियों को चुनौती के स्तर पर तोड़ा है। वैष्णवभाव की स्वच्छंद परम्परा में मीरा अपने को मग्न रखती हैं। वे किसी भी संप्रदाय में अपने को नहीं बाँधती। किन्तु अपने समय के सभी सम्प्रदायों का थोड़ा बहुत प्रभाव उन पर अवश्य है। पूरी लगन से मीरा ने राधाभाव या प्रेमभाव का विकास किया है। नवधाभक्ति और रागानुगा भक्ति से कृष्ण की उपासना करने वाली मीरा में आत्मसमर्पण का भाव बहुत है। वे भौतिक जगत के संघर्षों का डटकर मुकाबला करती हैं और उनसे मुक्ति पाने का उपाय भी खोजती हैं। विशेष बात यह है कि मीरा के काव्य में उनके सहज हृदय उद्‌गार हैं। उनमें कृत्रिमता नहीं है- न भाव की, न भाषा की, न प्रतीक योजना की, न अलंकार की न छंद की। उनका काव्य लोकशैली और लोक-परम्परा, संगीत और गीतिकला का समृद्ध सौन्दर्य प्रस्तुत करता है।

## 6.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि भारतीय भक्ति आंदोलन में मीरा के आगमन से नवीन चेतना का प्रसार होता है। उत्तरी भारत उनकी रससिक्त वाणी से आत्मविभोर होकर आनंदमग्न हो जाता है। मीराबाई के माध्यम से भक्ति आंदोलन की सम्भावानाओं पर विचार किया गया है।

- मीरा में कृष्ण-भक्ति के बीज बचपन से ही विद्यमान थे। अवसर पाने पर मीरा के उन्हीं भक्तसंस्कारों का विकास-परिष्कार हुआ है।
- मीरा पर सगुण-निर्गुण भक्त धाराओं का प्रभाव है पर वे किसी भी सम्प्रदाय में बद्ध कवयित्री नहीं है।
- मीरा काव्य में भाव पक्ष की प्रधानता है। उनकी अनुभूतियों में भावावेष भावतरलता तथा भावशक्ति है।

- उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है जिसमें कांताभाव को प्रधानता दी गई है।
- मीरा तथा आंडाल कृष्ण की भक्ति दास्य तथा कांता भाव से करती हैं। दोनों ही कृष्ण से अगाध प्रेम करती हैं।
- मीरा के प्रतीक-विधान की विशिष्टताओं का विश्लेषण भी कर सकते हैं।
- मीरा के काव्य भाषा, अलंकार, छंद योजना की विशेषताओं को भी आप समझा सकते है।

## 6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चतुर्वेदी - आचार्य परशुराम : मीरांबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

सुंदरम - डॉ. ना. : मीरां और आंडाल का तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

तिवारी - भगवानदास : मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीन, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद।

चतुर्वेदी - रामस्वरूप : मध्यकालीन हिंदी काव्यभाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

## 6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

क) देखिए भाग 6.2.1

ख) देखिए भाग 6.2.2

घ) देखिए भाग 6.3.2.

**बोध प्रश्न 2**

क) देखिए भाग 6.3

ख) देखिए भाग 6.4

ग) देखिए भाग 6.4.1

घ) i) ✓ ii) × iii) × iv) ✓

**बोध प्रश्न 3**

क) देखिए भाग 6.5

ख) पढ़िए भाग 6.5

ग) i) × ii) ✓ iii) ×

घ) देखिए भाग 6.5

**बोध प्रश्न 4**

क) देखिए भाग 6.6.1

ख) देखिए भाग 6.6.1

ग) राजस्थानी

घ) i) यथार्थ ii) भाव पक्ष iii) उत्कर्ष

ङ) देखिए भाग 6.6.4

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

**BHDC 132**

**मध्यकालीन हिंदी कविता**

खंड

# 2

## मध्यकालीन हिंदी कविता


इकाई 7
सूरदास का काव्य 139

इकाई 8
तुलसीदास का काव्य 170

इकाई 9
रहीम का काव्य 198

इकाई 10
बिहारी का काव्य 228

इकाई 11
घनानंद का काव्य 245

इकाई 12
भूषण का काव्य 262


ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

## खंड 2 का परिचय

यह खंड ''मध्यकालीन हिंदी कविता'' के भक्तिकाल तथा रीतिकाल के कुछ अन्य प्रमुख कवियों पर आधारित है। इस खंड में आप सूरदास, तुलसीदास, रहीम, बिहारी, घनानंद तथा भूषण के काव्य का अध्ययन करेंगे।

इकाई 7 'सूरदास का काव्य' है। इस इकाई में सगुण कृष्ण भक्तिधारा के प्रमुख कवि सूरदास का अध्ययन कराया गया है। सूरदास अष्टछाप के विशिष्ट कवि हैं। उनकी कविताओं में कृष्ण की अनेक लीलाओं का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत इकाई में सूरदास के काव्य की विशेषताओं, विषय- वस्तु तथा भाषा सौंदर्य पर विचार किया गया है। इकाई 8 'तुलसीदास का काव्य' है। इस इकाई में राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास के साहित्य की विशेषताओं की चर्चा की गई है। इस प्रक्रिया में उनकी कविता के भाव पक्ष, कला पक्ष तथा साहित्य में निहित दर्शन पर विचार किया गया है। इकाई 9 'रहीम का काव्य' है। इस इकाई में नीति काव्य परंपरा के अंतर्गत रहीम का स्थान निर्धारण किया गया है। साथ ही उनकी कविता की विशेषताओं का विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। इकाई 10 'बिहारी का काव्य' है। इस इकाई में रीतिकालीन रीति सिद्ध कवि बिहारी के काव्य की विशेषताओं पर विचार किया गया है। इकाई 11 'घनानंद का काव्य' है। यह इकाई रीति काल के रीतिमुक्त कवि घनानंद की कविता में निहित प्रेम तथा भक्ति पर आधारित है। साथ ही बिहारी के साहित्य के अन्य विशिष्ट पक्षों पर भी इकाई में चर्चा की गई है। इकाई 12 'भूषण का काव्य' है। इस इकाई में रीतिकालीन वीर रस के कवि भूषण की कविता के महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया गया है। प्रत्येक इकाई के अंत में उस विशिष्ट कवि के काव्य के कुछ अंश दिए गए हैं तथा उनसे संबंधित व्याख्या भी की गई है जो कविता के अध्ययन में आपकी सहायक होगी।

इस प्रकार यह खंड संपन्न होता है। इकाई में दिए गए बोध प्रश्नों के हल स्वयं ढूँढ़ने का प्रयास करें। बोध प्रश्नों के हल जाँचने के लिए इकाई के अंत में उनके उत्तर भी दिए गए हैं। इससे आपको इकाई में दिए गए विषय को गहनता से समझने में सहायता मिलेगी।

**शुभकामनाओं के साथ!**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

# इकाई 7 सूरदास का काव्य

## इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना संसार

7.2.1 सूरदास का जीवन वृत्त

7.2.2 सूरदास की रचनाएँ

7.3 सूरदास की भक्ति भावना

7.3.1 दास्य भक्ति

7.3.2 वात्सल्य भक्ति

7.3.3 सख्य भाव की भक्ति

7.3.4 माधुर्य भाव की भक्ति

7.3.5 नवधा भक्ति

7.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

7.5 सूरदास की भक्ति में श्रृंगार–वर्णन

7.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

7.7 सूरदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

7.7.1 भाव सौंदर्य

7.7.2 काव्यभाषा

7.8 सूरदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

7.9 सारांश

7.10 शब्दावली

7.11 उपयोगी पुस्तकें

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 7.0 उद्देश्य

सूरदास भक्तिकाल के शीर्ष कवियों में से एक हैं। वे सगुण भक्तिमार्ग के जितने बड़े भक्त हैं, उतने ही बड़े कवि भी। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- सूरदास के जीवन-वृत्त और रचना-संसार से अवगत हो सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति भावना के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे;
- सूरदास की कविता में वात्सल्य के स्वरूप तथा वैशिष्ट्य का विश्लेषण कर सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति में श्रृंगार का निरूपण तथा उसके संयोग और वियोग पक्ष का विवेचन कर सकेंगे;

- सूरदास की कविता में लोक-जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन कर सकेंगे;
- सूरदास के काव्य सौंदर्य और काव्य-भाषा का विवेचन कर सकेंगे; तथा
- पाठ्यक्रम में निर्धारित सूरदास के पद की व्याख्या कर सकेंगे।

## 7.1 प्रस्तावना

सूरदास कृष्णभक्ति काव्याधारा के महान भक्त कवि हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा विलक्षण और कल्पना-शक्ति अद्भुत थी। कवि होने से पहले सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। यही कारण है कि गोसाई विठ्ठलदास ने इन्हें अष्टछाप के भक्तों में सबसे ऊँचा स्थान दिया था। सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। वे बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व विनय और दास्य भाव के पदों का गायन किया करते थे। पुष्टिमार्ग में आने के साथ उनका वर्ण्य-विषय श्रीकृष्णलीला हो गया। सूरदास मूलतः भक्त कवि हैं। कृष्णलीला के अंतर्गत वात्सल्य और श्रृंगार-वर्णन उनकी भक्ति-भावना के केंद्रीय विषय हैं। इन दोनों ही भावों के महासागर में सूर की पैठ बहुत गहरी है। इसीलिए आलोचकों को इन विषयों से संबंधित अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठी जान पड़ती हैं। सूरदास का सौंदर्य-बोध भी अद्वितीय है। प्रेमासक्त हृदय की सहज अनुभूतियों की स्वाभाविक व्यंजना में सूरदास सिद्धहस्त हैं। कृष्णलीला का वर्णन करते समय वे अपने परिवेश और समाज के प्रति भी सचेत रहे हैं। ब्रज की लोक-संस्कृति ने सूरदास के काव्य को जीवंतता, स्वाभाविकता और समृद्धि प्रदान की है। इस इकाई में सूरदास के जीवन-वृत्त और उनके रचना-संसार से परिचय प्राप्त करते हुए उनकी भक्ति-पद्धति, उसके अंतर्गत वात्सल्य और श्रृंगार-वर्णन, उनकी कविता में अंकित लोक जीवन के विविध पक्षों के विश्लेषण के साथ उनके काव्य-वैशिष्ट्य पर विचार किया जाएगा।

## 7.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना-संचार

### 7.2.1 सूरदास का जीवन-वृत्त

भक्त कवि सूरदास ने प्रत्यक्ष रूप से अपने जीवन के संबंध में कुछ नहीं कहा है, यही कारण है कि उनका कोई प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका है। सूर-साहित्य के आलोचकों ने विविध स्रोतों से उनकी जीवन-परिचय की जो सामग्री एकत्रित की है, उन्हें दो भागों में रखकर समझा जा सकता है - (i) बाहय साक्ष्य और (ii) अंतः साक्ष्य। बाहय साक्ष्यों के अंतर्गत सूर की समसामयिक कृतियों में प्राप्त उल्लेख तथा आधुनिक विद्वानो-आलोचकों के शोधपरक विचारों को रखा जा सकता हैं समसामयिक कृतियों में पुष्टिमार्गीय साहित्य प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त नाभादास कृत 'भक्तमाल' पर लिखित प्रियादास की टीका कवि मियां सिंह कृत 'भक्त विनोद', ध्रुवदास की 'भक्त नामावली', नागरीदास कृत 'पदप्रसंग माला', गोस्वामी हरिराय कृत 'भाव प्रकाश', जमुनादास कृत 'भाव संग्रह' तथा अष्टसखामृत' आदि ग्रंथ हैं, जिनसे सूरदास के विषय में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त होती है। सूर-साहित्य के आधुनिक विद्वानों-आलोचकों के विचार इतिहास-ग्रंथों, सूर विषयक शोध ग्रंथों तथा निबंधों आदि में संकलित हैं। अंतः साक्ष्य के अंतर्गत सूरदास की रचनाओं में प्राप्त कुछ ऐसे पद आते हैं, जो उनके जीवन-वृत्त के जटिल सूत्रों को सुलझाने में सहायक हैं।

'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता रहा है कि सूरदास का जन्म संवत् 1540 (सन् 1483) में हुआ था। पुष्टिमार्गीय ग्रंथों में आए उल्लेख

के अनुसार सूरदास बल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे, जिसको आधार मानकर यह निश्चित किया गया कि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल 5, संवत् 1535 वि. (सन् 1478 ई.) को हुआ था। डॉ. दीनदयालु गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय' में इसे प्रमाणित भी किया है। सूरदास के जीवन के विषय में आज जो भी विवरण प्राप्त हैं, उनका मुख्य आधार 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' है। हरिराय कृत 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सीही नामक गाँव में हुआ था। हिंदी के अधिकांश श्रेष्ठ आलोचकों- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुदंर दास, रामकुमार वर्मा तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने इनका जन्म-स्थान आगरा के निकट रुनकता को माना है, जबकि 'सूर-निर्णय' में द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मीतल ने सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के समीप सीही को माना है जिसका आधार उन्होंने 'भाव प्रकाश' को बनाया है। इस प्रकार विभिन्न उल्लेखों व साक्ष्यों के मध्य सूरदास के जन्म स्थान का निर्णय करना आसान नहीं है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास के जीवन-परिचय का आरंभ गऊघाट से होता है, जहाँ उनकी भेंट बल्लभाचार्य से हुई थी।

जन्म-तिथि व जन्म-स्थान के समान ही सूरदास के नाम को लेकर भी विद्वानों के मध्य काफी विवाद है। 'सूरसागर' में सूरदास, सूर, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम - उनके पाँच नामों का उल्लेख मिलता है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरज और सूरजदास आदि नामों को किसी दूसरे व्यक्ति का नाम बताया है। उन्होंने उनका सूरदास नाम ही वास्तविक माना है। अधिकांश विद्वान इसी मत के समर्थक हैं। विद्वानों के मध्य मतभेद का एक अन्य विषय है - सूरदास का अंधत्व। उन्हें जन्मांध मानने वालों में सूर निर्णयकार तथा आचार्य नंददुलारे वाजपेयी आदि विद्वान हैं। सूरनिर्णयकार ने हरिराय के 'भावप्रकाश' को आधार बनाकर सूरदास को जन्मांध कहा है। कुछ विद्वान सूरदास को अंधा अवश्य मानते हैं, किंतु जन्मांध नहीं। ऐसे विद्वानों में मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास, चंद्रबली पांडेय तथा ब्रजेश्वर वर्मा का नाम उल्लेख्य हैं। बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होते समय सूरदास अंधे थे, इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' में लिखते हैं - ऐसी आत्मग्लानि की अवस्था में अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति मनुष्य में आ जाती है, ऐसे ही अवसरों पर सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कह देते थे। इसके अक्षरार्थ को बहुत अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। परवर्ती पुस्तकों में केवल सुनी-सुनाई बातों का उल्लेख है। सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता''।

हरिराय कृत 'भावप्रकाश' के अनुसार सूरदास अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे। मात्र छः वर्ष की आयु में वे, माता-पिता को छोड़ सीही गाँव से दूर एक सरोवर के किनारे पीपल-वृक्ष की छाँव में कुटिया बनाकर रहने लगे थे। यहाँ रहते हुए उनका शकुन विद्या की ओर झुकाव हुआ और इसी विद्या के सहारे उनकी जीविका भी चलने लगी। यहीं उन्होंने गायन विद्या भी अर्जित की। मन अशांत रहने के कारण 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने इस स्थान को भी छोड़ दिया। इसके पश्चात सूरदास आगरा और मथुरा के बीच स्थित रुनकता गाँव के निकट गऊघाट नामक स्थान पर कुटी बनाकर सांसारिक विरक्ति के साथ रहने लगे। विनय और दास्य के अतिशय कारुण्य भाव वाले पदों की रचना उन्होंने इसी स्थान पर रहते हुए की। वार्ता साहित्य के अनुसार संवत् 1576 के आसपास इसी स्थान पर सूरदास की भेंट बल्लभाचार्य से हुई थी। आचार्य बल्लभ अपने स्थान अरैल (प्रयाग) से ब्रजयात्रा के लिए निकले थे। मार्ग में गऊघाट पड़ा। आचार्य यहीं ठहरे और उनकी भेंट एक अंधे भक्त गायक सूरदास से हुई। जब आचार्य ने सूर से कुछ गाने को कहा तो सूर ने अपने मधुर कंठ से दो पद गाकर सुनाए थे। पहला पद था - 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं तथा दूसरा था- 'प्रभु हौं सब पतितन को नायक'। सूरदास का यह दैन्यभाव आचार्य बल्लभ को

पसंद नहीं आया और उन्होंने वहीं पर सूर को विधिवत अपने संप्रदाय में दीक्षित किया। आचार्य ने उन्हें 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध से परिचय कराया तथा श्रीकृष्ण-लीला-गान हेतु उन्हें प्रेरित किया। इसके साथ ही सूरदास के जीवन में एक नया मोड़ आया और वे सदा के लिए कृष्णलीला-गान में समर्पित हो गए। वार्ता-साहित्य में सूरदास की सम्राट अकबर से भेंट का भी उल्लेख मिलता है। अपने दरबारी गायक तानसेन से सूरदास द्वारा रचित एक भजन सुनकर अकबर मुग्ध हो गया था। अजमेर शरीफ की यात्रा में मथुरा-मार्ग से जाते हुए अकबर ने सूरदास से भेंट की थी। सूरदास के संदर्भ में यह भी प्रसिद्ध है कि उनकी तुलसीदास से भी भेंट हुई थी जिसका उल्लेख 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल की टीका' और 'मूल गोसाईं चरित' में मिलता है।

सूरदास के जन्मकाल की तरह ही उनके मृत्युकाल को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1620 के आसपास सूरदास की मृत्यु का अनुमान लगाया है। ब्रजेश्वर वर्मा का अनुमान संवत् 1640 के आसपास का है। अधिकांश साक्ष्य संवत् 1640 में ही सूरदास की मृत्यु को प्रमाणित करते हैं। वार्ता साहित्य के अनुसार सूरदास को अपने जीवन के अंतिम समय का पूर्वाभास हो गया था। वे शरीर-त्याग के लिए गोवर्धन छोड़कर परसौली चले गए थे। गोस्वामी विठ्ठलदास को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्हें भी सूर के अंतिम समय का आभास हो गया। उन्होंने भक्तों, को एकत्रित कर कहा, 'पुष्टिमार्ग को जहाज जात है, सो जाको कुछ लेनो होय सो लेउ।' यह सुनते ही विठ्ठलदास के साथ समस्त भक्त-गण परसौली पहुँच गए। उनका सामना जब सूरदास से हुआ उसी क्षण सूरदास ने 'खंजन नयन रूप रस माते' भजन गाते-गाते अपना शरीर त्याग दिया।

### 7.2.2 सूरदास की रचनाएँ

सूरदास के जीवन-वृत्त की भाँति उनकी रचनाओं को लेकर भी विद्वानों के बीच मतभेद रहा है। उनके प्रति अतिशय श्रद्धा-भाव, धार्मिक मान्यताओं तथा स्वयं कवि द्वारा लिखित हस्तलिपि के अभाव के कारण सूरदास की रचनाएँ वाद-विवाद का विषय बन गई। नागरी प्रचारिणी सभा, वार्ता-साहित्य तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के आधार पर सूरदास की निम्नलिखित 25 काव्य-कृतियों का उल्लेख होता है :

(1) सूरसागर, (2) सूर-सारावली, (3) साहित्य-लहरी, (4) भगवत् भाषा, (5) सूर-रामायण, (6) गोवर्द्धन-लीला (सरस लीला), (7) दशम स्कंध भाषा, (8) मानलीला, (9) राधा रसकेलि कौतूहल, (10) सूरसागर-सार, (11) दानलीला, (12) भँवरलीला, (13) नागलीला, (14) व्याहली, (15) प्राणप्यारी, (16) दृष्टिकूट के पद, (17) सूर शतक, (18) सूरसाठी, (19) सूर पचीसी, (20) सेवाफल, (21) सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद, (22) हरिवंश टीका, (23) एकादशी महात्म्य, (24) नल दमयंती (25) रामजन्म।

सूर-साहित्य के अधिकांश विद्वानों ने उपर्युक्त रचनाओं में से केवल 'सूर-सारावली', 'साहित्य-लहरी' और 'सूरसागर' को ही प्रामाणिकता की दृष्टि से विचारणीय माना है।

**सूरसागर**

यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसकी प्रामणिकता पर कोई विवाद नहीं हैं। इसका मूल विषय श्रीकृष्ण का लीला-गान है जो 'श्रीमद्भागवत पुराण' पर आधारित है। 'सूरसागर' के प्रकाशित और अप्रकाशित रूप में उपलब्ध कुल पदों की संख्या 6-7 हजार के लगभग है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' में पदों के कुल संख्या लगभग 4600 है। प्रो. मैनेजर पांडेय 'सूरसागर' के संग्रहात्मक रूप को ही उसका प्राचीनतम रूप मानते हैं। यह अपने मूल रूप में नित्य कीर्तन और वर्षोत्सव का संग्रह था,

जिसका आगे चलकर नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव, वसंत धमार, ग्रीष्म पद तथा रास के पद के रूप में विस्तार हुआ। 'सूरसागर' की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतियाँ सं. 1644 से 1670 तक के बीच की अवधि की हैं, जो सूरदास के रचना-काल के आसपास की ही लगती हैं। संवत् 1753 के पहले 'सूरसागर' के द्वादश स्कंधात्मक रूपक का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

### सूर सारावली

इस रचना की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। कुछ आलोचक इसे सर्वथा अप्रामाणिक और परवर्ती काल की रचना मानते हैं। कुछ ने इसे सूरसागर की पद्बद्ध अनुक्रमणिका ठहराकर स्वतंत्र ग्रंथ ही नहीं माना है। सूर-निर्णयकार ने इसे 'सूर-सागर' से स्वतंत्र रचना माना है, जिसकी रचना 1602 में हुई थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और आचार्य शुक्ल दोनों ने इसे सूरदास द्वारा 67 वर्ष की अवस्था में लिखे जाने की ओर संकेत किया है। डॉ. मुंशीराम शर्मा तथा डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने भी 'सूरसारावली' को सूरदास को प्रामाणिक रचना माना है। जबकि डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे सूरदास की रचना मानने से इंकार किया है। 'सूरसारावली' की कोई हस्तलिखित पांडुलिपि प्राचीन रूप में उपलब्ध नहीं है और न ही इसका उल्लेख वार्ता-साहित्य में मिलता है।

'सूरसारावली' के जिस 1002 वें पद के आधार पर विद्वानों ने इसके रचना-काल पर विचार किया है, वह पद निम्नलिखित है :

> गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
> शिव विधान तव कियो बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन।।

### साहित्य-लहरी

सूरदास की इस रचना को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। 'साहित्य-लहरी' 118 पदों का अलंकार प्रधान दृष्टिकूट शैली का चमत्कारपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए वार्ताकार ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक वासनाओं में फँसे हुए नंददास को पुष्टि मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए नायिका भेद तथा अलंकार के माध्यम से राधा-कृष्ण के चरणारविंद में प्रवृत्त करने के लिए सूर ने इस ग्रंथ की रचना की थी। इस रचना के पढ़कर सूर के पांडित्य का बोध तो हो जाता है, किंतु नंददास इससे कितना प्रेरित हुए होंगे, कहा नहीं जा सकता। 'साहित्य-लहरी' में वर्णित नायिका-भेद, अलंकार-निरूपण तथा दृष्टिकूट के चमत्कार का सूर की भक्ति-भावना से कोई तालमेल नहीं बैठता। 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने वालों में प्रभुदयाल मीतल, मुंशीराम शर्मा, हरवंश लाल शर्मा आदि आलोचकों के नाम उल्लेखनीय हैं। गोवर्धननाथ शुक्ल इसे 'सूरसागर' से ही संग्रहीत मानने के पक्षधर हैं। 'साहित्य-लहरी' का वर्तमान स्वरूप भारतेंदु द्वारा 1892 में पटना से प्रकाशित कराया गया था।

### बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित ग्रंथों के रचयिता के नाम बताइए।

| ग्रंथ | रचयिता |
|---|---|
| (क) भक्तमाल | ...................................... |
| (ख) साहित्य लहरी | ...................................... |
| (ग) भक्त विनोद | ...................................... |

(घ) भक्त नामावली ......................................

(ङ) अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय ......................................

2. निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) सूरदास कृष्णलीला वर्णन करते समय अपने ...................................... के प्रति भी सचेत रहे।

(ख) सूरदास ......................................से दस दिन छोटे थे।

(ग) 18 वर्ष की उम्र में सूरदास आगरा और मथुरा के बीच रुनकता गाँव के निकट ......................................नामक स्थान पर आ गए।

(घ) सूरदास का ...................................... आचार्य बल्लभ को पसंद नहीं आया।

3. सूरदास और बल्लभाचार्य के बीच हुई प्रथम मुलाकात का विवरण दीजिए। (पाँच पंक्तियों में) ।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

4. सूरदास की प्रामाणिक रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

## 7.3 सूरदास की भक्ति-भावना

'सूरसागर' का आरंभ विनय के पदों से होता है। प्रथम पद में सूरदास प्रभु के चरणों की वंदना करते हैं, 'चरण-कमल बंदौ हरि राई।' दूसरे पर में वे निर्गुण ब्रह्मोपासना की कठिनाइयों और सगुण ब्रह्मोपासना के औचित्य का उद्‌घाटन करते हैं। उनकी दृष्टि में निगुर्ण निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत दुष्कर है। वे अपना तर्क भी इस पद में प्रस्तुत करते हैं :

अविगत गति कुछ कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ, रस अंतरगत की भावै।।

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं, सूर सगुन पद गावै।।

अर्थात् जो कभी जाना न जा सके, ऐसे अज्ञात निर्गुण ब्रह्म के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसका अनुभव करने वाला उपासक उस गूँगे जैसा है जो मीठा फल खाकर भीतर ही भीतर उसका स्वाद लेता है। जो निर्गुण ब्रह्म रूप, आकार, गुण, जाति आदि की सीमा से परे है, ऐसे ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मन बिना किसी आधार के कहाँ-कहाँ दौड़े। उस ब्रह्म को सब प्रकार से अगम्य समझकर मैं (सूरदास) उसके सगुण-लीला का पद-गान कर रहा हूँ।

सूरदास की दृष्टि में परमब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में निर्गुण ब्रह्म ही सगुण-साकार हो गया है। क्योंकि निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म के ही दो रूप हैं। निर्गुण जहाँ ज्ञानाश्रित है, वहीं सगुण भक्ति का विषय है।

अंधभक्त सूरदास के विषय में सर्वविदित है कि उन्होंने जीवन के आरंभिक चरणों में निर्गुण साधना-पद्धति को अपनाकर अनेक पद लिखे थे। उनमें से एक पद यहाँ द्रष्टव्य है :

नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति रूप अनूप।।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर चंद्र नक्षत्र पावक, सर्व तासु प्रकास।

मेरे नेत्र उस श्याम की छवि को निहारते हैं, जो घट-घट में व्याप्त हैं। जिसकी दिव्य सौंदर्य-आभा अनुपम है। जिसके चरण सातों पाताल हैं तथा शीश आकाश है। उसी ब्रह्म का प्रकाश सूर्य, चंद्र, नक्षत्र तथा अग्नि सभी में दिखाई पड़ता है।

### 7.3.1 दास्य भक्ति

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार बल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे केवल विनय और दास्य के पद गाया करते थे। बल्लभाचार्य को भी उन्होंने इसी प्रकार का पद सुनाया था, 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको।' इसे सुनकर आचार्य ने सूर को फटकार लगाई थी और कहा था, 'जो सूर है के ऐसो काहै को घिघियात हौ, कुछ भगवतलीला वर्णन करि।' इस प्रकार बल्लभाचार्य के प्रभाव में आकर वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए तथा अष्टछाप-मंडल में सम्मिलित होकर श्रीकृष्ण के सगुण लीलागान की ओर उन्मुख हुए। पुष्टिमार्ग के संस्थापक बल्लभाचार्य ने शंकर के वेदांत-सूत्रों के कुछ अंशों पर 'अणु-भाष्य' लिखकर अपने मत का प्रतिपादन किया था। बल्लभ ने कई बिंदुओं पर शंकर से असहमति दर्ज कराई। बल्लभाचार्य का दर्शन शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रचलित हुआ। आचार्य बल्लभ ब्रह्म को नित्य या साकार मानते थे तथा जगत को मिथ्या की जगह नित्य मानते थे। उनकी दृष्टि में चूँकि जगत ब्रह्म द्वारा निर्मित है, ब्रह्म कारण और जगत कार्य हैं, इसलिए जगत ब्रह्म से अभिन्न है। जीव जब समूची सृष्टि को कृष्णमय देखकर उनके प्रेम में परमानंद का अनुभव करता है तब वह अपनी शुद्धावस्था में पहुँच जाता है। भगवान उस जीव से प्रसन्न होकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। वस्तुतः शुद्ध पुष्टिमार्ग वह है, जिसमें भगवत्प्राप्ति विषयक सभी साधनों की अनुपस्थिति हो। पुष्टिमार्ग को साधनहीन भक्तों के लिए सरलतम मार्ग माना जाता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्त्व है - भवगतनुग्रह। यहाँ पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। प्रभु के अनुग्रह से ही लौकिक

व दिव्य शक्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसके लिए न तो किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है और न ही किसी प्रकार के यत्न की। यहाँ बस प्रभु-चरणों में पूर्ण समर्पण ही अपेक्षित है। जब तक भगवान अपने भक्त पर कृपा कर उसे अपने स्वरूप का बोध नहीं कराते, तब तक भगवान का अनुभव संभव नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति का यही कृपा मार्ग पुष्टिमार्ग है। सूर का विनय-भाव उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है। सूरसागर का आरंभ भी विनय के पद से ही हुआ है :

चरण कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंधै, आंधर कौ सब कुछ दरसाई।।
बहिरौ सुनै मूक पूनि बोलै, रंक चलै सिरि छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बंदौ तेहिं ताई।

सूरदास कहते हैं कि मैं प्रभु श्रीहरि के कमल के समान चरणों की वंदना करता हूँ। जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति पर्वत लाँघ जाता है, अंधे को सब कुछ दिखाई देने लगता है। गूँगा बोलने और बहरा सुनने लगता है, निर्धन व्यक्ति के सिर पर राजछत्र आ जाता है। सूरदास कहते हैं कि मैं ऐसे करूणा के सागर स्वामी के उन चरणों की बारंबार वंदना करता हूँ।

सामान्यतः सूर-काव्य को दो भागों - विनय के पद और हरिलीला के पद में विभक्त कर - सूरदास की भक्ति-पद्धति का विश्लेषण-विवेचन किया जाता है। मूलतः विनय और हरिलीला एक दूसरे से अलग नहीं हैं। प्रभुलीला गान के लिए विनय अनिवार्य है तथा विनय भक्ति-साधना की पहली सीढ़ी भी है। सूरदास की भक्ति में एक विशेष प्रकार की विकासशीलता देखी जाती है। वह दास्य से वात्सल्य और वात्सल्य से सख्यभाव का संस्पर्श करती हुई माधुर्य भाव तक की यात्रा पूर्ण करती है। विनय के पदों में दास्य भक्ति की व्यंजना हुई है इस भक्ति का मूल आधार है - दैन्यभाव। सूर का आत्मनिवेदन की शैली में लिखा एक पद द्रष्टव्य है :

अब कैं राखि लेहुँ भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया, पारधि साधै बान।।

हे भगवान, अब की बार मेरी रक्षा कीजिए। मैं वृक्ष की शाखा पर असहाय बैठा हूँ और शिकारी ने मुझ पर निशाना साध रखा है।

### 7.3.2 वात्सल्य भक्ति

सूरदास की भक्ति का अगला सोपान उनकी वात्सल्य-भक्ति है। वात्सल्य का स्थायी भाव स्नेह होता है और इसमें मातृवृत्ति का मनोमय अनुभव होता है। यह प्रेम का कोमलतम रूप है जो लगभग प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। वात्सल्य का जितना विशद, गहन, व्यापक और मर्मस्पर्शी वर्णन सूरदास ने किया है, वैसा अन्यत्र नहीं हुआ है। सूर-काव्य में वात्सल्य का सर्वाधिक सशक्त आश्रय माँ यशोदा हैं। इनके अतिरिक्त माँ देवकी, बाबा नंद तथा वसुदेव के साथ-साथ समस्त ब्रज प्रदेश भी आश्रय बना हुआ है। कृष्ण-जन्म से लेकर उनके विभिन्न संस्कारों, पालने में झुलाना, घुटनों के सहारे चलना, बाल-क्रीड़ा, माखन चोरी जैसे अनेक प्रसंगों को सूरदास ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वात्सल्य के पदों में अंकित किया है। बालक कृष्ण के रूप-सौंदर्य-वर्णन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(i) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि पाई।।

(ii) सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।।

बालक कृष्ण अपने हाथ में माखन लिए हुए सुशोभित हो रहे हैं। वे घुटनों के बल चल रहे हैं, उनका शरीर धूल से लिपटा हुआ है और उन्होंने अपने मुख पर दही लपेटा हुआ है।

सूरदास के काव्य में संयोग वात्सल्य की तरह ही वियोग वात्सल्य को भी पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण के मथुरा-प्रस्थान को प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें माँ यशोदा मथुरा जाते कृष्ण को किसी भी प्रकार रोक लेना चाहती है। वियोग के भय में विह्वल माँ की लाचारी इस पद में देखी जा सकती है :

> जसोदा बार-बार यौं भाखै।
> है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।

### 7.3.3 सख्य भाव की भक्ति

कृष्ण की वृंदावन-लीला में सूर की सख्य भक्ति के दर्शन होते हैं। सखा भाव से की गई भगवान की भक्ति सख्य भक्ति होती है। ब्रज के गोप-सखाओं के साथ क्रीड़ा करते कृष्ण की लीलाओं का सूरदास ने बड़ा ही सशक्त वर्णन किया है। कृष्ण अपने सभी सखाओं के साथ खेल रहे हैं :

> खेलत स्याम ग्वालिन संग।
> सुबल हलधर अरु श्रीदामा करत नाना रंग।।

मित्रों-सखाओं के संग खेलने में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता :

> खेलत में को काको गुसैयाँ।
> हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही हरि करत रिसैयाँ।।

### 7.3.4 माधुर्य भाव की भक्ति

सूरदास की भक्ति में माधुर्य भाव की भक्ति का भी श्रेष्ठतम रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार की भक्ति में प्रेम और श्रृंगार भाव का समावेश रहता है। वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ परब्रह्म श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करके गोपियाँ अति आनंदित होती हैं। माधुर्य भक्ति का आदर्श रूप राधा-कृष्ण की प्रेम लीला में व्यक्त हुआ है। सूर-काव्य में राधा-कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। सूर ने प्रथम दृष्टि में ही दोनों के मध्य प्रेम उपजता दिखाया है:

> बूझत स्याम कौन तू गोरी।
> कहा रहति, काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।
> सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका गोरी।।

यहाँ कृष्ण पूछते हैं- हे गोरी तू कौन है, तू रहती कहाँ है? किसकी बेटी है, मैंने तुम्हें ब्रज की गलियों में कहीं देखा नहीं है। सूरदास कहते हैं कि मेरे प्रभु रसिक शिरोमणि हैं इसलिए उन्होंने भोली राधा को अपनी बातों में फुसला लिया है।

राधा-कृष्ण के माध्यम से सूरदास ने प्रेम को जिस सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहा है वही माधुर्य भक्ति की आदर्श स्थिति है। श्रृंगार के संयोग पक्ष के साथ वियोग पक्ष भी सूर-काव्य में कम प्रभावशाली नहीं है। कृष्ण के वियोग में डूबी राधा का अवसाद सूरदास ने इस प्रकार से अंकित किया है :

> अलि मलीन वृषभानु कुमारी।
> सूरदास कैसे करि जीवै, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी।।

वृषभानु की पुत्री राधा कृष्ण के वियोग में अत्यधिक उदास और दुखी है। सूरदास कहते हैं कि ब्रज की सभी गोपियाँ (युवतियाँ) कृष्ण के विरह में उनके बिना इसी प्रकार जी रही हैं।

### 7.3.5 नवधा भक्ति

'श्रीमद्भागवत' में निर्दिष्ट भक्ति के नौ रूपों का भी सूरदास के काव्य में पूर्ण समावेश हुआ है। सूरदास ने जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाया था उसमें कर्मकांड तथा बाह्याचार के लिए अधिक स्थान नहीं था, किंतु 'भागवत' की नवधा भक्ति को उन्होंने निरस्त भी नहीं किया था। नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वंदना आदि को स्वीकार कर उन्होंने अपने कई पदों में इनका उल्लेख भी किया। सूरदास ने अष्टयाम-सेवा-मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थानन, भोग, संध्या-आरती तथा शयन के अनुसार इनसे संबंधित अनेक पदों की रचना की है।

समग्रतः सूर की भक्ति लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली है। उनकी भक्ति का धरातल अत्यंत उदात्त और व्यापक है। वह जाति-वर्ण की संकीर्णता का निषेध करती है। इस दृष्टि से सूरदास का एक पद यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनकी शरण में आने पर जाति-पाति का कोई अर्थ नहीं रह जाताः

> कह्यो शुक श्री भागवत विचार।
> जाति पांति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति के दरबार।।

श्री शुकदेव ने 'भागवत' का विचार प्रकट किया। उनके अनुसार श्रीहरि के दरबार में जात-पाँत का कोई भेद नहीं है।

**बोध प्रश्न**

5. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) सूरदास की दृष्टि में निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए दुष्कर है।

   (ख) सूरदास ने निर्गुण साधना-पद्धति से संबंधित कोई पद नहीं लिखा।

   (ग) पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व भगवतानुग्रह है।

   (घ) वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों से श्रेष्ठ माना गया है।

   (ङ) सूरदास के काव्य में नवधा भक्ति की पूर्णतया उपेक्षा की गई है।

6. सूरदास की भक्ति की विशेषताएँ बताइए। (दस पंक्तियों में)

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

## 7.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं। पुष्टिमार्ग में इष्टदेव श्रीकृष्ण के बालरूप की अधिक मान्यता रही है। कृष्णकाव्य की परंपरा में दक्षिण के आलवार भक्तों ने कृष्ण के बालरूप को साहित्य-जगत में पहले ही प्रतिष्ठित कर दिया था। सूरदास ने बल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् कृष्णलीला-गान प्रारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं से संबंधित पदों की रचना की। बाललीला के प्रति जितना आकर्षण सूरदास में दिखाई पड़ता है, उतना शायद विश्व के किसी कवि में नहीं होगा। वे बालरूप और बाल मनोविज्ञान के पारंगत कवि हैं। कृष्ण के जन्म तथा शैशव से लेकर किशोरावस्था तक के क्रमशः न जाने कितने मनोहारी चित्र के सूर के काव्य में अंकित हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके विषय में लिखा है, बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर हैं। उनके बीच की नाना मनोरम परिस्थितियों के विशद चित्रण द्वारा सूरदासजी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए।''

सूरदास के काव्य में वात्सल्य के दोनों पक्षों का विशद चित्रण हुआ है। पहला पक्ष संयोग वात्सल्य का है, जिसमें कृष्ण-जन्म से ही बाललीला-वर्णन का आरंभ हो जाता है। कृष्ण के जन्म का प्रसंग आता है। उनका जन्म हो चुका है, नंद के द्वार पर चहल-पहल व आनंदातिरेक का वातावरण है। इस उत्सव में स्वयं को सम्मिलित होने से सूरदास रोक नहीं पाते और वहाँ पहुँचकर नंद से कहते हैं।

> (नंद जू) मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ।
> तुम्हरे पुत्र भयौ हौं सूनि के, अति आतुर उठि धायौ।
> नंदराइ सुनि विनती मेरी, तबहिं विदा भल ह्वै हौं।
> जब हँसि कै मोहन कछु बोलै, तिहि सुनि कै घर जाऊँ।
> हौं तो तेरे घर की दाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ।।

अर्थात् हे नंद जी तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हुआ है यह सुनकर मैं अपने को रोक नहीं पाया। मेरा मन आनंद से भर गया। मैं गोवर्धन पर्वत से आ रहा हूँ। हे नंद जी मेरी आपसे विनती है कि जब मोहन एक बार हंस कर कुछ बोल देते हैं तो उसे सुनने के बाद ही मैं वापस आऊँगा। मैं आपके घर का ही हूँ, सूरदास मेरा नाम है)

यहाँ एक ओर कृष्ण का जन्म होता है तो दूसरी ओर वात्सल्य सम्राट सूरदास का भी नव जन्म होता है। बढ़ते हुए बालकृष्ण के साथ ही सूरदास की वात्सल्य दृष्टि भी क्रमशः तरुणाई प्राप्त करती जाती है। संयोग वात्सल्य के अनेक मनोहारी चित्र सूरकाव्य में अंकित है। इनमें से कुछ पद यहाँ उल्लेखनीय हैं :

(i) रूप-सौंदर्य :

> कहाँ लौं बरनौ सुंदरताई।
> खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि छाई।।

(ii) बाल-क्रीड़ा :

> किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
> मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंब पकरिबे धावत।।

(iii) मातृ-अभिलाषा :

> जसुमति मन अभिलाषा करै।
> कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरती पग द्वैक धरै।।

कब द्वै दंत दूध के देखौं, कब तुतरे मुख-बैन झरै।।

माँ यशोदा के मन में अभिलाषा होती है कि कब मेरा पुत्र घुटनों के बल चलेगा और वह कब धरती पर अपने दोनों पैर रखेगा। कब मैं उसके दूध के दो दांत देखूँगी और कब उसके मुख से तोतली वाणी निकलेगी।

(iv) बालहठ :

मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों।
जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।।

(v) बाललीला :

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।।

(vi) बालक्षोभ :

खेलत में को काको गुसैयां।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां।।

(vii) मातृ-आशंका :

लालन वारी या मुख ऊपर।
माई मोरहि दीठि न लागै, ताते मसि-बिंदा दियो भ्रू पर।।

माँ यशोदा कहती हैं- हे लाल ! मैं तेरे ऊपर स्वयं को न्योछावर करती हूँ। मेरी ही नजर मेरे लाल को न लग जाए, इस आशंका से मैंने इसकी भौंहों पर काजल का टीका लगा दिया है।

सूरदास के वात्सल्य संबंधी पद उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-क्षमता का सशक्त प्रमाण हैं। वह चाहे बालक कृष्ण का रूप-सौंदर्य हो या उनकी बालहठ, उनकी बाल सुलभ लीलाएँ हो या माँ यशोदा के भीतर पल रही अभिलाषाएँ - सभी प्रसंगों के वर्णन में सूरदास ने अपने मनोविज्ञान-बोध और कलात्मक प्रौढ़ता का परिचय दिया है।

सूरदास के काव्य में संयोग-वात्सल्य की तरह ही वियोग-वात्सल्य में भी नंद और यशोदा मुख्य आश्रय हैं। जब कृष्ण मथुरा-गमन के लिए तैयार होते है तो माँ यशोदा की मातृ-सुलभ व्याकुलता बढ़ जाती है। उनकी आँखें आसपास किसी ऐसे हितैषी की तलाश करने लगती हैं, जो जाते हुए कृष्ण को किसी तरह रोक ले :

(i) जसोदा बार-बार यौं भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ, काल रूप ह्वै आयौ।।

यशोदा बार-बार यह कहती हैं कि ब्रज में ऐसा कोई मेरा अपना है जो गोपाल को यहाँ से जाने से रोक ले। मेरे छोटे बालक से क्या काम पड़ा कि राजा ने उसे मधुपुरी बुलाया है। अक्रूर मेरा प्राण हरने के लिए काल बनकर आया है।

(ii) कमलनयन गुन टेरत-टेरत, अधर वदन कुम्हिलानी।
'सूर' कहा लगि प्रकट जनाऊँ, दुखित नंद जु की रानी।।

कमल के समान आँख वाले कृष्ण के गुण गाते-गाते माँ देवकी के होठ और शरीर जीर्ण पड़ गए हैं। सूर कहते हैं कि उनकी पीड़ा का वर्णन कहाँ तक करूँ?

सूरदास को मातृहृदय के अंतस्तल का गहरा बोध है। वे पुत्र-वियोग के भय से आक्रांत माँ की पीड़ा को समझते हैं, इसलिए यशोदा के दुख को भली भाँति यहाँ उन्होंने व्यक्त किया है, कृष्ण-गमन का समाचार सुनकर यशोदा को गहरा आघात लगा :

> यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।
> कहा अक्रूर ठगौरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता।

कृष्ण के गमन का समाचार सुनते ही माँ यशोदा धरा पर गिर गईं। अक्रूर कौन-सी ठग विद्या लेकर आए जो अपने साथ दोनों भाइयों को लिए जा रहे हैं।

कृष्ण के प्रवास-काल में उद्धव के ब्रज-आगमन पर गोपी-उद्धव-संवाद में भी माँ यशोदा की विरह दशा का वर्णन हुआ है। वे पुत्र की कुशलता के लिए चिंतित-आशंकित रहती हैं। गोपियों की तरह ही वे भी उद्धव के द्वारा देवकी को एक माँ का संदेश भेजती हैं कि वे तो देवकी के पुत्र कृष्ण का पालन-पोषण करने वाली एक धाय मात्र हैं, फिर भी उस पुत्र की चिंता यशोदा को दिनरात लगी रहती है :

> संदेसो देवकी सों कहियो।
> हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।
> जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
> प्रात होते मेरे लाड़ लड़ैतै, माखन रोटी खावै।।

इस पद में सूरदास ने मातृहृदय का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वे निश्चित रूप से वात्सल्य रस के सम्राट कवि हैं। वे बालकृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी लीलाओं पर ही मुग्ध नहीं हैं, अपितु माँ यशोदा के वत्सल भाव पर भी उतने ही मुग्ध हैं। अपने वात्सल्य-वर्णन में सूर ने जिन उपमाओं व रूपकों का सहारा लिया वे अद्वितीय हैं। आज भी सूरदास वात्सल्य-वर्णन के साहित्यिक मानदंड बने हुए हैं।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 7.5 सूरदास की भक्ति में श्रृंगार-वर्णन

काव्यशास्त्र में जो श्रृंगार रस है वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर रस है। प्रेमभाव का ही दूसरा रूप माधुर्य भाव है। सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं जिनके काव्य में प्रेमाभक्ति या माधुर्य भक्ति की महत्ता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य-विषय राधा-कृष्ण का प्रेम तथा गोपी-कृष्ण-प्रेम के प्रसंग हैं जो पूर्णतया श्रृंगार भावना से अनुप्राणित हैं। काव्यशास्त्र में श्रृगार को रसराज कहा जाता है, और ऐसा माना जाता है कि इसमें सभी रस समाहित हो जाते हैं। सूरदास का काव्य अपनी समग्रता में श्रृंगार भाव पर आधारित काव्य है।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला के कई आयाम हैं। इसमें एक ओर जहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम है तो दूसरी ओर गोपियों और कृष्ण का। इन दोनों ही प्रेम-प्रसंगों के बीच की जो सबसे बड़ी धुरी है, वह है कृष्ण का दिव्य-अलौकिक सौंदर्य। कृष्ण का यही अलौकिक सौंदर्य संपूर्ण प्रेमलीला की नित्य शक्ति है। सूरदास के यहाँ प्रेम की उत्पत्ति और विकास में रूप-आकर्षण और साहचर्य-दोनों की बड़ी भूमिका है। यहाँ बाल्यावस्था का आकर्षण किशोरवस्था और यौवनावस्था तक आते-आते प्रौढ़ और परिपुष्ट हो जाता है। राधा और कृष्ण का प्रथम संपर्क एक दूसरे को रूपाकर्षण और सम्मोहन में बाँध देता है। यहीं से दोनों के बीच प्रेम की उत्पत्ति सूरदास ने दिखाई है :

> खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
> कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी।।

मोर मुकुट, कुंडल श्रवननि वर, बसन दमक दामिनि छवि छोरी।
गए स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।।
× × ×
सूर स्याम देखत ही रीझैं, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी।।

श्रीकृष्ण खेलते हुए ब्रज की गलियों में निकल गए। उन्होंने कमर में कछनी (छोटी छोती) और पीला वस्त्र बाँधा हुआ था तथा हाथ में लट्टू और डोरी लिए हुए थे। उनके सिर पर मोरपंख का मुकुट और कानों में सुंदर कुंडल थे। उनके दाँतों ने मानो बिजली की दमक छीन ली हो। खेलते-खेलते कृष्ण यमुना के किनारे पहुँच गए। उनके शरीर पर चंदन का लेप सुशोभित हो रहा था। उन्होंने वहाँ अचानक ही राधा को देखा जिनके नेत्र विशाल थे और जिन्होंने मस्तक पर रोली का टीका लगाया हुआ था। सूरदास कहते हैं कि राधा को देखते ही स्याम-सुंदर कृष्ण उन पर मुग्ध हो गए और दोनों के नेत्र परस्पर मिलते ही उन पर सम्मोहन व्याप्त हो गया।

राधा और कृष्ण के बीच उपजा यह आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। दोनों में मिलन की उत्कंठा तीव्र हो उठती है। सूरदास दोनों के हृदय में एक साथ झाँकते हैं और उनकी अनुभुतियों को यहाँ शब्द देते दिखाई पड़ते हैं :

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।
नैन-नैन की-हीं सब बातें, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ।।

क्रमशः राधा-कृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ होने लगता है। राधा भी किसी न किसी बहाने कृष्ण से मिलने का अवसर ढूँढ़ती रहती हैं। बाल्यकाल में खेलने का बहाना सबसे अधिक उपयुक्त और अचूक होता है :

खेलन कैं मिस कुंवर राधिका, नंद महरि कै आई।
सकुच सहित मधुरै करि बोली, घर हो कुँवर कन्हाई।।

सूर-काव्य में कृष्णलीला का एक अहम हिस्सा वेणु-प्रसंग का है। मुरली की मोहक धुन राधा और गोपियों के साथ-साथ समूचे ब्रजमंडल को अपने अधीन कर लेती है। एक ओर कृष्ण का मोहक रूप है तो दूसरी ओर उनके द्वारा बजाई गई मुरली की मधुर तान जिसके जाल में फँसकर गोपियाँ व्याकुल और अधीर हो उठती हैं। जो मुरली कृष्ण को अपने वश में रखती है, गोपियों का उसके प्रति ईर्ष्या-भाव भी स्वाभाविक है :

(i) मुरली मोहे कुंवर कन्हाई।
अँचवति अधर सुधा कीन्हे, अब हम कहा करै की माई।।

..........

अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै, बन की ब्याधि माँझ घर आई।।

मुरली ने कृष्ण को मोह लिया है। वह कृष्ण के अधर-सुधा का पान करती है और इस प्रकार उसने कृष्ण को अपने वश में कर लिया है। हे सखी अब मैं कौन या यत्न करूँ? कृ सूरदास कहते हैं कि गोपियों को कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। वन की यह व्याधि (बीमारी) आज घर में आ चुकी है।

(ii) मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भाँति नचावति।।

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में पड़कर लोकलाज और मर्यादा को त्याग देती हैं। उनको प्रेम-मार्ग में कोई बंधन स्वीकार्य नहीं है। गोपियों का मानना है कि जिस ब्रह्म ने इस शरीर की सृष्टि की है, उससे इस शरीर की दूरी क्यों? उससे लज्जा क्यों? पुष्टि मार्ग में शरीर को भी ब्रह्म की तरह नित्य माना गया है। इसीलिए यहाँ गोपियाँ सांसारिक लोकलाज को त्यागकर कृष्णमय हो जाना चाहती हैं :

> लोक सकुच कुल-कानि तजी।
> जैसे नदी सिंधु को धावै वैसेहि स्याम भजी।।
> मात-पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकु न डरी लजी।
> मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि के रंग मजी।
> सूर स्याम को मिलि चूनौ, हरदी ज्यौं रंग रजी।।

अर्थात हमने लोक-लाज और कुल-मर्यादा सबका त्याग कर दिया है। जिस प्रकार नदी दौड़ती हुई जाकर सागर से मिलती है उसी प्रकार हम कृष्ण में मिलकर कृष्णमय हो गई हैं। हमारे माता-पिता ने हमें अनेक प्रकार से डराया-धमकाया किंतु हम तनिक भी नहीं डरीं और न ही लज्जित हुईं। हम अब लोक-मर्यादा को नहीं मानती हैं क्योंकि हम पूरी तरह कृष्ण के रंग में रंग चुकी हैं। सूरदास कहते हैं कि ये कृष्ण के प्रेम में ऐसे कृष्णमय हो गई हैं जैसे हल्दी और चूना परस्पर मिलकर एक रंग हो जाते हैं।

सूरदास ने जितनी सजगता और कलात्मकता से संयोग-शृंगार का वर्णन किया है, वियोग-वर्णन में भी वही सजगता और कलात्मकता दिखाई पड़ती है। उन्होंने मानव-मन की अतल गहराइयों में झाँककर उनमें स्थित भावों तथा विभिन्न अंतदर्शाओं की सूक्ष्म-कलात्मक अभिव्यक्ति की है। सूरदास के काव्य में वियोग-वर्णन के मुख्यतः तीन स्थल हैं। पहला, नंद-यशोदा का वात्सल्यजनित वियोग; दूसरा, राधा तथा गोपियों का दांपत्य अथवा मधुर भक्तिजन्य विरह और तीसरा कृष्ण का माता-पिता, मित्रों, सखाओं, गोपियों तथा समस्त ब्रज प्रदेश के प्रति वियोग। ये सभी प्रसंग मिलकर सूरदास के विप्रलंभ शृंगार का एक संपूर्ण ताना-बाना तैयार करते हैं। कृष्ण के प्रवास के पश्चात् समूचे ब्रज के लिए वियोग की पीड़ा असह्य हो गई। गोपियों को संयोग के समय शीतलता देने वाला चंद्रमा अब वेदना में वृद्धि करने लगा है। सारी रात तारे गिन-गिन कर बीतने लगी है। एक गोपी अपनी यह वेदना प्रस्तुत करती हुई कहती है :

> माई मोको चंद लग्यौ दुःख दैन।
> कहँ वे स्याम कहाँ वै बतियाँ, कहँ वै सुख की रैन।।
> तारे गनत गनत ही हारी, टपकन लागे नैन।
> सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, विरहिनि को नहिं चैन।।

वियोग-शृंगार की दृष्टि से सूरदास का भ्रमरगीत विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य में से एक है। यहाँ विरहविदग्ध हृदय की जितनी वैविध्यपूर्ण अंतर्दशाएँ देखने को मिलती हैं, अन्यत्र शायद ही मिले। ब्रज पहुँचकर उद्धव जब गोपियों को कृष्ण का संदेश सुना रहे थे कि वहाँ एक भौंरा आ पहुँचा। यहीं से 'भ्रमरगीत' की शुरूआत हुई है। पूरा का पूरा 'भ्रमरगीत' वक्रोक्तियों से पटा पड़ा है। यहाँ गोपियाँ उद्धव के निर्गुण-ज्ञान का उपदेश सुनकर अपनी वाक् चातुरी से उद्धव को जगह-जगह निरुत्तर कर देती हैं। गोपियों द्वारा सगुण कृष्ण के प्रति प्रेम और समर्पण देखकर उद्धव फेर में पड़ जाते हैं। गोपियों के वाग्वैदग्ध्य को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने लिखा, ''सूरदासजी में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्रायः उतनी चतुरता और वाग्विदग्धता भी है। .... गोपियों के वचन में कितनी विदग्धता और विक्रता भरी है।''

गोपियाँ उद्धव के कहने से कृष्ण के प्रेम को कैसे भुला सकती हैं। कृष्ण की छवि को हृदय से निकालना सरल कहाँ है :

इहिं उर माखनचोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

केवल गोपियाँ ही नहीं, समूचा ब्रज कृष्ण के वियोग में तड़प रहा है। गोपियाँ उद्धव से विनती करती हैं कि वे शीघ्र कृष्ण को ब्रज ले आएँ। ऐसा करके उन्हें संतो के बीच यश की प्राप्ति होगी :

ऊधो स्यामहिं तुम लै आओ।
ब्रज-जन चातक प्यास मरत हैं, स्वाति बूँद बरसाओ।।

ऐसा नहीं है कि ब्रज का यह वियोग एकतरफा है। कृष्ण को भी ब्रज की स्मृतियाँ उतनी ही विह्वल करती हैं। उद्धव के ब्रज से मथुरा लौटने के पश्चात कृष्ण भी अपनी मनोदशा को उद्धव से साझा करते हैं :

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुंदर कगरी, अक कुंजन की छाहीं।।

(हे उद्धव मुझसे ब्रज भुलाए नहीं भूलता। यमुना का वह सुंदर किनारा और सुंदर वृक्षों की छाया अब भी मेरी स्मृतियों में बसी हुई है।)

समग्रतः सूरदास का श्रृंगार-वर्णन काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से सशक्त है। इसमें जितनी गहनता है उतनी ही व्यापकता भी विद्यामान है। सूरदास के काव्य में प्रेम-श्रृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

**बोध प्रश्न**

7. सूरदास के वाल्सत्य वर्णन की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

8. सूर के काव्य अभिव्यक्त गोपियों के वियोग का वर्णन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 7.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार, ''लोक मनुष्य-समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य-संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अंहकार से शून्य है, और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी हिंदी साहित्य की भूमिका में लोक को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''लोक का अर्थ जनपद या ग्रामों में फैली वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोक - अधिक सरस और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।''

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रज प्रदेश को श्रीकृष्ण की लीलाभूमि मानकर इसकी सीमा चौरासी कोस मानी है। मथुरा, वृंदावन और उसकी समीपस्थ स्थानों को मिलाकर बने भू-प्रदेश को ब्रजप्रदेश या ब्रजमंडल कहा गया है। 'सूरसागर' में ब्रज का लोकजीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। सूरदास के काव्य में मध्यकालीन ब्रज-संस्कृति के दो पक्ष मुख्य रूप से उभरकर आते हैं। एक नगर-संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व मथुरा जैसे नगर करते हैं और दूसरी ग्रामीण संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व ब्रज का ग्रामीण अंचल करता है, जो किसानों-चरवाहों का अंचल है, जहाँ पशुपालन या गोचारण कृषि-कर्म का ही एक अनिवार्य हिस्सा है। सूर के काव्य में ब्रज का यह ग्रामीण अंचल अपनी विविधता और सजीवताा के साथ उपस्थित है। 'सूरसागर' के आरंभिक विनय के पदों से ही किसान-जीवन की अनेक वास्तविकताएँ दिखाई पड़ती है, जिनका अपना एक निश्चित ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भ है। किसान का मुख्य कर्म खेती होती है। सूरदास अपनी परिवेशीय संस्कृति के प्रति अत्यंत सजग साहित्यकार हैं। वे कृषि-कार्य की एक-एक प्रक्रिया से अवगत हैं- जिसका बोध उन्होंने स्थान-स्थान पर कराया है :

प्रभु जू यौं कीन्हीं हम खेती।
बजर भूमि गाउं हर जोते, अरु जेती की तेती।।
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौं।
अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे, माया जूआ दीन्हौं।।
इंद्रिय-मूल-किसान, महातृन-अग्रज-बीज बई।
जन्म जन्म की विषय-वासना उपजत लता नई।।

अर्थात् हे प्रभु! संसारिक जीवन में रहते हुए मैंने इस प्रकार की खेती की है। ये सांसारिक जीवन बंजर भूमि है, जिसे हर गाँव वाले ने जोता है। जिसका परिणाम यह है कि बंजर की बंजर ही रह गई। काम और क्रोध नामक दो शक्तिशाली बैलों ने मिलकर राजसी और तामसी दोनों प्रकार के कर्मों की खेती की। अत्यधिक कुबुद्धि से युक्त हमारा मन इन बैलों को हाँकने वाला था, जिसने इनके कंधों पर माया रूपी जुआ रख दिया। मूल इंद्रियाँ किसान बनीं जिन्होंने महातृण (फसल) के लिए अपने अनुसार बीज बो दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि जन्म-जन्मांतर की विषय-वासनाओं की नई लताएँ लहलहाने लगीं।

किसान को खेती के कार्य में जिन-जिन वस्तुओं, लोगों व व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता है, उन सबका एक-एक करके उल्लेख सूरदास ने इस पद में किया है :

पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-विधान जौ कीनौ।
अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ।।
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ जौन दियैं मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहे, तातैं ठाकुर लूटौं।।

पद में सूरदास कहते हैं कि अत्यंत प्रबल पंच इंद्रिय रूपी प्रजा ने शक्तिशाली मन से मिलकर कर्म विधान की रचना की। अब यम रूपी अधिकारी कर्मों का लेखा-जोखा माँगता है, जिसके समक्ष मैं अधीन और बेबस हूँ। मेरे घर में तुम्हारे भजन-स्मरण की पूँजी भी नहीं है जिसे देकर मैं छूट सकूँ। धर्म की जमानत देने वाला भी कोई नहीं मिलता, फलस्वरूप ठाकुर रूपी यमराज मुझे लूट रहा है।

यहाँ अधिकारी, पटवारी, जमींदार सभी का उल्लेख उन्होंने किया है जो तत्कालीन कृषक-वर्ग का शोषण कर रहे थे। सूरदास का समाज निश्चित रूप से खेतिहर समाज रहा होगा। फलतः किसानों के जीवन की छोटी से छोटी चीज को उन्होंने जाने-अनजाने आत्मसात कर लिया था। सूरदास जब भी भावमग्न होकर कविता करते थे तो ये छोटी-छोटी चीजें स्वतः ही कविता में अपना स्थान बना लेती थीं।

सूरदास के कृषि-ज्ञान को पुष्ट करने वाला एक और पद यहाँ प्रस्तुत है, जो गोपी-उद्धव-संवाद से संबंधित है। निर्गुण और योग-साधना का उपदेश सुनकर गोपियों की प्रतिक्रिया इस पद में देखी जा सकती है :

आए जोग सिखावन पांड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यों बनजारे टांड़े।।

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान, कुम्हाड़े।।

सूरदास के कृष्णलीला-गान में गोप-ग्वालों के साथ गाएँ भी सहज रूप में उपस्थित हैं। गोचारण सूरकाव्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग है। यहाँ परमब्रह्म श्रीकृष्ण चरवाहे की भूमिका में वर्णित हैं। ग्वालों-चरवाहों के जीवन में गाय का क्या महत्त्व होता है, सूरदास इससे भलीभाँति परिचित हैं। गायों के स्वभाव तथा उनके विविध प्रकारों से सूरकाव्य भरा पड़ा है :

आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह कुमुद घन जैऐ।
सीतल कुंज कदम की छहियां, छाक छहूँ रस खैऐ।
अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इक ठौरी।
धौरी, धूमरि, राती, रौंही, बोलि बुलाइ चिन्हौरी।।

सूरकाव्य में ब्रज की संस्कृति का आकर्षण असीम है। मथुरा का राजसी जीवन भी कृष्ण को फीका लगता है क्योंकि ब्रज का लोकजीवन उनके अंतर्मन से निकलता ही नहीं है।

यमुना तट पर सखाओं के साथ खेलने तथा छककर माखन खाने आदि की स्मृतियाँ उनकी आँखों में आँसू भर देती हैं। वे सत्यभामा से कहते हैं :

सुनि सतभामा सौंह तिहारी।
जब-जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी।।
वे जमुना वे सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी।
वृंदावन की गुल्मलता हैं, मन मधुकर की प्यारी।।

ब्रज की मोहक प्रकृति और संस्कृति सूरदास के हृदय में गहरे बैठी है। यही कारण है कि उनके काव्य में लोकजीवन की बड़ी ही धारदार अभिव्यक्ति मिली है। सूर की कविता में पशुपालन, गोचारण, यमुना-तट-विहार, माखनलीला आदि प्रसंग किसान-चरवाहा संस्कृति का एक संपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला की अधिकांश पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है इसलिए वहाँ की लोक मान्यताएँ भी उनके काव्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर सकी हैं। काग का बोलकर उड़ जाना, भुजा फड़कना, काग का संदेश वाहक होना आदि मान्यताएँ सूर के लोक-अनुभव से उनके काव्य में आई हैं। सूरदास की कविता में मानव जीवन के अनेक पारंपरिक संस्कारों को भी अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर हर्षित-आनंदित ब्रज समाज का उत्सव देखने योग्य है। जन्म के उपरांत नार-छेदन का प्रसंग आया है, जिसमें दाई यशोदा से पुत्र-जन्म का नेग माँगती है। वह सोने का हार लिए बिना नार नहीं काटेगी :

जसुदा नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, यहै आजु हौं लैहौं।।

इसके उपरांत शिशु के नामकरण, अन्नप्राशन आदि का वर्णन भी सूरकाव्य में लोक-परंपराओं के पूर्णतः अनुरूप आया है :

आजु कान्ह करिहैं अनप्राशन।
मनि कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन।।

ये संस्कार कृष्ण के संदर्भ में भले ही राजसी लग रह हों, ब्रज के साधारण समाज में भी इनका यथा सामर्थ्य आयोजन होता था। सूरदास ने इन संस्कारों की सूचना मात्र न देकर इनका विस्तार से वर्णन किया है।

ब्रज के लोकजीवन में मनाए जाने वाले तीज-त्योहारों और उत्सवों की झाँकी भी सूर के काव्य की एक अप्रतिम विशेषता है। 'सूरसागर' में वर्णित फाग के कुछ दृश्य यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) वृंदावन खेलत हरि होरी।
बात ताल मृदंगा, झाँझ डफ, नंदलला वृषभानु किसोरी।।

(ii) हरि संग खेलत हैं सब फाग।
इहि मिस, करत प्रगट गोपी, उर अंतर के अनुराग।।

इस प्रकार सूर के काव्य में फाग आदि त्योहारों के वर्णन की बहुलता है। यहाँ उनके पद लोकगीतों से मिलकर एकाकार हो गए हैं। ये पद पारंपरिक लोकगीतों का अनुसरण जान पड़ते हैं।

सूरदास के काव्य में मध्यवर्गीय परिवार और उसका गृहस्थ जीवन केंद्र में है। वे सही अर्थों में गृहस्थ मानस के कवि हैं। कृष्णलीला का पूरा विधान ब्रज के लोक जीवन की निधि

है। सूर के काव्य में ब्रज का ग्रामीण अंचल कभी आँखों से ओझल नहीं हुआ है। लोक जीवन से ली गई शब्दावली, वार्तालाप-शैली, लोकोक्ति-मुहावरे, बिंब, प्रतीक आदि से सूर का काव्य लोक काव्य बन पड़ा है। समग्रतः सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है। ब्रज के धर्म, दर्शन, कर्म, साहित्य और भाषा का लोकव्यापी रूप सूर के काव्य में मिलता है।

## 7.7 सूरदास की भाषा और काव्य-सौंदर्य

### 7.7.1 भाव-सौंदर्य

सूरदास में जितनी सहृदयता या भावुकता थी उतनी ही वाग्विदग्धता भी थी। चूँकि सहृदयता का संबंध कवि के भाव पक्ष से होता है और वाग्वैदग्ध्य का संबंध उसके अभिव्यक्ति पक्ष से होता है इसलिए भक्त कवि सूरदास की कविता में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का सौंदर्य उत्कृष्ट है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन्हें कलात्मक रूप से व्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। उनके भाव पक्ष के अंतर्गत मुख्यतः वात्सल्य, शृंगार और भक्ति का वर्णन आता है। वस्तुतः उनकी भक्ति की विस्तृत परिधि में ही वात्सल्य और शृंगार वर्णन आते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में सूरदास सिद्धहस्त थे।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन-क्रम में सर्वप्रथम उनके जन्म तथा उसके पश्चात उनके शिशुरूप का वर्णन किया है। कृष्ण जन्म की बधाई से लेकर उनके पालने में झूलने तक के अनेक प्रसंगों को सूर ने अपने काव्य में बड़ी सजगता और जीवंतता से अंकित किया है। माँ यशोदा द्वारा शिशु कृष्ण को पालने में झुलाने का यह दृश्य अनुपम सौंदर्य से युक्त है :

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ, मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै।।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै तोको कान्ह बुलावै।।

माँ यहाँ अपने छोटे से शिशु को पालने में सुलाने का यत्न कर रही है। वह लोरी की मधुर धुन सुनाकर निंदिया को बुलाती है। उसके शीघ्र न आने पर उससे सवाल भी करती है। सूरदास इस अनूठे दृश्य को अपनी कल्पना में सँजोते हैं और उसे शब्द देते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि जो सुख बड़े-बड़े ऋषियों-देवों को भी उपलब्ध नहीं है वह यहाँ माँ यशोदा को सहज में प्राप्त हो गया है। सूरदास के वात्सल्य वर्णन के पीछे जो सबसे बड़ी उनकी ताकत काम कर रही थी, वह थी उनके द्वारा मातृहृदय के भीतर की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की मनोवैज्ञानिक पहचान।

कृष्ण के मथुरा-गमन-प्रसंग में वात्सल्य के वियोग पक्ष की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण-वियोग में व्याकुल माँ यशोदा की व्यथा सूरकाव्य में जगह-जगह फूट पड़ी है। यशोदा कृष्ण की स्मृतियों में विह्वल होती हैं- 'है कोऊ ऐसी भाँति दिखावै। किंकिन सबद चलति धुनि, रुनझुन ठुमुकि गृह आवै।' पुत्र चिंता जब असह्य हो जाती है तो वे उद्धव से देवकी को संदेश भी भेजती हैं, 'संदेसौं देवकी सो कहियो'। वे केवल पुत्र कृष्ण का सान्निध्य चाहती हैं, इसके लिए वे वसुदेव की दासी तक बनने को तैयार हैं।

वृंदावन की उन्मुक्त प्रकृति के मध्य सखाओं और गायों के साथ विचरण करते कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सूरदास को प्रिय विषय रहा है। गोचारण-प्रसंग के अनेक मनोहारी दृश्यों का अंकन सूर ने अपने काव्य में किया है। दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :

(i) मैया री मोहिं दाऊ टेरत।
मेको बनफल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।

(ii) मैया हौं न चरैहो गाय।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पांय पिराय।।

सूरदास का शृंगार-वर्णन उनके भावपक्ष का अभिन्न अंग है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सूरकाव्य के शृंगार के अंतर्गत आया हुआ प्रेम अचानक उपजा हुआ प्रेम नहीं है। इस मनोवृत्ति का क्रमशः विकास हुआ है। राधा और कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। दोनों के बीच का यह आकर्षण दीर्घ साहचर्य का भी परिणाम है। ब्रज की गलियों में चुहलबाजी, छेड़छाड़, गोदोहन में राधा-कृष्ण की पारस्परिक नोक-झोंक आदि क्रिया व्यापार यहाँ इतने स्वाभाविक और जीवंत है कि पाठक इन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

सूरदास ने जितनी दक्षता और प्रौढ़ता का परिचय संयोग-शृंगार के वर्णन में दिया है उतनी ही वियोग-शृंगार के वर्णन में। विस्तार और गंभीरता वियोग वर्णन में भी उसी प्रकार की है। सूरकाव्य में वियोग वर्णन का आरंभ वात्सल्य-वियोग से हुआ है। कृष्ण-वियोग का दुख माँ यशोदा को इतना है कि वे नंद से लड़ने-झगड़ने लगती हैं। सूर ने परिस्थितिजन्य इस क्षोभ की बड़ी ही मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति की है। यशोदा कहती हैं, ''फाटि न गयी ब्रज की छाती कत यह सूल सह्यो।''

इस प्रकार वात्सल्य वियोग से आरंभ होकर सूर का वियोग वर्णन गोपियों के वियोग पर केंद्रित होता है। सूर ने यहाँ परंपरागत विरह दशाओं का चित्र तो प्रस्तुत किया ही है, अपनी नवीन दृष्टि का भी परिचय दिया है। ब्रज का कोना-कोना कृष्ण के विरह में दग्ध दिखाई पड़ता है। संयोग काल में सुख और शीतलता प्रदान करने वाली प्रकृति वियोग में आग उगलने वाली प्रतीत होती है। अपनी विरह-व्यथा को कृष्ण तक पहुँचने की कामना से एक गोपी उद्धव से कहती हैं, 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।' विरह कातर गोपियाँ हरे भरे मधुबन को भी कोस डालती है, 'मधुबन तुम कत रहत हरे।' कृष्ण का वियोग केवल गोपियों को ही व्यथित नहीं करता, ब्रज की प्रकृति भी इस दुख में बराबर की साझीदार बन पड़ी है। गोपियाँ यमुना की विरह-दशा को उद्धव से कहती हैं, 'देखियत कालिंदी अति कारी। कहियो पथिक जाय उन हरि सों, भई विरह जुर जारी।।

इस प्रकार सूरदास के काव्य का संवेदना पक्ष अत्यंत व्यापक तथा समृद्ध है। संवेदना के सभी उत्पादन बहुत की कुशलता से नियोजित किए गए हैं।

### 7.7.2 काव्यभाषा

सूरदास के काव्य में ब्रज-प्रदेश की लोक प्रचलित भाषा अपने विविध गुणों के साथ उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। मध्यकालीन सामंती समाज-व्यवस्था में भाषा-व्यवहार की दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था। समाज का अभिजात वर्ग संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में रचित साहित्य का रसास्वादन करता था, जबकि सामान्य जनता की समझ से ये भाषाएँ बहुत दूर थी। भक्ति-आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि भाषा के स्तर पर भी थी। लोकभाषा को साहित्य-सृजन की भाषा बनाने में इस आंदोलन ने बड़ी भूमिका निभाई। सूरदास इसी आंदोलन की उपज हैं, जिन्होंने लोक व्यवहृत ब्रजभाषा में साहित्य-सृजन की एक नई परंपरा की शुरूआत की। ब्रजभाषा-साहित्य की यह परंपरा आगामी चार सौ साल तक अबाध गति से चलती रही। सूरदास की काव्यभाषा लोक-व्यवहार की भाषा है। इसलिए उसमें सामाजिक जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है।

सूरदास के काव्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कोमलता है। भाषा और भावों का ऐसा कोमल संबंध सूरदास के शब्द-चयन और सटीक प्रयोग के कारण हो

सका है। 'सूरसागर' के पदों में यह भाषागत कोमलता सर्वत्र देखी जा सकती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

मोहन हौं तुम ऊपर वारी।
कंठ लगाई लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी।।

सूर के काव्यभाषा की एक अन्य विशेषता है- गुणानुकूल शब्द-योजना की। उन्होंने अपनी भाषा में भावों के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद- तीनों गुणों का निर्वाह किया है। अपने कोमल शब्द-चयन के द्वारा भी ओज की अभिव्यक्ति सूर जैसे समर्थ कवि द्वारा ही संभव थी :

जा जा रे भौंरा दूर दूर।
रंग रूप औ एकहि मूरति मेरो मन किया चूर चूर।।

सूरदास ने भ्रमरगीत-प्रसंग में जहाँ दार्शनिक विचार व्यक्त किए हैं अथवा कृष्ण के सौंदर्य पर पद-रचना की है वहाँ संस्कृत की तत्सम शब्दावली का सफल प्रयोग उन्होंने किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

नैननि नंद नंदन ध्यान।
पानि पल्लव रेख गनि गुन अवधि विविध विधान।।
चंद कोटि प्रकास मुख अवतंस कोटिक भान।
कोटि मन्मथ वारि छवि पर निरखि दीजत ध्यान।।

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी-फरसी को भी अत्यंत कुशलता से अपनाया है। तरवारि, हद, गुमान, दगा, दीवान, मेहमान, दस्तक, फौज जैसे सैकड़ों शब्द सूरकाव्य में स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। लोकोक्तियों-मुहावरों के प्रयोग ने प्रचलित रहे हैं। भ्रमरगीत-प्रसंग में तो इन मुहावरों की बाढ़-सी है। कहावतों-मुहावरों पर सूर ने अपनी भाषा की लाक्षणिक कोमलता का अद्‌भुत कलेवर चढ़ा दिया है।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(i) काकी भूख गई बयारि भखि, बिना दूध घृत माँड़ें।।
सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाड़े।।

(ii) वरू वै कुब्जा भलो कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधो मो, कछुक सिरात हियो।।

(iii) तुम सों प्रेम कथाका कहिबो, मनहु काटिबो घास।।

सूरदास की काव्य भाषा की एक बड़ी विशेषता उनकी वाग्विदग्धता है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों की उक्तियाँ खीझ जाती हैं। उनमें से एक गोपी व्यंग्य में उद्धव से जो कहती है उसमें कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के लिए बहुत ही उचित उपमाएँ दी गई हैं :

ऊधो अब हम समुझि भई।
नंदनंदन के अंग अंग प्रति, उपमा न्याय दई।।
कुंतल कुटिल भंवर भामिनिं वर मालति मुरैलई।।
लजत न गहरू कियौ तिन कपटी जानी निरस भई।।

यहाँ कृष्ण के घुँघराले केश कपटी भ्रमर की भाँति हैं। भौंरा पहले तो मालती पर आकृष्ट

होकर उसे फुसला लेता है तत्पश्चात् उसका रस चूसकर उसे त्याग देता है। सूरदास की वाग्विदग्धता के कुछ और उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) निरगुन कौन देस को वासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझत साँच न हाँसी।।

(ii) इहिं उर माखन चोर गड़े।
अब कैसेहुँ निकस नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

इस प्रकार 'भ्रमरगीत' में गोपियों का एक-एक कथन सूर की वाक्-चातुरी-क्षमता का प्रामाणिक उदाहरण है। यहाँ गोपियाँ कभी निर्गुण योग साधना के व्यावहारिक पक्ष की जटिलताओं पर प्रहार करती हैं, वो कभी सहज-सरल सगुण प्रेम की वकालत करती दिखाई पड़ती हैं।

सूरदास का काव्य अलंकारों का महासागर है। इसमें भी सबसे बड़ी बात यह है कि अलंकार यहाँ लाए नहीं गए हैं, अपितु सूर की भावाभिव्यक्ति में सहायक होने पर स्वतः ही आ गए हैं। भाव-विभोर होकर सूरदास जो कुछ भी कहते हैं, अलंकारों की वहाँ झड़ी सी लग जाती है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा सूरदास के प्रिय अलंकार हैं। रूपकातिशयोक्ति अलंकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें उपमानों के द्वारा राधा ने नख-शिख-सौंदर्य का सुंदर वर्णन है :

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल-कमल पर गजवर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता अमृत फल लाग।।

वस्तुतः सूर की काव्यभाषा रूपक प्रधान भाषा है। यहाँ रूपक मात्र अलंकार नहीं है बल्कि लाक्षाणिकता का सारा सौंदर्य उन्हीं पर निर्भर है। उनकी प्रतीक-योजना का उत्कृष्ट रूप 'भ्रमरगीत' में दिखाई पड़ता है। चित्रात्मकता तथा बिंब-विधान सूर की काव्यभाषा के अंगभूत तत्व हैं। उनका 'सूरसागर' रूप-रस-गंध-स्पर्श के बिंबों का विपुल कोश है।

**बोध प्रश्न**

9. सूर के काव्य में ब्रज का लोक जीवन किन रूपों में आया है? सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

10. सूरदास के काव्य भाषा की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

## 7.8 सूरदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

**विनय का पद :**

**उद्धरण 1**

**अबिगत गति कछु कहत न आवै।**
**ज्यौं गूंगै मीठे फल को रस अन्तरगत हीं भावै।**
**परम स्वाद सबही तु निरंतर अमित तोश उपजावै।**
**मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।**
**रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।**
**सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन लीला-पद-गावै।**

**शब्दार्थः** अविगत-निर्गुण, अव्यक्त। अंरगत-हृदय। अमित-अपार। तोष-संतोष। अगम-जहाँ तक पहुँचा न जा सके। जुगति-युक्ति। निरालंब-आधार रहित।

संदर्भ : प्रस्तुत पद 'सूरसागर' में से लिया गया है। इसके रचयिता महाकवि सूरदास जी हैं।

**प्रसंग :** सूरदास सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस पद में उनहोंने निर्गुण ब्रह्म की साधना का खंडन एवं सगुण ब्रह्म की भक्ति की स्थापना के कारणों पर अपना मत व्यक्त किया है। सगुण ब्रह्म की लीला के पदों का गायन करना ही उन्हें अभीष्ट है।

**व्याख्या :** सूरदास जी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त एवं अजन्मा है। उसके मूर्त रूप का शब्दों के माध्यम से वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसे निराकार ब्रह्म को ज्ञान योग; हठयोग से साधना प्राप्त कर लेने वाले साधन की स्थिति उसे गूंगे व्यक्ति की भाँति ही है जो मीठा फल चखने के पश्चात उसकी मिठास की अनुभूति तो अपने हृदय के भीतर ही कर सकता है। पर दूसरों के समक्ष उस अनुभूति के अनुभव का वर्णन नहीं कर सकता। निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति का परम सुख साधक के हृदय में अपार संतोष एवं आनंद उत्पन्न करता है, परन्तु साधक उस आनंद की अनुभूति एवं ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किसी से

नहीं कर सकता। वह वाणी के माध्यम से यह व्यक्त करने में असमर्थ रहता है कि उसे ब्रह्म के कौन-से स्वरूप की अनुभूति हुई है किन्तु सगुण भक्त अपने ईश्वर के रूप, गुण, सौन्दर्य एवं लीलाओं का वर्णन अन्य भक्तों कि समक्ष कर कसता है।

सूरदास जी निराकार ब्रह्म को अगम्य बताते हुए कहते हैं कि न तो उसका कोई रूप है न गुण है न रेख है न जाति है तथा न ही उसे प्राप्त करने की कोई युक्ति है। बिना किसी सहारे के ऐसे ब्रह्म का साक्षात्कार करना अत्यंत दुष्कर है। अंत में सूर सगुण की भक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए कहते हैं कि सभी प्रकारों से विचार करके देख लेने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि निर्गुण की उपासना कठिन है। इसलिए सगुण भगवान की लीला को पदों में गायन के लिए ही प्रस्तुत करना उचित है।

**विशेष**

1. प्रस्तुत पद एक प्रकार से सगुण भक्ति की ओर जाने के कारणों का आशय स्पष्ट करता है।
2. निर्गुण ब्रह्म निराकार-अगोचर एवं अव्यक्त है। उसका स्वरूप पूर्ण एवं सगुण नहीं है। ऐसी स्थिति के कारण उसे लोक ह्दय में स्थान मिल पाना कठिन है।
3. सूर काव्य की चारों विशेषताओं का उल्लेख इस पद में मिलता है- 1 सगुण, 2 लीला-वर्णन, 3 मुक्तक पद परंपरा, 4 संगीत परंपरा का पालन-गायन।
4. 'ज्यों गूंगै पीठे फल' की उत्प्रेक्षा के द्वारा सूर ने भाव को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।
5. वैष्णव परंपरा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन से आनंद का जो स्रोत फूटता है- वह जनता के मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
6. बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम है।

**उद्धरण 2**

**मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ।**
**ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।**
**देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।**
**हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छीका केहि विधि पायौ।**
**मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ।**
**डारि साँटि, मसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।**
**बाल-विनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति- प्रताप दिखायौ।**
**सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।**

**शब्दार्थ** : ख्याल-खेलने। भाजन- बर्तन। नान्हे-नन्हे, छोटे। दुरायो- छिपाया। सींके-छींका। कर-हाथ। साँटि-छड़ी। बिरचि-ब्रहमा। मोद-आनंद कीड़ा।

**संदर्भ** : प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर के दशम स्कन्ध से लिया गया है।

**प्रसंग** : सूर के बालकृष्ण अत्यंत नटखट हैं। मक्खन उन्हें अत्यंत रुचिकर लगता है। स्वयं खाने एवं मित्रों को खिलाने हेतु उन्हें चोरी भी करनी पड़ती है। एक दिन कृष्ण एक

ग्वालिन के घर मक्खन लिपटे हुए कृष्ण को पकड़ कर यशोदा के समक्ष ले जाकर उनकी शिकायत करने लगी। यशोदा को कृष्ण के इन कार्यों के कारण अनेक बार लज्जित होना पड़ा था। आज जब मुँह पर मक्खन लपेटे और हाथ में दोना पकड़े कृष्ण को देखा अत्यंत क्रोधित हुई एवं कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठायी। अपने बचाव हेतु कोई रास्ता न देखकर कृष्ण अपनी सफाई देने लगे।

**व्याख्या** : कृष्ण अत्यंत दुलार भरे भाब्दों में माँ से अनुननय-विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मक्खन खाया। मेरे साथ मेरे सखा खेलते खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से रगड़ देते हैं।

मैं ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ। अब तू ही बता कि मैं छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता।

इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शांत न हुआ, तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया। सूर के चतुर कृष्ण को एक युक्ति सूझी। उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्खन पोंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा लिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ भोले नटखट रूप का कौतुक देखकर यशोदा ह्रदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गई। सारा क्रोध विस्मृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया। कृष्ण ने बाल क्रीड़ाओं के आनंद से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन कराया।

अंत में सूर कहते हैं कि बाल लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सल्य सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सकते। यह सुख तो अवर्णनीय और सह्रदय से अनुभूत करने वाला है।

**विशेष**

1. प्रस्तुत पद में वात्सल्य रस के दर्शन होते हैं। कृष्ण आलंबन यशोदा आश्रय, उनकी क्रीड़ाएँ उद्दीपन विभाव हैं।
2. इस पद में सूर ने कृष्ण की बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सह्रदयता एवं विदग्धता से बिंब या भाव-चित्र उपस्थित किया है।
3. मैया मोरी मैं नहिं 'माखन खायो' में अनुप्रास अलंकार है।
4. बालकों की अन्तर्वृत्तियों के प्रकृत निरूपण में सूर अद्वितीय हैं। यह पद इस तथ्य का प्रकाशन करता है।
5. ब्रह्म इस लोक में बाल लीला करता है- आनंद देता है। यह सुख धरती पर ही सशरीर पाया जा सकता है।
6. ब्रज-संस्कृति का प्रतीक 'सींका' है जिसमें सूर बराबर लोक-चेतना का संकेत देते हैं।
7. वैष्णव परंपरा और भक्ति आंदोलन में सगुण भक्तों ने बाल-ब्रह्म की उपासना पद्धति को विशेष महत्व दिया है।
8. ब्रजभाषा की लोक-संगीत परंपरा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

**बूझत स्याम कौन तू गोरी।**
**कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी।।**
**काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहहिं आपनी पौरी।**
**सुनत रहतिं स्रवननि नंद ढोटा, करत फिरत माखनदधि चोरी।।**
**तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहें, खेलन चलौं संग मिलि जोरी।**
**सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।।**

**शब्दार्थ** : ब्रज खोरी-ब्रज की गलियों में। ब्रजतन-ब्रज में। स्रवननि-कानों में। बूझत-पूछना। काकी-किसकी। पौरी-ड्योढ़ी। ढोटा-पुत्र। भुरइ-भुला दिया।

**संदर्भ** : पूर्व की भाँति।

**प्रसंग** : सूर के कृष्ण पूर्णावतार हैं एवं राधा उनकी शक्ति है। कृष्ण एवं राधा प्रथम परिचय में ही एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। राधा एवं कृष्ण का यह प्रथम मिलन ब्रज में होता है। इससे पहले कृष्ण ने राधा को कभी देखा न था। अतः उसके प्रति सहज उत्सुक होना स्वाभाविक था।

**व्याख्या** : अपनी उत्सुकता का भामन करने के लिए कृष्ण राधा से पूछते हैं कि हे सुंदरी! तेरा परिचय क्या है। तू कौन है, कहाँ रहती है तथा किसकी पुत्री है। आज से पहले ब्रज की गलियों में तुम्हें कभी नहीं देखा। कृष्ण के इतना पूछने पर राधा उत्तर देने को तत्पर होती है। सूर की राधा में भोलापन होने के साथ-साथ वाक्‌चातुर्य भी है। वह व्यंग्य करती है कि ब्रज में वह क्यों आए ? ब्रज में तो उसके लिए कोई आकर्षण नहीं। वह तो अपने घर की चौखट के भीतर ही क्रीड़ा करती थी। परंतु एक बात वह अवश्य सुनती रहती थी कि ब्रज में नंद का पुत्र अत्यंत नटखट है जो मक्खन और दही की चोरी करता फिरता है। राधा का यह सीधा और निष्कपट उत्तर सुनकर कृष्ण राधा पर और रीझ जाते हैं। वे उसके सभी उलाहने एवं व्यंग्य सहने को तत्पर हैं। चोर तो वे नहीं, पर राधा के कहने पर स्वयं को चोर कहलाने को भी तैयार हैं। राधा को अपनी रसीली बातों में भुलाकर वे उससे साथ मिलकर खेलने की अनुनय विनय करते थे।

अंत में सूरदास कहते हैं कि उनके प्रभु श्री कृष्ण तो रसिकों के शिरोमणि एवं लीला नायक हैं। वे सब को अपनी प्रेम लीला भाक्ति से मोह लेते हैं। राधा को भी उन्होंने मोहित कर लिया और दोनों के हृदय में प्रेम जागृत हो गया।

### विशेष

1. इस पद में शृंगार रस के संयोग पक्ष का अंकन हुआ है।
2. राधा की अपार-रूप-माधुरी को देखकर स्वयं कृष्ण आश्चर्यचकित हो जाते हैं। विस्मय, आश्चर्य का यह रमणीय भाव कथन भंगिमा से उभारा गया है।
3. राधा कृष्ण की आल्हादिनी शक्ति हैं। किन्तु लीला भाव के लिए उसे एक विशेष छवि के साथ प्रस्तुत किया गया है।
4. किशोर-किशोरी के सहज अनुभावों का इस पद में मूर्त रूप से अंकन हुआ है।
5. सूरदास के काव्य का केन्द्रीय भाव है-प्रेम। इस प्रेम की व्यापक छवियों का सरस उक्तियों से वर्णन करने में वे कितने सिद्धहस्त कवि हैं यह पदद उनकी कवि शक्ति का सच्चा प्रमाण है।
6. कथ्य और कथन की स्वाभाविकता में यह पद अनुपम है।

**उद्धरण 4**

**निसिदिन बरसत नैन हमारे।**
**सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे।**
**दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर कपोल भए कारे।**
**कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर-बिच बहत पनारे।**
**'सूरदास' प्रभु अंबु बढयौ है, गोकुल लेहु उबारे।**
**कहँ लौं कहौं स्यामघन सुन्दर बिकल होत अति भारे।**

**शब्दार्थ** : निसिदिन-दिन-रात। पावस-वर्षा ऋतु। सिधारे-चले गए। दृग-नेत्र। कारे-काले। पनारे-छोटे नाले। अंबु-जल। बिकल-व्याकुल

**संदर्भ** : प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के 'भ्रमरगीत' प्रसंग से लिया गया है।

**प्रसंग** : कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियाँ रात-दिन उनकी वियोग व्यथा में घुलती रहती हैं। कृष्ण ने अपने परम मित्र उद्धव को अपना दूत बनाकर गोपियों के पास भेजा। उद्धव को अपने ज्ञान योग पर अत्यंत गर्व था। उद्धव ने गोकुल जाकर गोपियों को समझाया कि वे कृष्ण का ध्यान त्यागकर उस निर्गुण ब्रह्म की साधना करें जो घट-घट में व्याप्त है। गोपियों का प्रेम तो कृष्ण के प्रति अनन्य था ही, वे उनके अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान कैसे करतीं। कृष्ण का वियोग उनके हृदय को व्यथित कर ही रहा था। हृदय की व्यथा अश्रु बनकर नेत्रों से प्रवाहित होती रहती थी। उनकी इसी प्रेम दशा का वर्णन प्रस्तुत पद में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से किया है।

**व्याख्या** : गोपियों ने अपनी वियोग व्यथा का वर्णन करते हुए पावस ऋतु की वर्षा से अपने नेत्रों की अश्रुधारा की तुलना की है। वर्षा ऋतु में सदैव बादल छाए रहते हैं तथा बीच-बीच में वर्षा की झड़ी लग जाती है। एक बार वर्षा प्रारंभ होने पर कुछ समय तक लगातार होती रहती है।

इसी प्रकार कृष्ण की स्मृति ही वे बादल हैं जो उमड़-घुमड़कर गोपियों के हृदय पर छाते हैं तथा उनके नेत्रों से अश्रु वर्षा प्रारंभ होने लगती है। यह अश्रु धारा वर्षा ऋतु की झड़ी के समान ही अनवरत प्रवाहित होती रहती है। नेत्रों के अविरल प्रवाह के कारण गोपियों के नेत्रों का काजल नेत्रों में नहीं रह पाता अपितु वह बह कर उनके गालों तथा वक्षस्थल तक को काला कर देता है। जिस प्रकार वर्षा का जल छोटे-छोटे नालों का रूप धारण करके पृथ्वी पर बहने लगता है उसी प्रकार गोपियों के नेत्रों से होने वाली अश्रु वर्षा की झड़ी पनालों की भाँति वक्षस्थल से प्रवाहित होती रहती है। इस प्रवाह के कारण गोपियों की चोली कभी सूख ही नहीं पाती। जिस प्रकार अधिक वर्षा होने पर जल बह कर बाढ़ का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार गोपियाँ अपने प्रिय को आगाह कर रही हैं कि उनके नेत्रों से बहता जल इतना बढ़ गया है कि पूरे गोकुल को डुबा सकता है। अतः हे कृष्ण! हमें दर्शन देकर हृदय में घुमड़ने वाले बादलों को शांत करो जिससे निरंतर होने वाली अश्रु वर्षा रुक सके।

अंत में सूर कहते हैं कि गोपियों ने इतना कुछ तो कह दिया है अब कहाँ तक कहें। हे घनश्याम! केवल गोपियाँ ही नहीं अपितु पूरे गोकुल के निवासी तुम्हारे वियोग में व्याकुल हो रहे हैं।

**विशेष** :

1. सूर के विरह वर्णन में हृदय-पक्ष की प्रधानता है। यह पद उसी सच्चाई को पुष्ट करता है।

2. 'सदा रहति पावस ऋतु हम पै' में रूपक अलंकार है। अश्रु रूपी वर्षा गोपियों के नेत्रों से प्रवाहित होती रहती है।

3. श्रृंगार पक्ष के अंतर्गत इस पद में विप्रलंभ श्रृंगार का चित्रण है।

4. 'सूखत सुनु सजनी' में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

## 7.9 सारांश

- सूरदास से संबंधित 25 काव्य-कृतियों की चर्चा आलोचकों द्वारा की जाती है, किंतु 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य-लहरी' को ही अधिकांश आलोचक सूरदास की रचना मानते हैं। इनमें भी 'सूरसागर' की प्रामाणिकता निर्विवाद है जबकि 'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी' की प्रामाणिकता को लेकर आलोचकों में मतभेद है।

- सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व 'भगवतानुग्रह' है, जिसमें पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। ईश्वर-प्राप्ति का कृपा-मार्ग ही पुष्टिमार्ग है।

- सूरदास की भक्ति में जहाँ एक ओर विनय के पद हैं तो दूसरी ओर कृष्णलीला के। कृष्णलीला-वर्णन का पहला चरण वात्सल्य-वर्णन है। कृष्ण की वृंदावन लीला में सूर की सख्य भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं। सूरदास की भक्ति का अगला और अंतिम चरण माधुर्य भाव की भक्ति का है। माधुर्य में प्रेम और श्रृंगार-भाव का समावेश रहता है। गोपियों और कृष्ण तथा राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों में माधुर्य भक्ति की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

- पुष्टिमार्गीय भक्ति में श्रीकृष्ण के बाल रूप और बाललीलाओं की अधिक महत्ता रही है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास विश्व के श्रेष्ठतम कवि माने जाते हैं। वह जितना बाल मनोविज्ञान में पारंगत है, उतना ही एक माँ के हृदय की विभिन्न अंतर्दशाओं के मर्मज्ञ। यही कारण है अदभुत सर्जनात्मकता का परिचय दिया है।

- सूरदास के काव्य में प्रेमभक्ति या माधुर्य भक्ति की प्रधानता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य विषय राधा-कृष्ण तथा गोपी-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग हैं जो पूरी तरह श्रृंगार भावना पर ही आधारित हैं।

- यहाँ श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग, काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक - दोनों ही दृष्टियों से सशक्त हैं। सूरदास के काव्य में प्रेम-श्रृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति भावना का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

- सूरदास के काव्य में ब्रज का लोकजीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। कवि द्वारा वर्णित कृष्णलीला की पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है, इसलिए सूरकाव्य में वहाँ की लोकमान्यताएँ, लोकभाषा और लोक संस्कृति इस काव्य की आंतरिक पहचान बनकर उभरी हैं। सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है।

- भक्त कवि सूरदास के काव्य में संवेदना पक्ष और शिल्प पक्ष के सौंदर्य का एक अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन भावों की कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। वात्सल्य और श्रृंगार के जिस धरातल पर सूर ने अपनी

उपस्थिति दर्ज कराई वह दूसरों के लिए दुर्गम और दुर्लभ ही रहा। ब्रजभाषा के लोकप्रचलित रूप को सृजन की भाषा बनाकर सूर ने एक नई परंपरा की शुरूआत की।

## 7.10 शब्दावली

**दृष्टिकूट** : सूरदास रचित के पद जिसमें अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अर्थ अथवा भाव को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया जाता है।

**पुष्टिमार्ग** : पुष्टिमार्ग में पुष्टि का अर्थ पोषण यानी भगवनान की कृपा से है। इस मार्ग का मुख्य लक्ष्य ईश्वर की कृपा प्राप्ति है।

**अष्टछाप** : बल्लभाचार्य के चार शिष्य तथा विट्ठलनाथ के चार शिष्यों से बना आठ कृष्णभक्तों का समूह।

**शुद्धाद्वैत** : शुद्धाद्वैत में ब्रह्म को माया के संबंध से रहित माना गया है। जीव और जगत भी ब्रह्म के ही रूप हैं।

**भ्रमरगीत** : सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों के काव्य में भौंरे को संबोधित करते हुए गोपियों द्वारा की गई अभिव्यक्तियाँ।

## 7.11 उपयोगी पुस्तकें

- हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
- हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य - मैनेजर पांडेय
- सूरदास - रामचंद्र शुक्ल; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

## 7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) नाभादास

   (ख) सूरदास

   (ग) मियां सिंह

   (घ) ध्रुवदास

   (ङ) डॉ. दीनदयालु गुप्त

2. (क) परिवेश और समाज

   (ख) बल्लभाचार्य

   (ग) गऊघाट

   (घ) दैन्यभाव

3. देखिए - भाग 7.2.1
4. देखिए - भाग 7.2.2
5. (क) - ✓
   (ख) - ×
   (ग) - ✓
   (घ) - ✓
   (ङ) - ×
6. देखिए - भाग 7.3
7. देखिए - भाग 7.4
8. देखिए - भाग 7.5
9. देखिए - भाग 7.6
10. देखिए - भाग 7.7

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 8 तुलसीदास का काव्य

## इकाई की रूपरेखा


8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 तुलसी पूर्व रामकाव्य परम्परा

8.3 पृष्ठभूमि

8.4 तुलसीदास का परिचय

- 8.4.1 रचनाकार व्यक्तित्व
- 8.4.2 जीवन–परिचय
- 8.4.3 रचनाएँ

8.5 तुलसी का भाव-पक्ष

- 8.5.1 सामंतवाद विरोधी मूल्य
- 8.5.2 मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ
- 8.5.3 समन्वय भावना का लोक विस्तार

8.6 दार्शनिक विचार

8.7 भक्ति–पद्धति

- 8.7.1 सूर और तुलसी की भक्ति पद्धति की तुलना

8.8 अभिव्यंजना शिल्प

- 8.8.1 काव्य रूप
- 8.8.2 काव्य शैलियों का प्रयोग और पालन
- 8.8.3 काव्य-भाषा
- 8.8.4 छंद–योजना
- 8.8.5 अलंकार-योजना

8.9 मूल्यांकन

8.10 तुलसीदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 उपयोगी पुस्तकें

8.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भक्ति आंदोलन में तुलसीदास की लोकमंगलवादी भूमिका को समझा सकेंगे;
- रामकाव्य-परम्परा में तुलसी का स्थान बता सकेंगे;
- उनका जीवन परिचय एवं काव्य कृतियों के बारे में सप्रमाण तर्क दे सकेंगे;
- तुलसी की भक्ति-पद्धति पर विस्तार से विचार कर सकेंगे;
- उनके भावपक्ष का निरूपण करने के साथ उनके काव्य में निहित समन्वयवाद की चर्चा कर सकेंगे;
- उनके काव्य के सामंत-विरोधी मूल्यों को समझा सकेंगे तथा उनकी दार्शनिक विचारधारा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- उनके अभिव्यंजनाशिल्प की विशेषताओं को सप्रमाण प्रस्तुत कर सकेंगे।

## 8.1 प्रस्तावना

तुलसीदास भारतीय भक्ति-आंदोलन के निर्माता तथा इस भक्ति-आंदोलन की महान उपलब्धि हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सांस्कृतिक-सामाजिक महत्व भक्ति-आंदोलन की इसी क्रांतिकारी भूमिका के संदर्भ में आंका जा सकता है। भक्ति की वह धारा जो वेदों-उपनिषदों से उमड़ी थी और जिसने तीसरी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिल में भक्ति-आंदोलन को तीव्र किया। देश भर में कश्मीर में ललदेद, तमिल में आंडाल, बंगाल में चण्डीद्रास, चैतन्य, पंजाब में नानक, गुजरात में नरसी मेहता आदि विभिन्न प्रदेशों में भक्त कवि पैदा किए। इन भक्त कवियों ने सांस्कृतिक-सामाजिक एकता के सूत्र पैदा किए और भावात्मक रूप से जनता को एक किया। इस भावात्मक एकता का आधार था भक्ति या प्रेम। तुलसीदास ने भक्ति की निर्गुण-सगुण परंपराओं को वैचारिक स्तर पर एकता के सूत्र में बाँध दिया। रामानुजाचार्य की लोक-चिंतन धारा ने रामानंद को जन्म दिया। रामानंद ने लोक-भाषाओं में काव्य लिखने की प्रेरणा देकर हिंदी के भक्ति-काव्य को दिशा और दृष्टि दी। रामानंद की इसी चिंतन-परंपरा में कबीर और तुलसीदास का आविर्भाव हुआ है। तुलसीदास ने भक्ति-आंदोलन का इतना व्यापक रूप दिया है कि हिंदीभाषी जनता के वे जातीय संस्कार ही बन गए हैं।

## 8.2 तुलसी पूर्व रामकाव्य-परंपरा

रामकाव्य परम्परा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ वाल्मीकि कृत 'रामायण' है। यद्यपि रामायण से पूर्व रामकथा पर छोटे-छोटे आख्यानक काव्य या कथाकाव्य लिखे जाने के उल्लेख मिलते हैं- पर वे काव्य आज अप्राप्त हैं। विद्वान वाल्मीकि रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई.प. मानते हैं। बहुत समय तक रामायण मौखिक रूप से प्रचलित रही उसमें परिवर्तन और प्रक्षिप्त अंश जुड़ते रहे। 'महाभारत' के वनपर्व, शांतिपर्व एवं सभापर्व में रामकथा मिलती है। वनपर्व का 'रामोव्याख्यान' प्रसिद्ध है। इसके उपरांत बौद्ध जातकों में 'दशरथ जातक' रामकथा का वर्णन करता है। बौद्धों के अतिरिक्त जैनग्रंथों में विमलसूरि कृत 'पउम चरिउ' तथा गुणभद्र कृत 'उत्तर रामायण' में भी रामकाव्य के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण, विष्णुपुराण आदि पुराणों में भी रामकथा भरी पड़ी है। 'अध्यात्मरामायण'

'महाभारत' 'आनंद रामायण' 'भुशुण्डि रामायण' 'अद्भुत रामायण' जैसे पौराणिक ढंग के रामकाव्य भी लिखे गए हैं।

संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्राचीन ग्रंथों के अलावा संस्कृत के प्रबंधकाव्यों एवं नाटकों में भी रामकाव्य का सौंदर्य बिखरा मिलता है। कालिदास रचित 'रघुवंश' कुमारदास रचित 'जानकी हरण' क्षेमेन्द्र कृत 'रामायण मंजरी' मल्लिनाथ रचित 'रघुवीर चरित' आदि प्रसिद्ध काव्य हैं। नाटकों में भवभूति का 'उत्तररामचरित' राजशेखर का 'बालरामायण' मधुसूदन और दामोदर कृत 'हनुमन्नाटक' जयदेव का 'प्रसन्नराघव' इस दिशा में उल्लेखनीय है। वाल्मीकि रामायण को मूलाधार बनाकर भारतीय भाषाओं के साहित्य में व्यापक स्तर पर रामकाव्य की रचना हुई है। इन रामकाव्यों में मराठी में एकनाथ द्वारा रचित 'भावार्थ रामायण' बंगला में कृतिवास कृत 'रामायण' 15वीं शताब्दी असमिया में भांकर देव कृत 'उत्तरकांड' उड़िया में 'जगन्मोहन रामायण' तमिल में कंबन कृत 'रामायण' (11वीं शताब्दी) तेलुगु में 'रंगनाथ रामायण' (12वीं शताब्दी) आदि का नाम महत्वपूर्ण है।

हिंदी में सन् 1286 ई. के आसपास कवि भूपति रचित 'राम चरित रामायण' का संकेत मिलता है। पर यह कृति उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति के कारण तुलसीदास ही रामकाव्य परंपरा में हिंदी के पहले प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। तुलसी ने 'नानापुराण निगमागम रघुनाथ गाथा' का जो उल्लेख 'रामचरित मानस' के आरंभ में किया है उसका एक अर्थ यह है कि तुलसी ने अपने से पूर्व की रामकाव्य परंपरा का मनोयोगपूर्वक मंथन किया था। यह मंथन इसलिए भी संभव हुआ कि तुलसी के सामने परंपरा से प्राप्त एक विशाल और समृद्ध रामकाव्य था। अपने मूल रूप में रामकथा एक ऐसी आदर्श कथा थी जिसमें भारतीय जीवन के नैतिक-सामाजिक मूल्य निहित थे। तुलसीदास ने प्रायः स्मरण दिलाया है कि राम की गुणगाथा का गान वेद करते हैं। उन्होंने 'रामचरित मानस' के उत्तरकांड में वेदों से राम की स्तुति कराई है। वेदों में राम का नाम तो है- किन्तु यह नाम ईश्वर के लिए नहीं है। वैदिक साहित्य में सीता शब्द का प्रयोग भी हल से जोतने पर बनी हुई रेखा के लिए हुआ है। यहाँ सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है ऐसा प्रतीत होता है कि राम-सीता पर दिव्य रूप का आरोपण परवर्ती युगों में किया गया है। वाल्मीकि रामायण में राम का रूप अवतारी दिव्य नायक का नहीं है एक महामानव का है। बहुत से विद्वानों ने यह मत भी व्यक्त किया है कि राम-रावण युद्ध आर्य-अनार्य संघर्ष की गाथा है। किन्तु तुलसीदास ने रामकथा को भारतीय संस्कृति की मूल्य चेतना के रूप में ग्रहण किया और रामकथा का दिव्य, अवतारवादी, लीलामय रूप प्रस्तुत किया है। तुलसीदास ने रामकथा के इस दिव्य रूप को जन-मन में रचा-पचा दिया। रामानंद (सन् 1345 ई.) ने रामकाव्य को भक्ति-आंदोलन की लोकशक्ति से जोड़ दिया था। उनकी हिंदी में रचित रचना 'राम रक्षा स्त्रोत' की परंपरा को तुलसीदास ने आगे बढ़ाया। भक्तिकाल में राम कथा उभर रही थी- इसका प्रमाण सूरदास देते हैं। बल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में होने पर भी इस उदार भक्तकवि ने अनेक पदों में रामकथा का गान किया है। जैसे तुलसी राम के साथ कृष्ण को अपनाते हैं वैसे ही सूरदास कृष्ण के साथ राम को। वैष्णव परंपरा के भक्तों का यह उदार राजमार्ग सगुण धारा में संकीर्णताओं से मुक्ति की चाह का संकेत भी देता है।

## 8.3 पृष्ठभूमि

भक्ति आंदोलन की विशाल एवं समृद्ध पृष्ठभूमि में तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। भक्ति आंदोलन की पूरी पृष्ठभूमि साधारण जनता को कष्ट और पीड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए संकल्पबद्ध दिखाई देती है। भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास भी यह सिद्ध करता है कि भक्ति वेदों-उपनिषदों के भीतर से मार्ग बनाकर निरंतर प्रवाहित रही है।

भक्ति आंदोलन दक्षिण-भारत में तीसरी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक जोरों से चलता रहा। आलवार वैष्णवों तथा नायनमार शैवों ने दक्षिण में इसे निम्न वर्गों से जोड़ दिया। यहाँ पददलित-पिछड़ी जातियों ने संत पैदा किए तथा सगुण-निर्गुण-भक्तिधारा का प्रवाह तेज किया।

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र-गुजरात की कष्ट भोगती जनता ने भक्ति आंदोलन को बढ़ाया। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, महाराष्ट्र में तथा नरसी मेहता गुजरात में मानवतावादी वाणी बोलते मिलते हैं। इधर उत्तरी भारत में सिद्धों-नाथों की चमत्कारवादी करतूतों को भक्ति आंदोलन ने पनपने न दिया। कहना न होगा कि तन्त्रवाद के विरोध में ही भक्ति आंदोलन की सच्ची शक्ति का पता चलता है।

उत्तरी-भारत में निर्गुण भक्ति-आंदोलन को शोषित जनता का पूरा सहयोग मिला। कबीर, दादू, रज्जब, पीपा, रैदास, सुंदरदास की बानियों का संदेश बड़ा ही सुधारवादी और क्रांतिकारी था। सगुणमत निम्न-वर्ग के साथ उच्च-वर्ग को भी साथ लेकर चला। इसे रामानुजाचार्य से लेकर रामानंद और बल्लभाचार्य से लेकर मध्वाचार्य तक का चिंतन और समर्थन प्राप्त हुआ। फलतः उत्तरी भारत में कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति धाराओं का प्रसार और विकास हुआ। आरंभ में सगुण-मत की विजय कृष्ण-भक्ति के रूप में हुई। इनमें निम्न-वर्ग से भी बहुत से भक्त कवि आए जैसे अष्ट छापके कवि कृष्णदास अधिकारी निचली जाति से थे।

सगुण रामभक्ति धारा में रामानंद ने लोकभाषा में लिखने की प्रेरणा देने के साथ जातिवाद विरोधी रुख अपनाया। रामानंद के विचारों का प्रभाव तुलसीदास पर सीधा पड़ा। वे जाति-पांति विरोधी स्वर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का विचार लेकर उठे। तुलसीदास की भक्तिभावना का स्वर सामंतवाद विरोधी पुरातनतावाद विरोधी है यह न भूलना चाहिए। अचानक संस्कृत का प्रभुत्व हिंदी के भक्तिकाव्य में समाप्त हो गया और जनता की वह संस्कृति जिसे पुरोहितवाद ने दबा रखा था- फूलने फलने लगी। 16वीं शताब्दी-शेरशाह और अकबर के शासनकाल में उत्तरी भारत की सामंतवादी व्यवस्था कमजोर हुई। हिंदीभाषी जनता हिन्दू-मुसलमान दोनों एक जाति के रूप में संगठित होने लगी। भक्ति आंदोलन इसी जातीय संगठन का सांस्कृतिक दर्पण है। वर्णाश्रम धर्म के समर्थकों ने तुलसीदास को सताया तुलसी ने कहा 'धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ' यह पुरोहितवाद पर ही सीधा प्रहार था। जो लोग यह समझते हैं कि तुलसीदास शूद्रों पर ब्राहमणों के प्रभुत्व का समर्थन करते हैं- वे भूल जाते हैं कि उन्होंने स्वयं इस प्रभुत्व का कटु अनुभव किया था और वे बराबर इस प्रभुत्व को चुनौती देते हैं।

## 8.4 तुलसीदास का परिचय

तुलसीदास भारतीय भक्ति आंदोलन के निर्माता और श्रेष्ठ भक्त कवि हैं। आज भी भारतीय समाज पर उनका इतना गहरा प्रभाव है कि उसकी ठीक-ठीक कल्पना करना कठिन है। उन्होंने लोकप्रचलित रूढ़ियों को समाप्त करने और जनता के जागरण के लिए साहित्य सृजन किया है। तुलसीदास एक ऐसा नाम है जो सम्पूर्ण भारतीय परम्परा के उच्चतम मूल्यों का रक्षक है।

### 8.4.1 रचनाकार व्यक्तित्व

तुलसीदास का रचनाकार व्यक्तित्व भक्तिकाल के कवियों में एकदम विशिष्ट है। वे निर्गुणपंथियों और सगुणमतवाद का समर्थन करने वाली शक्तियों को एक करते हैं। वैष्णवों

और शाक्तों को मिलाकर उनका रचनाकार राष्ट्रीय भावात्मक एकता का द्वार खोलता है। तुलसी के रचनाकार व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि भक्ति को उन्होंने जन-जन की संपत्ति बना दिया। वे हिंदी भाषी जनता के सबसे बड़े कवि भी इसी अर्थ में हैं। तुलसीदास जैसे रचनाकार के लिए रवीन्द्रनाथ का यह कथन सटीक बैठता है कि एक प्रकार के बड़े कवि वे हैं जिनकी रचना में भीतर से एक सारा देश, एक सारा युग बोलता है इन कवियों की उक्तियाँ देश मात्र और जाति मात्र को मान्य होती हैं उनकी रचना उस बड़े छतनार वृक्ष सी मालूम होती है जो देश के हृदय रूपी भूतल से उत्पन्न होकर उस देश भर को आश्रय रूपी छाया देता हुआ खड़ा हो। 'रामचरित मानस' इस मानदंड पर एकदम खरा उतरता है। स्मरणीय यह बात भी है कि तुलसीदास मानवीय करुणा के कवि हैं- उनके राम दीनबंधु हैं। इस रचनाकार व्यक्तित्व में निराशा नहीं है- आस्था विश्वास पूर्ण भक्ति का रक्षाभाव है। यह भक्ति समाज के लिए अफीम नहीं थी- जनसाधारण को जागृत करने का साधन थी। तुलसीदास के रचनाकार व्यक्तित्व की महत्ता वास्तविक सामाजिक संबंधों के चित्रण में है- इन संबंधों का मूल संदेश है- त्याग तथा मानवप्रेम। इनके रचनाकार से यह सीखने की चीज है कि कैसे ज्ञान की सहजता में ढली वाणी जनता के हृदय को गहराई तक प्रभावित करती है। हमारे जातीय संगठन के मार्ग में ऊँच-नीच के भेदभाव, साम्प्रदायिकता आदि अनेक शत्रु हैं। तुलसी का साहित्य हमें उनसे संघर्ष करने की शिक्षा देता है आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- 'यद्यपि स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी- पर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में रामभक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा ने भाषाकाव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि रामभक्ति का वह परम विश्द साहित्यिक संदर्भ हिंदी भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिसे हिंदी साहित्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।'

### 8.4.2 जीवन-परिचय

तुलसीदास का जीवनवृत विवाद के घेरे में घिरा हुआ है। हमें उनके जीवन की कुछ जानकारी बाहरी प्रमाणों जैसे गोस्वामी गोकुलदास जी की 'दो सौ बावन वैष्णवन वार्ता' भक्तमाल पर प्रियादास की टीका तथा जनश्रुतियों-किंवदंतियों से मिलती है। कुछ प्रामाणिक जानकारी स्वयं तुलसीदास की कृतियों के भीतर से मिल जाती है। ऐसी कृतियों में 'कवितावली' 'गीतावली' 'रामचरित मानस' तथा 'विनयपत्रिका' का विशेष महत्व है। इन्हीं को आधार मानकर उनके जीवन वृत्त पर हम विचार करेंगे।

तुलसीदास का जन्म प्रायः सन् 1532 ई. (संवत् 1589 वि) में माना जाता है। इनका जन्म कहाँ हुआ था- यह अभी तक अनिश्चित है। कुछ विद्वान राजापुर जिला बांदा उत्तर प्रदेश तथा कुछ विद्वान सोरो, जिला एटा, उ.प्र. को उनका जन्म स्थान मानते हैं। इधर खोजों से पता चला है कि वे राजापुर में पैदा हुए थे। अनुमान से उनके पिता का नाम आत्माराम तथा माँ का नाम हुलसी था। माता के नाम प्रमाण में रहीम का यह दोहा कहा जाता है:

> सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सबचाहति, असहोय।
> गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

तुलसीदास ने 'कवितावली' में कहा है कि 'मात-पिता जगजाइ तज्यों विधि हूँ न लिख्यों, कुछ भाग भलाई' तथा 'विनयपत्रिका' का यह कथन 'कुटिल कीटज्यों, तज्यो मातु पिता हूँ'। इन कथनों से निष्कर्ष यह निकलता है कि वे अभुक्तमूल अशुभ नक्षत्र में पैदा हुए थे जन्मते ही राम शब्द मुख से निकला 'राम बोला नाम हो गुलाम रामसाहि को'। राम बोला बालक को मात-पिता ने त्याग दिया। उन्हें दासी मुनिया ने पाला। पर पाँच वर्ष के बालक

को छोड़कर वह भी चल बसी। यह बालक भटकता-भटकता रामभक्त नरहरिदास के आश्रम में पहुँचा। तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरिदास है और इन्हीं ने उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। बचपन से ही रामकथा सुनाई।

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सौ सूकर खेत।
समझो नहि तसि बालपन, तब अति रहे उठाअचेत।
तदपि कही गुरु बारहि बारा। समुझि परी कुछ मति अनुसारा।

अपने वैवाहिक जीवन के विषय में भी तुलसी ने स्पष्ट नहीं लिखा। जनश्रुति है कि उनका विवाह रत्नावली से हुआ था। एक जनश्रुति के अनुसार वे पत्नी से निराश होकर काशी गए और वहाँ परम विद्वान शेष सनातन जी से वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास-पुराण में प्रवीणता प्राप्त की।

हनुमान पूजा मध्यमयुग की सगुण रामोपासना का अनिवार्य अंग थी। कदाचित तुलसीदास किसी हनुमान मंदिर में रहे भी। काशी, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ से कैलाश और मानसरोवर भी गए। अंत में चित्रकूट आकर बस गए एवं सत्संग किया। फिर अयोध्या जाकर 'रामचरित मानस' रचना शुरू किया- (संवत् 1631)। सन् 1574 ई. में 'मानस की रचना से उन्हें प्रतिष्ठा जीवन काल में ही मिली कि वे वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे।' नाभादास ने 'भक्तमाल' में कहा; 'कालि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो।' तुलसीदास के जीवन के अंतिम बीस-पचीस वर्ष काशी में व्यतीत हुए और कष्ट में बीते। रोग और महामारी का वर्णन उन्होंने किया है। संभवतः उनका देहांत सन् 1623 ई. (सं 1680) में हुआ किन्तु दिन तथा तिथि विवादग्रस्त है।

## 8.4.3 रचनाएँ

तुलसीदास के नाम से निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं :

1) रामलला नहछू 2) रामाज्ञाप्रश्न 3) जानकीमंगल 4) रामचरित मानस 5) पार्वती मंगल 6) गीतावली 7) कृष्ण गीतावली 8) विनय पत्रिका 9) बरबै 10) दोहावली 11) कवितावली 12) हनुमान बाहुक 13) वैराग्य संदीपनी 14) सतसई 15) कुंडलिया रामायण 16) अंकावली 17) बजरंगवाण 18) बजरंग साठिका 19) भरत मिलाप 20) विजय दोहावली 21) वृहस्पतिकांड 22) छंदावली रामायण 23) छप्पय रामायण 24) धर्मराज की गीता 25) ध्रुव रत्नावली 26) गीता भाषा 27) हनुमान स्रोत 28) हनुमान चालीसा 29) हनुमान पंचक 30) ज्ञान दीपिका 31) राममुक्तावली।

इनमें से प्रथम बारह रचनाएँ प्रामाणिक रूप से तुलसीदास जी की मानी जा सकती है। शेष समस्त रचनाएँ संदिग्ध हैं। इनमें से प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

**रामलला नहछू** : राम का नहछू राम-विवाह के अवसर का गीत है। इसमें 40 द्विपदियाँ हैं। विवाह के अवसर पर आई हुई प्रजाजनों की स्त्रियों के हाव भाव कटाक्ष का इसमें सजीव वर्णन है।

**रामाज्ञा प्रश्न** : सात सर्गों की इस रचना में 343 दोहे हैं। इसमें पूरी रामकथा कही गई है। इसमें सीता-अवनि (धरती) प्रवेश की कथा भी मिलती है।

**पार्वती मंगल** : इसमें शिव पार्वती विवाह का वर्णन है जो 'मानस' के शिव पार्वती विवाह से थोड़ा भिन्न है। इस कृति का आधार- 'कालिदास का कुमारसंभव' है। जबकि 'मानस' में शिव-पार्वती कथा का आधार 'शिव पुराण' है।

**गीतावली** : यह रामकथा संबंधी पदावली है। यह पदावली कांड क्रम से संकलित है।

गीतों में कथा की प्रायः पुनरावृत्ति हुई है। इसकी रचना कदाचित सूरदास के 'सूरसागर' के अनुकरण पर हुई है। पर गीति-कला 'विनय पत्रिका' जैसी विकसित नहीं है।

**विनय पत्रिका** : विनय पत्रिका' के दो पाठ उसकी प्रतियों में मिलते हैं 'रामगीतावली' और 'विनय पत्रिका'। 'रामगीतावली' में 175 पद हैं जबकि 'विनय पत्रिका' में 279 पद। 'विनय पत्रिका'। राम के चरणों में भेजी जाने वाली गीतात्मक अर्जी है। इसमें कवि तुलसी की भावनाओं एवं कला का सहज सौंदर्य मिलता है। 'मानस' उनकी साधना का आदर्श है तो 'विनय पत्रिका' उनके अपने जीवन की साधना है। मूलतः यह रचना श्रेष्ठ आत्मनिवेदनात्मक साहित्य का रूप है।

**कृष्ण गीतावली** : इसमें कृष्ण-चरित से संबंधित 61 पद हैं। रचना सूरदास के 'सूरसागर' के अनुकरण पर की गई है।

**कवितावली** : यह कृति कवि के जीवन तथा युग को समझने के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमें महामारी, शरीर पीड़ा, बरतोड़ के फोड़े तथा मृत्यु से पहले के कष्ट वर्णन के प्रसंग हैं। इसमें रामकथा कविता-सवैया शैली में वर्णित है। प्रसंग अत्यंत मार्मिक तथा सजीव हैं। 'कवितावली' का लंकाकांड युद्ध वर्णन के लिए आदर्श माना जाता है।

**रामचरित मानस** : लोक जीवन में तुलसी की कीर्ति का विमल आधार दोहा चौपाई शैली में रचित अवधी भाषा की शक्ति से संपन्न यही महाकाव्य है। इसकी रचना 1574 ई. में अयोध्या में आरंभ हुई तथा इसका अंतिम भाग काशी में पूरा हुआ। 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना' से स्पष्ट है कि यह सात कांडों का प्रबंधकाव्य है। अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण मध्ययुग का यह अकेला महाकाव्य है जिसने समूचे समाज के दृष्टिकोण को संस्कार देने एवं बदलने का काम किया है। उत्तरी भारत में यह ग्रंथ वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत से भी ज्यादा पढ़ा जाता है। इसमें जनता अपने जीवन का प्रतिबिंब पाती है। इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय राम को लीलावतारी परमब्रहम सिद्ध करना और राम भक्ति का प्रसार करना है। इसमें रामकथा की प्राचीन परंपरा का वर्णन है तथा उपदेशात्मक नीतिपरक संवाद हैं। कथा श्रोता-वक्ता जैसे शिव पार्वती आदि के संवाद रूप में चलती है। प्राकृत-अपभ्रंश के काव्यों की कथानक रूढ़ियों की इसमें भरमार है तथा चमत्कारी-अलौकिक तत्व बहुत हैं। संक्षेप में, यह रचना भारतीय परंपरा, संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों का आदर्श भण्डार है।

**बोध प्रश्न क**

1. भक्ति आंदोलन में तुलसीदास के योगदान का पाँच पंक्तियों में निरूपण कीजिए।

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

2. राम-काव्य परंपरा में तुलसी के स्थान की तीन पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

3. तुलसीदास के रचनाकार व्यक्तित्व की विशेषताओं पर चार पंक्तियाँ लिखिए-

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

4. तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ था- सही (✓) तथा गलत (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए :

   सोरों ( ) राजापुर ( ) अयोध्या ( )

5. तुलसीदास के गुरु का नाम बताइए? सही (✓) तथा गलत (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए :

   रामानंद ( ) शेष सनातन ( ) नरहरि दास ( )

6. तुलसीदास के बचपन के नाम पर सही (✓) तथा गलत (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए :

   रामबोला ( ) रामसेवक ( ) रामकिंकर ( )

7. तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं के नाम लिखिए :

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

8. 'कवितावली' पर पाँच वाक्यों की टिप्पणी लिखिए।

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

## 8.5 तुलसीदास का भाव-पक्ष

तुलसी के भाव-विधान में शास्त्र-परंपरा और लोक-परंपरा दोनों का सामंजस्य मिलता है। राममय तुलसी में सभी देवी-देवताओं की स्तुति, गुरु महिमा तथा पहले के कवियों की वंदना, वस्तुनिर्देश की प्राचीन पद्धति का अनुसरण मिलता है। ऐसा करने के कारण प्रायः यह भ्रम होता है कि तुलसी पुराणवाद और चरितकाव्य परंपरा की ओर झुक रहे हैं पर तुलसी उस समय लोक-संस्कृति की ओर झुक रहे होते हैं। वे पुराणवाद तथा चरित काव्य की लोकों का समर्थन कभी नहीं करते हैं। एक रामकथा के भीतर ही तुलसी कभी शिवकथा, कभी नारदकथा आदि अनेक अवांतर कथाएँ लाते रहते हैं जिससे भाव-विधान

में कथा की एकरसता टूटती है और विविधता का संचार होता है। कथा को श्रोता वक्ता परंपरा से कहलाकर भी तुलसी नयापन उत्पन्न कर देते हैं। वे कहते हैं-

1) सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपाकरि उमहि सुनाता।

2) सोई सिव काग भुसुंडिहि दींहां। राम भगति अधिकारी चींहा।

3) तेहिसन जाग बलिक पुनि पावा। तिह पुनि भारद्वाज प्रति गावा।

4) ते श्रोता बकता समसीला। समदरसी जानहि हरिलीला।

शिव पार्वती को, काकभुशुंडि जी गरुड़ जी को तथा याज्ञवल्क्य जी ऋषि भारद्वाज जी को कथा सुनाते हैं। जाहिर है कि 'मानस' में रामकथा को वक्ता-श्रोता परंपरा से कहा गया है। ज्ञान भक्ति, निर्गुण, सगुण, उत्साह-करुणा आदि के भावों को वे कलात्मक ढंग से संवादों में ही व्यक्त करते हैं।

'भाव भेद रस भेद अपारा' के जानकार इस कवि को काव्य के विभावन व्यापार की विशेष पकड़ है। तुलसी ने सूर की भाँति लोक-संस्कृति के आधार पर ग्रामजीवन के चित्र दिए हैं। सीता से ग्राम वधुओं की सरस चर्चा, केवट-निषाद का प्रेम यहाँ की सच्ची जन-संस्कृति है। ग्राम वधुओं के मर्मस्पर्शी दृश्य तुलसी ने 'मानस' 'कवितावली' 'गीतावली' आदि सभी कृतियों में दिए हैं। तुलसी तथा सूर के बाल-वर्णन को पढ़कर वात्सल्य को भाव-कोटि में रखने वाले आचार्य चकित हो सकते हैं और उसे भाव से रस मानने का सीधा प्रस्ताव भी मान सकते हैं। हास्य, वीर, रौद्र, श्रृंगार सभी रस तुलसी ने अपनी मर्यादावादी वृत्ति से (संयम-संतुलन) ही प्रस्तुत किए हैं। पर शांतरस के वैराग्य भाव में इस कवि का मन नहीं रमता। कारण, शांत का निर्वेद जीवन से पलायन तथा कर्म-सौंदर्य की महिमा को ठुकराने का भाव है। तुलसी को कर्म-सौंदर्य की अवहेलना एक पल भी स्वीकार नहीं है। यही कारण है कि वे शांत को पीछे धकेलकर केन्द्र में भक्ति-रस को लाते हैं। यह भक्ति-रस मानवतावाद की भावभूमि पर फलता-फूलता है। मूल बात ध्यान में रखने की यह है कि तुलसी के भक्ति भाव में लोक-रक्षा, लोक-मंगल का भाव पूरी तरह विद्यमान है। सार-संक्षेप यह कि तुलसीदास के समस्त सृजन का प्रधान रस (अंगी रस) भक्ति रस ही है। इस भक्ति रस में भगवान आलंबन तथा भक्त हृदय आश्रय है और ईश्वर विषयक रति स्थायीभाव।

तुलसी के भावों में मर्यादावाद ने एक प्रकार का नैतिक सौंदर्य बिखेर दिया है। कविता में श्रृंगार की पवित्रता का चित्र है। विवाह के समय सीता के कंगन में राम का प्रतिबिंब पड़ रहा है। सीता प्रेम भाव में मग्न उस रूपचित्र को देख रही हैं :

**यथा :**

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबैमिलि सुंदरि, वेद तुआ, जुरिविप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रहीं पल टारति नाहीं।

यहाँ प्रेममय रति भाव स्थायी, राम-सीता आलंबन-आश्रय, राम का रूप प्रतिबिंब उद्दीपन, एकटक तन्मय होकर देखना आदि अनुभव तथा हर्ष, पुलक आदि संचारी भाव के योग से 'श्रृंगार रस' की पवित्र अभिव्यक्ति हुई है। श्रृंगार का इतना मर्यादित चित्र हिंदी में कम ही मिलेगा। तुलसीदास मर्यादावादी भावुक कवि हैं। ऐसे कवि की सही पहचान यही है कि वह मनुष्य के हृदय में घुसकर स्थायी रूप से निवास करता है।

प्रेम-करुणा सहानुभूति के भावों का संचार तुलसी की भाव-दक्षता का अनुपम रूप सामने लाती है। राम वनगमन के लिए घर से निकलते हैं- सुकुमारी सीता जी साथ हैं। कठोर धरती पर चलने में असमर्थ सीता को थकान आती है- ओठ सूखने लगते हैं। पसीने से तर हो जाती हैं वे बार-बार राम से पूछती हैं-अब कितनी दूर और चलना है। अपनी प्रिया के इस कष्ट एवं थकान को देखकर राम की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। यथा-

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि-धरि दए मग में डग ह्वै।
झलकीं भारी भाल कनी जल की, पुट सुखि गए मधुरा धर वै।
फिर बझूती है 'चलनों अब केतिक पुर्नकुटी करि है कित हवै।'
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै।

तुलसी के काव्य में भाव प्रसंगों की अद्भुत मार्मिकता को पाकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'गोस्वामी जी को मनुष्य की अंतः प्रकृति की जितनी परख थी उतनी हिंदी के और किसी कवि को नहीं। कैसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में स्वभावतः कैसे भाव उठते हैं, इसकी वे बहुत सटीक कल्पना करते थे।' (गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ - 89)

तुलसीदास जीवनव्यापी भावों की स्थायी भूमि पर खड़े होकर रामकथा के पात्रों का विशेषकर राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, रावण, हनुमान, विभीषण आदि का चित्रण करते हैं। चरित्रों के स्वभाव तथा मानसिक वृत्ति पर उनका पूरा ध्यान रहता है। राम में शील, शक्ति एवं सौंदर्य है- तो रावण में शक्ति की प्रचंडता का विस्फोट। लक्ष्मण तथा भरत का भाई-प्रेम, सीता की पति भक्ति, हनुमान की दासभाव की सेवा भक्ति आदि में जीवन के विविध चित्र निहित हैं। सीता-स्वयंवर के अवसर पर राम तथा लक्ष्मण के स्वभाव का पार्थक्य साफ झलक उठता है कि लक्ष्मण परशुराम संवाद में दो क्रोधी स्वभाव के चरित्रों का टकराव है - पर राम में विन्रमता, धीरता और ऋषि पूजा का भाव है। भरत की गुण-महिमा रामकथा का सबसे अधिक उजला पक्ष है। तुलसी 'सब विधि भरत सराहन जोगू' कहते भी हैं। रामकथा के सभी पात्रों पर दिव्यता का रंग है पर वे सभी मानव आचरण से दूर नहीं है। तुलसी ने ईश्वर के ईश्वरत्व के साथ उनका मानवत्व बराबर दिखाया है। इस जगत को 'सियाराममय' समझने वाले तुलसीदास का दृश्य-चित्रण मानव की महिमा का ही संदेश है।

भावों दृश्यों को बिंब रूप (चित्रण) में लाने की कला तुलसी के पास सूर, जायसी, कबीर आदि सभी भक्त कवियों से ज्यादा प्रौढ़ है। उदाहरण के लिए राम की बाल-लीला में भोजन का दृश्य लीजिए। दशरथ भोजन कर रहे हैं-राम किलक कर आते हैं :

धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहंसि गोद बैठाए।
भोजन करत चपल चित इत उत अवसरू पाई।
भागि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाई।।

तुलसीदास ने राम के जीवनमूल्यों का सामंजस्य भारतीय मानव के जीवन में कर दिया है। हर तरह के कष्ट से मुक्ति पाने के लिए वह राम के द्वार पर खड़ा होने लगा। जनता का हृदय ऐसा राममय हो गया कि कोई भी दासता-बर्बरता, तानाशाही, उसे डरा-धमका न सकी।

### 8.5.1 सामंतवाद विरोधी मूल्य

तुलसीदास को जो लोग हिन्दू धर्म का कट्टर समर्थक और इस्लाम का विरोधी समझते हैं-या समझाते हैं- वे तुलसी के काव्य को समझते नहीं हैं। कारण, तुलसीदास के काव्य में मानव-विरोधी मूल्य कहीं नहीं हैं। उनका उद्देश्य हिन्दू-इस्लाम शैव-वैष्णव शाक्त सभी

में मानवमूल्यों की भाई चारे की प्रतिष्ठा करने की तमन्ना ही थी। न उन्हें अलगाववाद का जहर फैलाना था, न ब्राहमणवाद को सराहना था, यदि वे ऐसा करते तो जनता उन्हें 'संत' 'महात्मा' 'भक्तचातक' न कहती। जो लोग तुलसीदास की भावधारा या विचारधारा को प्रगति-विरोधी मानते हैं वे 'हिंदी भाषी जनता को तुलसीदास की सांस्कृतिक विरासत से वंचित कर देते हैं। '(डॉ. रामविलास शर्मा- परंपरा का मूल्यांकन पृष्ठ 74)। सोलहवीं शताब्दी में अवध, बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र आदि के संत-साहित्य में एक विराट भक्ति-आंदोलन की बाढ़ आ गई। जनता, वर्ग और धर्म के भेदभाव को छोड़कर प्रेम-मार्ग पर चल पड़ी। संत पुरोहितों को खुली चुनौती देने लगे। जाहिर है कि पुराना दृढ़ सामंतवाद इस काल में जर्जरित और कमजोर हुआ। तुलसीदास ने सामंतवाद का साथ न दिया वे स्वयं जाति, धर्म, वर्ण, कुल, गोत्र के विरोध में डटकर बोले हैं- यथा-

धूत कहौ, अवधूत कहौ रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
काहू को बेटी सों बेटा न ब्याहव काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरताज गुलाम है राम कौ जाको-रूचै सो कहै कुछु ओऊ।
मांगि के खैबो मसीत को सोइबो लेबे को एक न देबे को दोऊ।

इस सवैया का अर्थ तुलसी की सामंतविरोधी मूल्य-चेतना को स्पष्ट कर देता है। कोई मुझे धूर्त कहे, चाहे भिखमंगा कहे, चाहे क्षत्रिय कहे, चाहे जुलाहा कहे, मुझे परवाह नहीं है। न मुझे अपनी लड़की का किसी के लड़के से ब्याह ही करना है, मैं किसी भी जाति से संपर्क रखकर उसका बिगाड़ नहीं करता। तुलसी तो राम का दास है- मांगकर खाता है और मौज से मस्जिद में सोता है वह किसी से प्रयोजन नहीं रखता। उसे किसी से लेना-देना नहीं है।

वर्ण, जाति और व्यवस्था के ब्राहमणवाद को चुनौती देने वाला तुलसी का स्वर सामंतवाद विरोधी है। तुलसी के राम निषाद, कोल, किरात, शबरी सभी को हृदय से लगाते हैं। 'रामहि केवल प्रेम पियारा' है, वे रावण की अन्यायी सत्ता को तोड़ते हैं। निचली जाति के लोगों को राम 'भरत समभ्राता' बार-बार कहते हैं। तुलसी के काव्य का यह सामंतविरोधी रुख एकदम प्रगतिशील है।

### 8.5.2 मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ

अपने समय और समाज का जितना यथार्थ-चित्रण तुलसी ने किया है उतना तत्कालीन अन्य कोई कवि नहीं कर सका। 'नहि दरिद्र सम दुःख जगमाही' उनका अनुभव सत्य है। जनता को दरिद्रता, कष्टों का चित्रण वे सजग-भाव से करते हैं यथा 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी' बड़ी निर्भयता से कुशासन का प्रश्न वे उठाते रहे हैं। फलतः प्रजा को सताने वाले राजा की निंदा वे हजार-हजार जीभों से करते हैं-

'जेहि सुराज प्रिय प्रजा दुःखारी। सो नृप अवश नरक अधिकारी।'

आदर्श राज्य का मॉडल वे स्वयं देते हैं। यही रामराज्य है। इसे न भूलना चाहिए।

डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है 'तुलसीदास का स्वप्न श्रमिक जनता के लिए धरोहर है जिससे प्रेरित होकर वह समाजवाद के लिए मंजिल-दर-मंजिल बढ़ती जाएगी। तुलसी का मानवप्रेम उनकी कविता का स्रोत है। उनके लिए साहित्य न तो सामंतों के मनोरंजन का साधन है, न निरुद्देश्य प्रयोग है। तुलसीदास की स्थापना साहित्य के प्रति सामंती विचारधाराओं से ही लड़ने में मदद नहीं देती, वह पूँजीवादी साहित्य सि्द्धांतों से भी लड़ने में मार्ग दर्शन कराती है।' (परम्परा का मूल्यांकन पृष्ठ 83) इस प्रकार तुलसी का मानवीय सहानुभूति वाला भावलोक क्रांतिकारी है तथा जनचेतना को जागृत करने में समर्थ भी।

इसी लोकचेतना के कारण वे भारतीय संस्कृति और जनता के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रश्न उठता है तुलसी का सामाजिक यथार्थ क्या है ? यह सामाजिक यथार्थ है- जर्जर होती सामंती व्यवस्था को तोड़कर लोक-मंगलकारी मूल्यदृष्टि को अपनाना। तुलसी मूलतः मानववादी रचनाकार हैं। उनके राम का क्षात्रधर्म इसी भावना का जीवित संसार है।

### 8.5.3 समन्वय भावना का लोक विस्तार

तुलसी के संत-स्वभाव का आधार गुण है-मानव प्रेम। इसी प्रवृत्ति से परिचालित होकर उन्होंने शैव, शाक्त, वैष्णव मत के अनुयायियों के बीच बढ़ते हुए विरोध को मिटाने का उपाय किया है। ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान में विभाजित समाज को उन्होंने बाँधने तथा एकता लाने का संकल्प किया है। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण तुलसी लोकनायक कहलाए हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में कहा है कि 'भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वयकारी चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे। वे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, विषमताओं-पीड़ाओं के भीतर से स्वयं गुजर चुके थे। फलतः लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। समन्वय का अर्थ ही है 'कुछ झुकना' कुछ दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना, तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा है। तुलसी ने शंकर के अद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्ट द्वैतवाद में समन्वय किया है। 'विनय पत्रिका' में तुलसी ने माया का निरूपण शंकर की भाँति ही किया है। शिव और राम की एकता स्थापित करते हुए कहा कि जो शिव से शत्रुभाव रखकर राम की भक्ति करता है वह मुझे फूटी आँख नहीं भाता है।

शिव द्रोही मम दास कहावा। जो जन मोहि सपनेहु नहि भावा।

सीता-पार्वती की पूजा करती हैं। पार्वती सीता को सराहती हैं। एक सीमा के बाद कबीर के राम और तुलसी के राम तत्वतः एक हो जाते हैं। दोनों ही 'राम रसायन' छककर पी लेते हैं।

## 8.6 दार्शनिक विचार

तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी दार्शनिक कवि हैं। पर उनके ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अनादि, विश्वरूप हैं- 'व्यापक एक ब्रह्म अविनासी, सत चेतन घन आनंद रासी'। नररूप ब्रहम राम लीलावतारी हैं। इस राम को तुलसी ने आनंद सिंधु, अमित, अविकार, करुणाधाम आदि कहा है। यह राम निर्गुण होता हुआ भी सगुण साकार है। तुलसी ने जीव को 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' कहा है। जीव और ईश्वर के बच माया फंसी है - 'भूमिपरत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी' कहकर ब्रह्म से बिछोह दिखाया है। जीव माया में बंधे मदारी की भाँति नाचता है- 'सो मायावस परेउ गोसाई। बध्यो कीट मरकट की नाई'। इसी जीव को वे 'सेव्य-सेवक भाव' की भक्ति से मुक्ति का मार्ग सुझाते हैं। तुलसी ने जगत को भ्रमात्मक माना है- 'जगत सब सपना' की उक्ति यही सिद्ध करती है। संसार की भयंकरता, विषमता की चर्चा भी वे अनेक बार करते हैं क्योंकि इसी संसार में माया व्याप हैः

व्यापि रहे संसार महु माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड।।

काम, कपट आदि माया की प्रचंड सेना है यह जीवों को भ्रमित करती है। इस भ्रम से निवारण का मार्ग वे राम-भक्ति को मानते हैं। पर उन्हें ध्यान है कि विद्या माया भक्ति में

सृजन तत्व का काम करती है और अविद्या माया नाश। माया रूपी विद्या जीव को ब्रहम से मिलती है और अविद्या माया पतन की ओर लगातार धकेलती है। तुलसी के द्वारा संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन देखकर कुछ विद्वान उन्हें अद्वैतवादी कहते हैं जीव तथा ब्रह् को अंश -अंशी भाव से मानता देखकर तुलसी को विशिष्टाद्वैतवादी भी। ध्यान रहे तुलसी रामानंद की चिंतन-परंपरा के पोषक थे और वे दार्शनिक दृष्टि से विशिष्टाद्वैत को ही अपनाते हैं। रामानुज और रामानंद शंकर के मायावाद का खण्डन करते हैं और 'सेव्य-सेवक भाव' को अपनाकर जगत को भी (सिया राम मय) सत्य मान लेते हैं। तुलसी शंकर से प्रभावित होने पर भी रामानंद की चिंतन-परंपरा में विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थक हैं।

## 8.7 भक्ति-पद्धति

भक्ति-आंदोलन की अखिल भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के प्रबल व्याख्याता और रचनाकार भक्त हैं- तुलसीदास। उन्होंने एक ऐसा भक्तिमार्ग निकाला जो ज्ञानमार्ग के दम्भ को तोड़कर सामान्य जनता को शक्ति दे। उन्होंने भक्ति को पंडों-पुरोहितों के एकाधिकार से निकालकर उसके सामाजिक पक्ष का खुलकर विस्तार किया। फिर वह भक्ति आंदोलन जिसमें तुलसी हैं तुर्कों, पठानों, मुसलमानों के आक्रमण से पहले का है- अतः निराशा उसका मूल भाव नहीं है। यह भक्ति-तत्व करुणा और लोक-मंगल पर केन्द्रित होने के कारण वैष्णव परंपरा की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से मुक्ति का संदेश देता है।

तुलसी राम की भक्ति में चातक को आदर्श रूप में अपनाते हैं- 'एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास'। इस राम भक्ति के भाव में श्रद्धा और विश्वास दोनों का मेल है। वास्तविकता यह है कि दीनता इस भक्ति का मूलाधार है। 'मानस', कवितावली, विनय पत्रिका' का मूल स्वर दैन्य का है :

राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
राम सौ खरी है कौन, मोसो कौन खोटो।।

तुलसीदास सच्चे अर्थों में दास्य-भक्ति के सिद्धांत में दृढ़ आस्था रखते हैं-

सेव्य-सेवक भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि।।

भक्ति के नौ प्रकार माने गए हैं- इसे ही 'नवधा भक्ति' नाम दिया गया है। जिसमें श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी ने नाम, रूप, गुण, लीला, कीर्तन, शील-शक्ति-सौंदर्य वंदना से नवधा-भक्ति का निरूपण किया है। विनय पत्रिका के पदों में आत्मनिवेदन का बहुत ही ऊँचा स्तर है। विनय का एक उदाहरण लीजए। यहाँ हनुमान जी सीता से विनय कर रहे हैं :

कबहुंक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि लीजियो, कछु करून-कथा चलाइ।
दीन, सब अंगहीन, छीन, मलीन, अधी अघाइ।

भक्त तुलसी के लिए राम का नाम 'चारू चिंतामणि' है, 'सुरसरिता' है और रामकथा संशयरूपी पंछी को भगाने वाली है। तुलसी की वंदना पद्धति अद्‌भुत है :

जय-जय सुरनायक, जन सुखदायक प्रणत प्राण भगवंता।
गो-हिज हितकारी, जै असुरारी, सिंधु सुता प्रियकंता।

नाम-भक्ति की स्थिति तो यह है कि 'नाम सकल नामन ते अधिका' है तथा इस नाम की महिमा को स्वयं राम नहीं गा सकते हैं। राम के नाम की महिमा अपार है। नाम जप से अजामिल जैसे पापी तर जाते हैं। जुमुहाई लेने पर भी जो राम का नाम ले लेते हैं वे पाप

पुण्य के बंधन से छूट जाते हैं। राम भक्तों के कष्टों के निवारण के लिए ही अवतार धारण करते हैं। भक्तों के लिए ही राम निराकार, निर्गुण रूप से सगुण साकार रूप धारण करते हैं। वे अमंगल को हटाकर मंगल करते हैं। तुलसी ज्ञान और भक्ति की तुलना में कहते हैं कि ज्ञान से भक्ति श्रेष्ठ है- पर ज्ञानी भक्त और भी अच्छा। इस प्रकार विनय और शरणागति तुलसी की दास्य-भक्ति के स्थायी आधार है। ध्यान रखने की बात यह है कि तुलसी के लिए लोक मंगलकारी भक्ति ही परममूल्य है।

### 8.7.1 सूर और तुलसी की भक्ति-पद्धति की तुलना

सूर और तुलसी दोनों ही वैष्णव परंपरा के सगुण भक्त हैं। सूर के उपास्य लीला बिहारी कृष्ण हैं और तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम। राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के रूप हैं- एक रूप मर्यादा बाँधता है दूसरा बंधनों को तोड़कर स्वच्छंद बनाता है। सूर के कृष्ण में सौंदर्य की प्रधानता है तुलसी के राम शील-शक्ति सौंदर्य तीनों के ही गुण सागर हैं। कृष्ण की शक्ति मुरली है राम की शक्ति धनुष बाण में है।

सूर की भक्ति में सखाभाव की प्रधानता है- तुलसी की भक्ति में दास्य-भाव तुलसी दास्यभक्ति की प्रधानता में 'सेव्य सेवक' सिद्धांत मानते हैं। 'विनय पत्रिका' के पदों में दैन्य और विनय का समर्पण भाव है। तुलसी स्पष्ट कहते हैं :

> तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
> हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी।
> नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
> मो समान आरत नहि, अरतिहर तो सो।

सूर के विनय संबंधी पदों में दैन्य है- पर अधिकांश पदों में सूर कृष्ण के सखा ही हैं। सूर कभी निर्गुण की ओर नहीं जाते हैं। उन्होंने साफ कहा है- जिसके रूप नहीं हैं, गुण नहीं है, आकार नहीं है वह आगम्य है। पर तुलसी निर्गुण-सगुण दोनों के समन्वयवाद से बने भक्त हैं। सूर की भक्ति में एकांत तन्मयता है- तुलसी की भक्ति में लोक मंगल की प्रबल भावना। सूर की भक्ति समाज-निरपेक्ष एवं एकांतिक है- पर तुलसी की समाज चेतना जन-जन को कष्टों से उबारने वाली भक्ति में है। सूर की भक्ति पुष्टिमार्ग की रागानुगा भक्ति है, पर तुलसी की भक्ति लोक संग्रह भाव की विशिष्टाद्वैत से समर्पित वैधी या मर्यादाभाव की भक्ति।

**बोध प्रश्न ख**

1. तुलसीदास के भाव-पक्ष पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए-

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

2. तुलसी काव्य में सामंत-विरोधी तर्कों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

3. तुलसीदास ने समाज का यथार्थ चित्रण किया है- दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

4. तुलसी की समन्वय भावना पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए-

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

5. तुलसीदास के दार्शनिक मत के नाम पर सही (✓) गलत (×) का निशान लगाइये-

अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद

6. तुलसीदास की भक्ति-पद्धति की विशेषताओं का सात पंक्तियों में विवरण दीजिए-

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

7. सूर और तुलसी की भक्ति-पद्धति में भेद निरूपित कीजिए। उत्तर तीन पंक्तियों का हो।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

## 8.8 अभिव्यंजना शिल्प

तुलसीदास ने अभिव्यंजना-शिल्प की कुशलता का आदर्श प्रस्तुत किया है। अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति देने में उनकी सर्जनात्मकता अद्वितीय है। भावों विचारों को व्यक्त करने वाली उनकी भाषा में हृदय का पूरा योग है, वाक्य रचना सुव्यवस्थित एवं प्रौढ़ है। अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों काव्य-भाषाओं पर उनका समान अधिकार है। प्रसंगानुकूल काव्य-भाषा ने उनके भावों को लोक-मन में स्थायी रूप से स्थान दिलाया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी कला की विशिष्टताओं पर लिखा है कि 'नाना पुराण निगमागम का अभ्यास उन्होंने किया था और लोकप्रिय साहित्य और साधना की नाड़ी उन्होंने पहचानी थी। पंडितों ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि उस युग में प्रचलित ऐसी कोई भी काव्यपद्धति नहीं थी जिस पर उन्होंने अपनी छाप न लगा दी हो। चंद के छप्पय, कबीर के दोहे, सूरदास के पद, जायसी की दोहा-चौपाइयाँ रीतिकारों के सवैया-कवित्त, रहीम के बरवै, गाँव वालों के सोहर आदि जितने भी प्रकार की छंद पद्धतियाँ उन दिनों लोक में प्रसिद्ध थीं, सबको उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर अपने रंग में रंग दिया।' (हिंदी साहित्य की भूमिका पृष्ठ 119)

### 8.8.1 काव्य-रूप

तुलसीदास से पूर्व साहित्य क्षेत्र में मुक्तक और प्रबंधकाव्य रूपों के कई प्रयोग प्रचलित थे। तुलसी ने इन काव्यरूपों को अपने ढंग से ग्रहण किया। (1) मुक्तक परंपरा (2) गीतिकाव्य परंपरा (3) प्रबंध परंपरा। मुक्तक काव्य रूपों के अंतर्गत कवितावली, दोहावली, कृष्ण गीतावली आदि रचनाएँ आती हैं। पर इनमें कथा-तत्व खण्डित हैं तथा कवित्त-छप्पय की भौली का प्रयोग है। कवित्त में एक भाव अपनी पूर्णता पाता है। शायद समय-समय पर जो कुछ तुलसीदास ने लिखा होगा उसे पीछे से संग्रह कर दिया गया यही स्फुट पद मुक्तक काव्य हैं। दूसरे इन मुक्तक रचनाओं में 'सूरसागर' की भाँति ही कथा के मार्मिक अंशों को ही पदों में कवियों ने ढाला है- यहाँ कथा कहना, कथा में संबंध निर्वाह का ध्यान रखना उनका उद्देश्य नहीं है।

गीतिकाव्य परंपरा की सभी विशेषताओं से युक्त रचना है- विनय पत्रिका। इसमें आत्माभिव्यक्ति, संगीत और भावान्विति तीनों का सफल योग हुआ है। 'विनय-पत्रिका' भक्तिरस का अखण्ड सागर है। इसमें भक्ति के साथ शांत की धारा भी प्रवाहित है। इसमें विधि राग-रागनियों का जैसे धना श्री, बसंत, भैरव, मारू आदि का प्रयोग है। कलियुग से त्रस्त तुलसी राम के दरबार में पत्रिका भेजते हैं। 'मानस' पर पौराणिक-शैली की (वह परंपरा जिसमें पउम परिउ, महापुराण आदि अपभ्रंश काव्य लिखे गए हैं) गहरी छाप है। तुलसीदास इस शैली को प्रबंध में प्रयुक्त कर लेते हैं-

> आखर-अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।

तुलसी साफ कहते रहते हैं कि वे राम की कथा को लेकर एक सुगठित प्रबंधकाव्य रच रहे हैं। इस प्रबंधरचना का उद्देश्य लोकमंगल है। यथा-

> कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।

इस लोकहित दृष्टि तथा राम की लीलादृष्टि के कारण भी 'मानस' चरित काव्य नहीं है। 'मानस' में गठित कथात्मकता तथा अखंड रसात्मकता दोनों के कारण प्रबंधकला की सफल निर्वाह है। यह प्रबंधकाव्य अपनी काव्यशक्ति एवं लोकदृष्टि के कारण महाकाव्य के सभी प्रतिमानों पर खरा सिद्ध होता है। भक्ति-आंदोलन का सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष

'मानस' की राम कथा की 'सहज कवित की रति विमल' अर्थात् सहज काव्यात्मकता में उजागर किया गया है। जीवन का समग्र चित्रण धीरोदत्त नायक, महान् उद्देश्य, उदत्त और भव्य शैली, गंभीर रसधारा आदि सभी महाकाव्य के लक्षण 'मानस' में मिलते हैं। 'रचना-कौशल, प्रबंधपटुता, सहृदयता, इतिवृत की अटूट कड़ी सभी कुछ 'मानस' में एक साथ मिल जाते हैं। यहाँ तुलसी प्रबंध और मुक्तक धारा दोनों में समन्वय स्थापित करते दिखाई देते हैं।

### 8.8.2 काव्य शैलियों का प्रयोग और पालन

तुलसी के सामने कई काव्यशैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें पाँच मुख्य थीं- 1) वीरगाथा की छप्पय पद्धति 2) विद्यापति एवं सूरदास की गीत पद्धति 3) गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया पद्धति 4) कबीरदास की नीति संबंधी की बानी की दोहा पद्धति जो अपभ्रंश काल से चली आती थीं और 5) ईश्वरदास की दोहा-चौपाई वाली पद्धति।

1) तुलसी की छप्पय-पद्धति की निपुणता देखिए :

   परन चोर चटकन चकोट आदि उर सिर बज्जत
   विकट कटक विद्दरत वीर वादि जिमि गज्जत
   लंगूर लपेटत पटकि पट, जयति राम जय उच्चरत।
   तुलसीदास पवननंदन अटल तुद्ध क्रुद्ध कोतुक हरत।

2) तुलसीदास ने विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति पर 'गीतावली' और विनय-पत्रिका लिखी है यथा-

   ऐसी मूढ़ता या मन की
   परि हरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओसकन की।

3) गंग और भाटों की कविता-सवैया पद्धति पर 'कवितावली' की रचना की है-

   1) बालधी बिसाल विकराल ज्वाल जाल यानौ,
      लंकलीलिबो को काल रसना पसारी है।

   2) गोरों गरूर गुमान भरो यह, कौसिक छोटो सो ढोटो है काम

4) नीति-पद्धति पर 'राम चरित मानस' तथा 'दोहावली' में सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं-

   धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिए चारी।

5) दोहा-चौपाई पद्धति पर जायसी ने 'पद्मावत' जैसा प्रबंधकाव्य लिखा था। जायसी में ठेठ अवधी भाषा की मिठास है- पर उसी पद्धति पर तुलसी 'रामचरितमानस' लिखते हैं- तो अवधी में संस्कृत की कोमलकांत पदावली का भी मनोहर मिश्रण कर देते हैं-

   अमियमूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरूज परिवारू।।

सारांश यह है कि हिंदी काव्य में सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना आसन जमाया है। यह भौलीगत दक्षता और उच्चता किसी अन्य कवि को भक्तिकाल में प्राप्त नहीं हैं। आ. शुक्ल ने लिखा है कि 'गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिंदीकाव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिंदी काव्य की शक्ति का प्रसार इनकी रचनाओं से ही पहले-पहल दिखाई पड़ा।'

### 8.8.3 काव्य-भाषा

हिंदी के भक्तिकाल में तुलसीदास अकेले ऐसे रचनाकार हैं जिनका अवधी तथा ब्रजी दोनों भाषा पर समानाधिकार है। गोस्वामी जी की संस्कृत इतनी अच्छी है कि जब कभी संस्कृत

में लिखते हैं कालिदास की स्मृति ताजा करते हैं। भाषा पर तुलसी के अधिकार को देखते हुए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'भाषा की दृष्टि से तुलसी की तुलना हिंदी के किसी अन्य कवि से नहीं हो सकती। उनकी भाषा में भी एक समन्वय की चेष्टा है। तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है, उतनी ही शास्त्रीय। उसमें संस्कृत का मिश्रण बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। जहाँ जैसा विषय भाषा अपने आप उसके अनुकूल हो जाती है।''

तुलसी ने अपभ्रंश भाषा के कवियों की भाँति लोकभाषा में काव्य लिखने का संकल्प किया है। उन्हें ध्यान है कि संस्कृत भाषा तथा काव्य परंपरा के प्रेमी उन्हें दोष देंगे। किन्तु उन्हें विश्वास है कि रामकथा को देशी भाषा में लिखने पर ही जनहित होगा-

भनितिभदेस वस्तु भलि बरनी। रामकथा जगमंगल करनी।।

प्राकृत-अपभ्रंश की लोकभाषा परंपरा से उन्हें ताकत मिली थी और उनमें यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि लोक भाषा में ही लिखना चाहिए-

जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।

तुलसी की भाषा के लिए आकर्षण का कारण है कि यह न तो संस्कृत जैसी कृत्रिम भाषा है और न दीर्घ समास खण्डों वाली कठिन भाषा। तुलसी की काव्यभाषा में बोलियों का मुक्त समन्वय दिखाई देता है।

संस्कृत के तत्सम शब्द तुलसी की भाषा में काफी मिलते हैं। तुलसी ने कुछ पद तो संस्कृत में ही लिखे जैसे 'वर्णनामर्थ सघानां रसानां छंद सामपि'। इसके साथ कुछ पदों का निर्माण संस्कृत-हिंदी की मिश्रित पदावली से किया जैसे विनय पत्रिका में 'श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरणभव भय वारुंण?'

तुलसी की काव्य-भाषा में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की शब्दसंपदा भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं प्रायः वीर, रौद्र, भयानक रसों के प्रयोग में उक्त भाषाओं के शब्द बहुतायत से आते हैं। इन भाषाओं के द्वित्व शब्द 'घट्टा' 'चमकंहि' आदि। 'कवितावली' के युद्धवर्णन या 'मानस' के युद्धवर्णन के शब्दों का नादसौंदर्य, ओजगुण और भाव-व्यंजना अनुपम है।

तुलसी की समन्वयात्मक प्रकृति ने भारतीय भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी खुलकर ग्रहण किया गया है- जैसे गरूर, गुमान, गरीब, निवाज, खसम, जहान, खलक आदि अरबी फारसी-तुर्की के शब्द। कुछ विदेशी भाब्दों में देशी प्रत्यय लगाकर वे व्यवहार में लाए हैं- जैसे सरीक से सरीकता-'रावरे पिनाक में सरीकता कहाँ रही।' प्रांतीय और देशज शब्दों के प्रयोग में तुलसी माहिर कवि है। इन शब्दों में अभिधा-लक्षणा व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों का रम्यनिवास है। तुलसी की लोकोक्ति मुहावरों से भरी हजारों सूक्तियाँ आज भी शिक्षित-अशिक्षित जनता की जीभ पर रहती हैं और लोग बात-बात में कहते मिलेंगे 'कोउ नृप होय हमैं का हानी' या 'कर्मप्रधान विश्व रचि राखा' आदि।

## 8.8.4 छंद-योजना

कविता में छंद का कार्य है- भाव की गति, लय, ताल को सुंदर रूप में ढालकर व्यक्त करना। कवि का स्वभाव ही छंद में प्रकट होता है। इस दृष्टि से हम तुलसी को देखते हैं तो पाते हैं कि अर्थ के अनुकूल उनकी छंदयोजना बराबर चलती है। 'मानस' जैसे प्रबंधकाव्य में दोहा-चौपाई जैसे चिर परिचित छंद ही अधिक हैं पर भावानुकूल रोला, छप्पय आदि भी आते ही रहते हैं। वे सर्गों के बीच प्रसंगानुकूल छंदों का परिवर्तन करते हैं।

दरअसल, 'मानस' की रचना कड़वकबद्ध शैली में हुई है जिस पर अपभ्रंश की छंद योजना का प्रभाव है। 'मानस' में चौपाई दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभंगी और चौपाई जैसे मात्रिक छंदों के प्रयोग में छंद के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं करते हैं। जायसी की भाँति वे अनेक स्थलों पर अर्द्धालियों को ही पूरी चौपाई मानकर 9,11,13, और 15 अर्द्धालियाँ तक रख देते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि तुलसी ने छंदों के व्यवहार सिद्ध प्रयोगों को ही अपनाया है, शास्त्रीय नियमों को नहीं। प्रायः जायसी की तरह पन्द्रह मात्रा की चौपाइयाँ रखी हैं। जबकि चौपाई के प्रत्येक चरण में 16 मात्राओं के साथ जगण, तगण की बात छंदशास्त्र में मिलती है। यही बात दोहा के लिए भी सच है। दोहा में 13 और 11 मात्राएँ होती हैं पर तुलसी 13 की जगह 12 मात्राएँ ही रख देते हैं यथा-

सुर समूह विनती करि, पहुँच निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रकटें, अखिल लोक विश्राम।

ऐसा नहीं है कि तुलसी को दोहा, चौपाई आदि का शास्त्रीय छंद नियम पता नहीं रहा होगा। शब्द की लय, संगीत, नादसौंदर्य, गति और भाव-व्यंजना पर उनका ध्यान अधिक केन्द्रित रहता है। वे छंद-नियम की परवाह नहीं करते हैं। नीति के लिए दोहा, श्रृंगारिक और आलंकारिक वर्णन के लिए रहीम के बरबै, राम के यशगान के लिए कवित्त सवैया शैली तथा युद्धवर्णन में छप्पय शैली वे अपनाते हैं। भाषा बिम्बबहुल है- जो भाव को मूर्त्त, गोचर एवं निर्दिष्ट रूप में लाती है। यथा- 'पीपरपात सरिस मन डोला' अर्थात मन ऐसे डोल गया जैसे थोड़े सी वायु का स्पर्श पाते ही पीपल का पत्ता। तुलसी ने प्रकृति से भाषा के भावसाम्य लिए हैं।

### 8.8.5 अलंकार - योजना

भारतीय काव्यशास्त्र के विद्वान तुलसी यह अच्छी तरह जानते थे कि अलंकार वाणी की सजावट के लिए ही नहीं होते, वे भावों की अभिव्यक्ति के भी विशेषद्वार हैं। तुलसी अलंकारवादी नहीं थे पर अलंकारों के उपयोग से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने अलंकारों का सारा विधान प्रकृत रूप में या सहज रूप में किया हैं तुलसी की समस्त अलंकार योजना का उद्देश्य है- 'भाव को चित्र रूप में अभिव्यक्ति देना एवं उनके सौंदर्य-प्रभाव में वृद्धि करना, रूप चित्रण तथा वस्तुवर्णन में रमणीयता लाना, अनुभूतियों को मूर्त्त करना।' उनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, रूपकातिशयेक्ति आदि अलंकारों की प्रधानता है। उन्हें उपमा और रूपक विशेष प्रिय हैं। ध्यान रहे यहाँ राम एवं सीता की उपमा के लिए कोई उपमान नहीं है- वे स्वयं उपमेय उपमान दोनों हैं- यथा- 'सब उपमा कवि रहे जुठारीं। केई पटतरिय विदेह कुमारी।' विदेह कुमारी सीता के सामने कवियों की सभी उपमाएं जूठी हैं। तुलसीदास की आदत है कि वे रूपवर्णन में विशेषकर ध्यान देते हैं-यथा-'ठुमकि चलत राम चन्द्र' जैसे गेय पदों ने लोकहृदय पर आसन जमा लिया है। उनकी अलंकार योजना यह सिद्ध करती है कि तुलसी को शास्त्र परंपरा का ज्ञान था पर वे लोकपरंपरा को अधिक आदर देते थे।

**बोध प्रश्न ग**

1. तुलसी के काव्यरूपों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

2. तुलसीदास ने किन पाँच शैलियों को अपनाया है, लिखिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

3. तुलसी की काव्य-भाषा पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

4. सही (✓) गलत (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

- रामचरितमानस ब्रजी में लिखा गया है।
- रामचरितमानस की भाषा अवधी है।
- कवितावली की भाषा अवधी है।
- कवितावली प्रबंधकाव्य है।
- विनय पत्रिका गीतिकाव्य परंपरा की उपलब्धि है।

5. तुलसी की छंदयोजना पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

6. तुलसीदास के अलंकारों ने इनके काव्य-सौंदर्य को बढ़ाया है यह कहना कहाँ तक उचित हैं चार-पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 8.9 मूल्यांकन

तुलसीदास का मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिंदी भाषी जनता का सबसे बड़ा कवि घोषित किया है। 'यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिंदी का सबसे बड़ा कवि कौन है उसका एकमात्र यही उत्तर हो सकता है कि भारतहृदय भारती कंठ, भक्त चूड़ामणी गोस्वामी तुलसीदास।' (गोस्वामी तुलसीदास पृ. 142) गोस्वामी जी को 'भारती हृदय' कहने का अर्थ है- भारतीय लोक चित्त का वाहक, भारतीय सांस्कृतिक-संवेदन की विशालता का रक्षक और दूसरों के लिए या लोककल्याण के लिए जीने वाला। भारतीय परंपरा, दर्शन और साहित्य का सारवान तत्व ही तुलसी की सृजनात्मकता में आकार ग्रहण कर लेता है। लोकमंगल, लोक-रक्षा, लोक-चिंता की भावना ही उनके भक्त का रूप है। उनके राम दीन-दुःखी को गले लगाने वाले 'दीन बंधु' एवं 'गरीबनिवाज' है। सूर में भक्ति की तन्मयता है- पर सामाजिक भावना का प्रसार नहीं है। कबीर में भक्त की विनय से ज्यादा सुधारक का अक्खड़पन है। जायसी में प्रेम की महिमा है- पर तुलसी में सभी प्रकार से समन्वय की विराट चेष्टा है। निश्चय ही वे लोकनायक कहलाने के अधिकारी हैं। हमारी पूरी लोक-जागरण की परंपरा उनके सृजन में साकार रूप धारण करती दिखाई देती है। इसलिए तुलसी को रीतिवादी परंपरा में नहीं कह सकते। तुलसी के साथ कबीर तथा सूरदास को ही रखा जा सकता है। भक्ति-आंदोलन के स्तर पर तुलसी से कबीर एवं सूर की गहरी समानता है। इनमें भक्ति वेदों से बढ़कर है। कबीर एवं तुलसी दोनों ही गनिक-अजामिल गीध को भक्त परंपरा में अपना लेते हैं। लोक मंगल के लिए कबीर और दोनों ही गुरु की महिमा, सत्संग महिमा, बुराइयों का खंडन करते हैं।

जीवन के नाना-भावों, दशाओं, व्यापारों की जितनी व्यापक अभिव्यक्ति तुलसी में मिलती है उतनी न सूर में है, न कबीर में न जायसी में है।

## 8.10 तुलसीदास के काव्य का वाचन और व्याख्या

आप तुलसीदास के काव्य सृजन की विशेषताओं का अध्ययन कर चुके हैं। इस महाकवि के काव्य की व्याख्या किस ढंग से की जानी चाहिए इसके लिए हम तुलसी काव्य के कुछ अंशों की संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। साथ ही यहाँ कुछ अंश अभ्यास के लिए भी दिए जा रहे हैं- जिनकी व्याख्या आप स्वयं करेंगे।

1) **एहि-घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौ जलथाह दिखाई हौं जू।**
**परसे पग धूरि तरे तरनी, घरनी घर का समझाइ हौं जू।**
**'तुलसी' अवलंबन और छू, लरिका केहि भाँति जिआइ हौं जू।**
**बर मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।**

**शब्दार्थ** : थोरिक- थोड़ी ही। अहै-(अस्ति) है। लौं-तक। परसे-स्पर्श या छूने से। तरनी-तरणी या नाव। घरनी-गृहिणी, पत्नी। का-क्या। लरिका-बाल-बच्चे। बरू-भले ही।

**संदर्भ** : यह पद्य (सवैया) 'कवितावली' के 'अयोध्याकांड' में से लिया गया है। इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

**प्रसंग** : तुलसीदास ने राम और केवट कथा के संवाद को मार्मिकता से उठाया है। राम वन-गमन के लिए यात्रा कर रहे हैं- वे रास्ते में पड़ने वाली गंगा जी को नाव से पार करना चाहते हैं किन्तु वन गमन के दौरान एक अद्भुत घटना घट चुकी है कि राम के चरण की धूलि के स्पर्श से गौतम की पत्नी अहिल्या पत्थर से स्त्री हो गई। वनवासियों में फैलकर

यह कथा केवट के कान तक पहुँच गई है। राम के पैरों के स्पर्श से उसकी नाव स्त्री न हो जाए यह चिंता केवट को बैचेन किए हैं। इसीलिए वह राम से अपनी मन की बात निर्भय होकर कहता है कि मैं आपके पैरों को धोए बिना नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा, क्योंकि आपके चरणों की महिमा से मैं परिचित हो गया हूँ।

व्याख्या : राम से केवट विनय-भाव से कह रहा है कि नाव पर आपको पैर धोए बिना नहीं चढ़ाऊँगा। हाँ, इतना कर सकता हूँ कि इस घाट से कुछ दूर पर गंगा जी उथली है, वहाँ कमर तक ही पानी की गहराई है। मैं आपको उसकी थाह दिए देता हूँ। आप स्वयं ही गंगा जी को घुसकर पार कर लीजिए। नाव से इसलिए नहीं पार ले जा पा रहा हूँ कि आप के पैरों की धूलि के स्पर्श से मेरी नाव तर जाएगी अर्थात् अहिल्या की तरह स्त्री हो जाएगी। यह नाव ही मेरे बाल-बच्चों के पालन-पोषण का एकमात्र सहारा है। जब मेरी घरवाली पूछेगी कि नाव कहाँ गई तो मैं उसे क्या कहकर समझाऊँगा। नाव नष्ट हो गई तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे। मैं आपको नाव से गंगा पार कराने में लाचार हूँ। आप चाहे इस अवज्ञा के लिए मुझे भले ही मारें-पीटें पर मैं बिना पैर धोए अपनी नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

**विशेष :**

1. राम और केवट के इस संवाद से यह पता चलता है कि बनवासी कितनी कठिनाई से जीवन-यापन करते थे। मुश्किल से रोटी कमाने के लिए नाव बना पाते थे और वही एकमात्र उनकी जीविका का सहारा थी।
2. केवट निर्भयता से अपने मन की बात राम से कह रहा है। राम उसकी बात को ध्यान से सुन-समझ रहे हैं। प्रजाजन राजा से अपनी व्यथा कहने की स्थिति में थी। यह संकेत भी मिलता है।
3. जनता की पिछड़ी आर्थिक स्थिति का चित्र मिलता है।
4. अहिल्या-गौतम ऋषि की समर्पित सुन्दरी पत्नी- जिसके साथ इंद्र ने धोखे से व्यभिचार किया और ऋषि ने क्रोधवश उसे शाप देकर पत्थर बना दिया। अहिल्या के क्षमा मांगने पर ऋषि ने कहा तुम्हें राम के चरणों से ही मुक्ति मिलेगी।
5. इस सवैया छंद में शब्दों का क्रम-विन्यास ऐसा है कि गेयता कि शक्ति अद्‌भुत रूप में विद्यमान है।
6. रामकथा की ग्रामीण-संवेदना और चेतना का यहाँ मार्मिक चित्रण हुआ है।
7. पर से पग धूरि, तरे-तरनी, धरनी-धरे में अनुप्रास अलंकार का सहज प्रयोग है। ऐसा ही सहज प्रयोग भाव का उत्कर्श करते हैं।
8. राम के चरणों के प्रति केवट के मन का भक्तिभाव व्यक्त हुआ है। गाँवों-वनों में बुद्धिमान लोग रहते थे उसे सांस्कृतिक चेतना के केवट प्रस्तुत कर रहा है।
9. विष्णु के चरणों से गंगा निकली है। वे ही चरण पाने के लिए गंगा बेचैन है। विष्णु के चरणों की शक्ति का वर्णन समस्त वैष्णव-परंपरा में दास्य-भाव से मिलता है।
10. थोरिक, तरनी जैसे शब्दों में ब्रजभाषा की लोकलय का सौंदर्य फूट पड़ा है।

2) कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनहेमय मंजुलबानी। सकुची सिंय मन महुं मुसकानी।।
तिन्हहि विलोकि विलोकति धरनी। दुहुं संकोच सकुचति वर बरनी।

सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।
बहुरि वदन विधु अंचल ढांकी। पिय तन चितहुं भौहं करि बांकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेहु तिन्हहिं सियसपननि।
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रकन्ह राय रासि जनु-लूंटी।
अति सप्रेम सिय पांव परि बहुंविध देहि असीस।
सदा सोहागिनी होहु तुम्ह गजब लगि महि अहि सीस।।

**शब्दार्थ** : कोटि मनोज- करोड़ों कामदेव। समुखि- सुंदर मुखवाली। अहि-ये। मंजुल-मनोहर। धरनी-जमीन। बरनी-दुल्हन। बदन-मुख। विधु-चन्द्रमा। खंजन मंजु-खंजन पक्षी की तरह सुंदर आँखें। सयननि-संकेतों से। मुदित-प्रसन्न। बधूटीं-दुल्हनें। राय-राजा। महि-धरती। अहि-शेषनाग।

**संदर्भ** : प्रस्तुत पद्य खंड 'रामचरितमानस' के 'अयोध्याकांड' में से लिया गया है। इसक रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

**प्रसंग** : तुलसीदास ग्रामीण सांस्कृतिक की संवेदना को व्यक्त करने वाले कवि हैं। राम अयोध्या से वनवासी होकर गाँवों के बीच से जा रहे हैं। राम-सीता और लक्ष्मण की यह वन-यात्रा देखकर ग्रामीण लोग व्यथा में डूबते हैं लेकिन उनके दर्शन उन्हें मोह लेते हैं। बालक, युवा, वृद्ध सभी उन्हें देखने दौड़ते हैं। सुन्दर छवि वाले राम-सीता-लक्ष्मण को जो देखता है देखता ही रह जाता है। इसी अवसर पर गाँव की नवेली दुल्हनें काले रंग के राम के साथ गोरी सीता को देखकर शिष्ट मजाक करती हैं। गाँव की दुल्हनें सीता से पूछती हैं कि ये तुम्हारे कौन हैं। लेकिन उनके पूछने की कला पर सीता प्रसन्न हैं।

व्याख्या : गाँव की दुल्हनें सीता से पूछ रही है कि हे सुन्दर मुख वाली! मुझे बताओं कि जिनकी छवि के सामने करोड़ों कामदेव (सौंदर्य के देवता) लज्जित होते हैं- जो कामदेव से भी ज्यादा सुंदर हैं- वे तुम्हारे कौन लगते हैं। उनके इस प्रश्न की बुद्धिमानी का भाव समझकर कि ग्राम वधूटियों ने स्नेहमय सुंदर वाणी में उनके पति का नाम पूछना चाहा है- सीता संकोच में पड़ गई। उनके शिष्ट हास्य को समझते हुए वे स्वयं मुसकरा उठीं। सीता ने राम को देखकर अपना मुख झुका लिया-धरती की ओर देखने लगीं। संकोच में सीता का श्रेष्ठ दुल्हन भाव पड़ गया कि पति का नाम कैसे ले लूं। संकोच से भरी मृग लोचनी सीता ने कोकिल के समान मीठे वचनों में कहा कि सहज सुन्दर गोरे शरीर वाले मेरे देवर लक्ष्मण हैं। उसके बाद उन्होंने अपना चन्द्रमुख अंचल में ढँका-घूँघट निकाला और राम को बांके अनुराग नयनों से भौंहे चबाकर देखा। खंजन पक्षी सी सुंदर आंखों की भाव-भंगिमा से राम को संकेतों से या हाव-भाव से कह दिया कि ये मेरे पति हैं। यह भावस्थिति देखकर ग्राम की वधुएं प्रसन्न हो गईं-उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों गरीबों ने राजा के रत्न भण्डार को लूट लिया हो। उनके आनंद की कोई सीमा न रही। वे सभी प्रेम से सीता के चरण स्पर्श कर उठीं और अनेक प्रकार से उनके जीवन की मंगल कामनाएँ करने लगीं कि तुम हमेशा सोहागवती रहो। जब तक शेषनाग इस धरती को धारण किए हुए हैं तुम सुहागिन रहो।

**विशेष** :

1) गँवई-संवेदना में लोक-संस्कृति का सौंदर्य कवि ने यहाँ व्यक्त किया है।

2) मध्ययुगीन नारियाँ अपने पति का सम्मान-संकोच के कारण नाम नहीं लेती थीं- उस लोक-भाव का संकेत दिया।

3) गाँव के लोक चतुर, बुद्धिमान, परिहास प्रिय और जिंदादिल होते हैं- उस भाव-स्थिति का बिंब (चित्र) प्रस्तुत किया है।

4) गाँव की वधूटियों का प्रसंग तुलसीदास को विशेष प्रिय है। 'कवितावली' में इसी प्रसंग पर लिखा है।

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाय कछु मुस्काय चली।

5) भारतीय मत से सौंदर्य का देवता कामदेव है। रति और प्रीति इनकी दो पत्नियाँ हैं।

6) लोक विश्वास है कि इस धरती को शेषनाग अपने फन पर उठाए हुए हैं।

7) यहाँ चौपाई तथा दोहा-छंद का प्रयोग हुआ है।

8) 'सहज सुभाय सुभग' जैसे प्रयोगों में अनुप्रास तथा 'रकन्हराय-रासि जनु लूटी' में उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग से भाव के प्रभाव की वृद्धि की है।

9) खंजन पक्षी की आँखें परंपरागत कवि प्रसिद्धि में सबसे मनोहर मानी जाती हैं। तुलसीदास ने 'बालमृग लोचिनि' 'पिकवयनी' आदि में परंपरागत उपमानों से नया अर्थ चमत्कार पैदा किया है।

10) नारी के लज्जाजनक अनुभावों की 'विलोकति धरनी' आदि से सहज अभिव्यक्ति दी है।

11) ग्राम की सांस्कृति संवेदना में शिष्टचार पूर्ण संवाद की कला का परिष्कृत रूप मिलता है। यह तथ्य भी सीता तथा गाँव की वधुओं की बातचीत से उजागर किया गया है।

12) तुलसी का परिष्कृत सौंदर्य बोध-मर्यादा से शोभित है, यहाँ यह प्रमाण भी मिलता है।

13) अवधी-भाषा की अभिव्यंजना का सौंदर्य 'लजावनि' 'कहुहु' 'आहि' जैसे शब्दों से खिल उठा है। लोकभाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का यहाँ रमणीय रूप व्यक्त हुआ है।

3) **तन की दुति स्याम सरोरूह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।**
**अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि आनंग की दूरि करैं।**
**दमकैं दतियाँ दुति-दामिनि ज्यों, किलकैं कित बाल-विनोद करैं।**
**अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर में बिहरैं। ।**

**शब्दार्थ** : दुति-द्युति, आभा। सरोरूह-नीलकमल। कंज-कमल। मंजुलताई-सुंदरता। सोहत-शोभित। आनंग-कामदेव। दतियाँ-छोटे बच्चे के दांत। कल-सुंदर। बिहरैं-निवास करें।

**संदर्भ** : प्रस्तुत पद्य 'कवितावली' के 'बालकांड' में से लिया गया है। इसके रचयिता तुलसीदास जी हैं।

**प्रसंग** : तुलसीदास ने बाल-लीला का वर्णन सूरदास की भाँति ही किया है। उन पर सूर का प्रभाव बाल-वर्णन पर स्पष्ट झलकता है। दशरथ के चार पुत्र राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तुलसी के मन-मंदिर में निवास करते हैं। बालकों की सहज क्रीड़ाओं का चित्रण ही इस सवैया में तुलसी कर रहे हैं।

**व्याख्या** : रामचन्द्र जी के शरीर की मनोहर कांति नीलकमल की भांति प्रतीत होती है। नेत्रों की अपूर्व शोभा के आगे कमलों की सुंदरता फीकी दिखाई देती है। धूल भरे, खेलते

स्याम बहुत ही सुंदर लगते हैं। उनके रूप-सौंदर्य की यह अपार शोभा सौंदर्य के देवता कामदेव के रूप को भी मात करती है। जब वे हंसते हैं तब उनके छोटे-छोटे दाँतों की ज्योति दामिनी या बादलों में चमकने वाली बिजली की भाँति दमकती है। किलकारी भरते हुए इन बालकों का बाल-विनोद कानों को सुखद है। राजा दशरथ के ऐसे सुंदर चारों बालक तुलसीदास के मन रूपी मंदिर में विहार करें या बिहार करते हैं।

विशेष :

1. यह वात्सल्य-रस का अत्यंत ललित सवैया है।
2. सूरदास तथा रसखान ने बाल-सौंदर्य-वर्णन में 'धूल भरे अति शोधित स्यामजू?' तथा 'शोभित कर नवनीत लिए' में इसी भाव भूमि के बिंब प्रस्तुत किए हैं।
3. तुलसी लोक-सौंदर्य के कवि हैं-यह बाल-चित्रण इस तथ्य की पुष्टि करता है।
4. यहाँ बाल-ब्रह्म की उपासना का वैष्णवपक्ष भी कवि ने उजागर किया है।
5. ब्रजभाषा कविता की ललित शब्दावली जैसे 'सरोरूह' आदि शब्दों का सौंदर्य प्रस्तुत किया है।

अब आप संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या करना सीख चुके हैं। आपके अभ्यास के लिए 'विनय पत्रिका' का एक प्रसिद्ध पद नीचे दिया जा रहा है। कह जाता है कि यह पद तुलसीदास ने मीरा के पत्र के उत्तर में लिखा था।

4. **जाके प्रिय न राम वैदेही।**
**सो छोड़िए कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही।**
**तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बंधु भरत महतारी।**
**बलि गुरु तज्यों कंत ब्रज वनतनि भये जग मंगलकारी।**
**नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।**
**अंजन कहा आंखि तेहि फूटै बहुतक कहौं कहां लों।**
**तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो।**
**जासों होय सनेह राम पद ये तो मतो हमारो।**

**शब्दार्थ** : सो-उसे। छोड़िए-त्याग दीजिए। तज्यो-छोड़ दिया। नाते-संबंध। सुहृद-मित्र सुसेव्य-स्वामी।

**संदर्भ** :

..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................

**प्रसंग** :

..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................

व्याख्या :

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

विशेष

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 8.11 सारांश

इस इकाई में हमने सीखा है कि रामकाव्य परंपरा में तुलसीदास का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्होंने राम को एक लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए भारतीय जनता को सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के मूल्य दिए हैं। भक्ति आंदोलन में उनकी भूमिका ने लोक-मंगल की चेतना को दृढ़ किया हैं आपने तुलसीदास के जीवन-परिचय तथा कृतियों से साक्षात्कार करते हुए पाया है कि वे संत-परंपरा की उपलब्धि है। तुलसीदास का समन्वयवाद एक विराट भूमिका पर खड़ा हुआ था जिसमें भक्ति एवं ज्ञान, ब्राह्मण एवं शूद्र, वैष्णव एवं शाक्त-शैव, निर्गुण एवं सगुण का समन्वय हुआ हैं उनके भाव-पक्ष का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है- वे चरित्रों, प्राकृतिक दृश्यों तथा रसों की व्यंजना में अत्यंत सिद्धहस्त कवि हैं।

तुलसी का काव्य राम के माध्यम से उन आशाओं का केन्द्र है जिनसे मानव का विकास एवं भाव-परिष्कार होता है। राम-कथा को काव्य-विषय बनाते समय उन्होंने वेदों-पुराणों की बताई हुई रूपरेखा में काफी परिवर्तन किया है। उनका उद्देश्य भिन्न मत या विचार वालों को राम की भक्ति के आधार पर एक करना है। निर्गुण-सगुण वालों को वे नाम-महिमा के आधार पर एक करते हैं तथा वैष्णवों एवं शैवों को शिव एवं राम का प्रेमी बनाकर। तुलसी का काव्य-सामंतवाद-विरोधी स्वर लेकर आया है। उनकी भक्ति में मानववाद की प्रधानता हैं वे मानते हैं कि- मानव के कर्म-सौंदर्य की महिमा से श्रेष्ठ कुछ नहीं है- उनका दर्शन विशिष्टताद्वैतवाद मानव सौंदर्य की प्रेरणा देता है तथा उनका लीलावाद-अवतारवाद भी ईश्वर के मानवत्व को सिद्ध करता है। उन्होंने दीन-हीन के कष्टों का चित्रण करने के लिए लोक-भाषाओं के भीतर से अपने काव्य-शिल्प को विकसित किया है। तुलसी कवि हैं, भक्त हैं, लीलागायक हैं, लोक और शास्त्र की परंपराओं का सही उपयोग करने वाले हिंदी भाषी जनता के सबसे बड़े कवि हैं।

## 8.12 शब्दावली

**भक्ति** : ईश्वर में परम अनुराग का भाव।

**विभाव** : रस के कारण को विभाव कहते हैं। विभाव के दो भेद होते हैं आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव। आलंबन विभाव के दो भेद फिर किए गए हैं। आश्रय और आलंबन। जिसके हृदय में भाव उत्पन्न होता है- आश्रय कहलाता है और जिसको या जिस आधार से उत्पन्न होता है- आलंबन कहलाता है।

**अनुभाव** : आश्रय के शारीरिक-मानसिक भावों को अनुभाव कहते हैं।

**प्रबंध-पटुता** : अखण्ड कथात्मकता तथा अखंड रसात्मकता के निर्वाह से काव्य में प्रबंध -पटुता पैदा होती है।

**समन्वय** : तुलसी के संदर्भ में इसका अर्थ है लोक और शास्त्र का समाहार या मेल-मिलाप।

**दास्य-भाव** : ईश्वर को स्वामी मानते हुए दास-भाव की भक्ति। इसमें आत्म निवेदन, आत्म-समर्पण का स्वर प्रबल रहता है।

**क्षात्र-धर्म का सौंदर्य** : राम के चरित्र में विद्यमान लोक-मंगल की भावना, परोपकार के लिए धनुष-बाण, धारण करने वाले प्रभु की छवि।

**निगम** : वेदों से चलने वाली परंपरा, कर्म कांड की प्रधानता से भरा मार्ग।

**आगम** : लोक-परंपरा, जिनमें शास्त्र के प्रति विरोध रहता है।

## 8.13 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल रामचन्द्र, गोस्वामी तुलसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

त्रिपाठी रामनरेश, तुलसीदास और उनका काव्य, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

चतुर्वेदी रामस्वरूप, मध्ययुगीन हिंदी काव्यभाषा, लोक भारती, इलाहाबाद

शर्मा रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

## 8.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्नों के उत्तर क**

1. देखिए भाग - 8.3
2. देखिए - रामकाव्य परंपरा
3. देखिए - उपभाग 8.4.1
4. देखिए - उपभाग 8.4.2
5. देखिए - उपभाग 8.4.2
6. देखिए - उपभाग 8.4.2
7. देखिए - उपभाग 8.4.3
8. देखिए - उपभाग 8.4.3

**बोध प्रश्नों के उत्तर ख**

1. तुलसी का भाव पक्ष देखिए भाग- 8.5
2. देखिए - उपभाग 8.5.1
3. देखिए - उपभाग 8.5.2
4. देखिए - उपभाग समन्वय भावना
5. देखिए दार्शनिक विचार - उपभाग 8.6
6. देखिए - भाग भक्ति पद्धति
7. दखिए - उपभाग 8.7.1

**बोध प्रश्नों के उत्तर ग**

1. देखिए - उपभाग 8.8.1
2. देखिए - उपभाग 8.8.2
3. देखिए - उपभाग 8.8.3
4. देखिए - उपभाग 8.8.3
5. देखिए - उपभाग 8.8.4
6. देखिए - उपभाग 8.8.5

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 9 रहीम का काव्य

## इकाई की रूपरेखा


9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 रहीम : जीवन वृत्त

9.3 रचनाकार व्यक्तित्व

9.4 रहीम और उनकी रचनाएँ

9.5 नीति काव्य परम्परा और रहीम

9.6 भाव पक्ष

- 9.6.1 अनुभूति प्रक्रिया और लोक जीवन की अभिव्यक्ति
- 9.6.2 नीति
- 9.6.3 भक्ति
- 9.6.4 श्रृंगार तथा अन्य रस
- 9.6.5 प्रकृति

9.7 अभिव्यक्ति कौशल

- 9.7.1 काव्य भाषा तथा शैली
- 9.7.2 मुहावरे और लोकोक्तियाँ
- 9.7.3 कल्पना, ध्वनि और शब्द शक्ति
- 9.7.4 अलंकार और छंद

9.8 आदान—प्रदान

9.9 मूल्यांकन

9.10 रहीम के काव्य का वाचन और व्याख्या

9.11 सारांश

9.12 शब्दावली

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रहीम के व्यक्तित्व, जीवन और युग को जान सकेंगे;
- रहीम की काव्य-कृतियों तथा उनकी विषय-वस्तु का अध्ययन कर सकेंगे;
- नीति काव्य परम्परा तथा रहीम के योगदान को जान सकेंगे;
- रहीम के काव्य के विविध रूप समझा सकेंगे, और
- रहीम काव्य के अभिव्यक्ति कौशल का निरूपण कर सकेंगे।

## 9.1 प्रस्तावना

अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे रहीम। इस इकाई में आप हिंदी को, राज-सम्मान दिलाने वाले तथा हिंदी-सेवी कवियों में उच्चतम स्थान रखने वाले अब्दुर्रहीम खानखाना के जीवन, व्यक्तित्व, युग तथा काव्य का अध्ययन करेंगे। नीति काव्य परंपरा में रहीम अद्वितीय कवि माने जाते हैं। परन्तु नीति के साथ-साथ भक्ति, श्रृंगार तथ प्रकृति का भी सहज, सरल तथा प्रभावी वर्ण करने वाले जन कवि-रहीम चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। कवि, विद्वान, कला पारखी तथा बहुभाषाविद् रहीम की इसी काव्य प्रतिभा के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष का अनुशीलन इस इकाई में किया गया है।

## 9.2 रहीम : जीवन वृत्त

रहीम का जन्म गुरुवार 17 दिसम्बर, सन् 1556 ई. को लाहौर में हुआ था। रहीम के पिता का नाम था अतालीक बैरमखाँ खानखाना जो कि साम्राज्य के भक्त तथा हुमायूँ के अन्तरंग मित्र थे। स्वभाव से कवि, कर्म से योद्धा तथा बुद्धि से दूरदर्शी बैरमखाँ ने ही बाबर के मुगल साम्राज्य को विस्तृत करते हुए दृढ़ता प्रदान की थी। बादशाह हुमायूँ की मृत्यु के समय जलालुद्दीन अकबर की आयु लगभग तेरह-चौदह वर्ष थी। ऐसी स्थिति में रहीम के पिता बैरमखाँ चार वर्ष तक बादशाह अकबर के शिक्षक (अतालीक) रहे। स्पष्ट है कि हुमायूँ की मृत्यु के बाद बैरमखाँ ने ही अपनी बुद्धि, विवेक, दूरदर्शिता, राजनीतिक निपुणता तथा शौर्य से कुछ काल तक अप्रत्यक्ष रूप से भारत का शासन चलाया तथा अकबर को एक आदर्श शासक के रूप तक पहुँचाया। कहा जाता है कि बैरमखाँ की बहुत सी रानियाँ थी किन्तु किसी से भी संतान न होने के कारण उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था में अपने मित्र हुमायूँ की इच्छा से विवाह किया। बैरमखाँ ने यह विवाह जमींदार जमालखाँ मेवाती की सुन्दरी एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम से किया और यही सुल्ताना बेगम रहीम की माँ बनी, जिन्होंने लाहौर में उन्हें जन्म दिया। रहीम के पिता गुण सम्पन्न व्यक्ति थे उनके ही गुण रहीम को विरासत में मिले थे। पिता बैरमखाँ द्वारा दिया गया 'अब्दुल रहीम' नाम धीरे-धीरे अब्दुर्रहीम बन गया तथा कविता में आकर यह 'रहीम' या 'रहिमन' के रूप में प्रयुक्त होने लगा। राजाधिराज या राजाओं के राजा को 'खानखाना' कहा जाता था और रहीम के पिता बैरमखाँ को यह उपाधि अपने शौर्य प्रदर्शन के कारण प्राप्त हुई थी। इसी शौर्य प्रदर्शन के कारण यह उपाधि आगे चलकर रहीम को भी दी गई। इसी प्रकार इनके नाम से पहले 'मिर्ज़ा' तथा 'नवाब' शब्द भी जोड़े जाते रहे हैं किन्तु प्रचलन में 'रहीम' ही अधिक रहा है।

रहीम का लालन-पालन बहुत लाड़-प्यार से किया गया। किन्तु लगभग चार वर्ष बाद 31 जनवरी सन् 1560 को अफगानों द्वारा पिता बैरमखाँ की हत्या कर दी गई और फिर उन्हें बैरमखाँ के स्वामिभक्त सरदार द्वारा अकबर के दरबार में पहुँचा दिया गया। यहीं इस होनहार बालक का पालन पोषण हुआ। अकबर ने इनकी माता से विवाह कर लिया तथा इन्हें पुत्र की तरह पाला। बादशाह अकबर इनकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। यहीं रहीम ने अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषाओं का ज्ञान हासिल किया। रहीम की भाषाओं में इन तीनों भाषाओं का कौशल तथा बचपन में पढ़ी अकबर की राष्ट्रीय धर्म-नीति और राजनीति की गहरी छाप देखने को मिलती है। रहीम को संस्कृत तथा हिंदी का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। उनमें भाषाओं को जानने की जिज्ञासा प्रबल थी, किन्तु हिंदी के प्रति अपरिमेय स्नेह था। यह भी कहा जाता है कि रहीम विश्व की अनेक प्रसिद्ध भाषाओं में बातचीत कर सकते थे।

रहीम का विवाह बैरमखाँ के विरोधी मिर्ज़ा अजीज कोका की बहन माहबानू से सम्पन्न कराके अकबर ने लम्बे समय की शत्रुता समाप्त करा दी। इसी बेगम से उन्हें तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई। दुर्भाग्य यह रहा कि एक जाना बेगम को छोड़कर शेष सभी बच्चे उनके सामने ही चल बसे।

कुशाग्रबद्धि रहीम अकबर के विश्वासपात्र सेनापति थे। उन्होंने कई विद्रोह कुचले तथा अपनी दक्षता सिद्ध की। वे सूबेदार, मीरअर्ज़ (जो जनता की शिकायतें तथा अर्जियाँ सम्राट तक पहुँचा कर शाही निर्णय से जनता को अवगत कराता है) तथा अतावेगी (शाही घोड़ों की व्यवस्था तथा अस्तबल की देखरेख करने वाला खास विश्वासपात्र) के पदों पर भी रहे। पिता बैरमखाँकी उपाधि 'खानखाना' उन्हें मिली। मुगल दरबार का उच्चतम पद 'वकील-मुतलक़' उन्हें मिला। 'तुज़के बाबरी' का अनुवाद भी उन्होंने किया।

अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर शासन पर बैठा और उसने रहीम को दस लाख की राशि, बारह हज़ार सवार तथा सर्वोत्तम घोड़ा दिया। नूरजहाँ की राजनीति के शिकार रहीम भी हुए, परिणामतः शाहजहाँ का पक्ष लेने पर इन्हें जहाँगीर ने राजद्रोही घोषित किया परन्तु अंततः जहाँगीर की गलतफहमी दूर हुई। रहीम पुनः सम्मानित हुए।

जीवन की दौड़ धूप, चार वीर पुत्रों की मृत्यु-पीड़ा, मासूम पौत्रों की हत्या जैसी घटनाओं ने रहीम को अस्वस्थ बना दिया। परिणामतः दिल्ली आकर सन् 1627 ई. में उनकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गई। गंग इस कवि की दानवीरता पर लिखते हैं :

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो त्यों त्यों नीचे नैन।।

स्ष्ट है कि सहिष्णुता, अनुभव सम्पन्नता तथा दूरदर्शिता से साहित्य और जनजीवन में रस घोलने वाला यह कूटनीतिज्ञ तथा सरल व्यक्ति अपने आप में एक ही था।

## 9.3 रचनाकार व्यक्तित्व

हिन्दू परम्पराओं, रीति रिवाजों, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के प्रति गहरी आस्था रखने वाले मुसलमान कवि रहीम की निष्ठा ने हिंदी समाज को जिस रूप में सिंचित किया है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। रहीम, कला के सच्चे पारखी और कवियों के कल्पतरु थे। व्यक्तित्व की दृढ़ता उनके सेनापतित्व की सूचक है तो स्वभाव की कोमलता उनके कवि रूप की। व्यवहार कुशल रहीम का व्यक्तित्व मानवीय गुणों से तो ओतप्रोत था ही, दायित्वों के निर्वाह में भी खरा उतरता था। युद्धवीर तथा दानवीर रहीम दूरदर्शी भी थे और कूटनीतिज्ञ दाँव पेंचों में सिद्धहस्त भी। लोक जीवन से क्रियात्मक अनुभव बटोर कर काव्य-पाठकों के समक्ष रत्नों की तरह बिखेर देने वाला यह महान व्यक्ति विविध भाषाओं का प्रकांड ज्ञाता भी था। यही कारण है कि अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में वह भक्त कवि सूर, तुलसी तथा रसखान के समकक्ष आ खड़ा होता है। अतः कह सकते हैं कि सेनापति, राजा, भक्त, कवि, भाषाविद, ज्योतिष, दानवीर, समाज सुधारक तथा नीतिकार की भूमिकाएँ एक साथ निभाने वाला यह रचनाकार अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है।

## 9.4 रहीम और उनकी रचनाएँ

रहीम के नाम से उपलब्ध होने वाली संपूर्ण प्रकाशित कृतियाँ कुल छह हैं- दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका भेद, भक्तिपरक बरवै, श्रृंगार-सोरठा तथा मदनाष्टक। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर पद तथा कुछ संस्कृत के श्लोक जिन्हें 'खेट कौतुक जातकम्' के

नाम से भी जाना जाता है, उपलब्ध हैं। इनकी 'वाकयात-बाबरी' तथा 'फारसी दीवान' नामक दो कृतियों की चर्चा भी मिलती है किंतु ये उपलब्ध नहीं है।

इन कृतियों में 'दोहावली' 299 दोहों वाली नीति काव्य की प्रसिद्ध कृति है जिसमें 'रहीम' और 'रहिमन' के नाम की छाप मिलती है। **'नगरशोभा'** शृंगार की कृति है जिसमें 142 दोहे हैं। इसमें नायिकाओं का वर्ण और व्यवसाय के आधार पर वर्णन है।119 छंदों की प्रसिद्ध कृति 'बरवै नायिका भेद' रहीम की खास पहचान बनाती है। बरवै छंद के जनक रहीम ने इसमें नायिका-भेद की परंपरा का निर्वाह किया है**- भक्तिपरक बरवै'** में गणेश, सूर्य, महादेव, कृष्ण, राम तथा हनुमान आदि की वन्दना, शृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, भक्ति, भ्रमरगीत प्रसंग तथा वैराग्य आदि से संबंधित 105 छंद हैं। इसकी भाषा भी प्रौढ़ और कलात्मक है। **'शृंगार सोरठा'** के नाम से केवल छह छंद उपलब्ध हैं जो **'रहीम ग्रंन्थावली'** में प्रकाशित है। जनभाषा, फारसी तथा अन्य देशी भाषाओं के मिश्रण से बनने वाली उर्दू या रेखता भाषा में कवि ने **'मदनाष्टक'** लिखा। 'मालिनी' छंद में लिखी इस कृति में आठ छंद हैं जिसमें मुरली प्रभाव, गोपी प्रेम, कृष्ण रूप माधुरी तथा गोपी-कृष्ण मिलन की आतुरता आदि का मार्मिक वर्णन है। इसी प्रकार कुछ यत्र-तत्र संग्रहों में मिलने वाले फुटकर छंद जिनमें सवैया, घनाक्षरी, बरवै, मालिनी, कवित्त आदि भी उपलब्ध हैं। ब्रजभाषा पर कवि का पूरा अधिकार था ही, अवधी में भी अच्छा दखल था। मधुर भावों की अभिव्यक्ति करने वाले इस बहुभाषा विद् ने फारसी मिश्रित संस्कृत के भी कुछ श्लोक लिखे जिनमें ग्रहों, नक्षत्रों तथा ज्योतिष विज्ञान आदि का विवेचन भी मिलता है। ये समग्र कृतियाँ तथा तुर्क में जन्में इस मुस्लिम भक्त कवि की चेतना, भावना का पुण्य समर्पण और लोक जीवन का सफल एवं समर्थ-स्पर्श उन्हें पूर्णतः' भारतीय-आत्मा सिद्ध करते हैं।

## 9.5 नीति काव्य परम्परा और रहीम

भारतीय साहित्य में अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होने वाला 'नीति' शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगने से बना है। ऋग्वेद से लेकर लौकिक, संस्कृत, पालि तथा प्राकृतादि भाषाओं में प्रयुक्त होता हुआ यह शब्द हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी सी रूप तथा अर्थ में प्रयोग होता आ रहा है, जिसका तात्पर्य है ऐसा मार्ग, जिस पर हम बिना किसी प्राणी का अहित किए आगे बढ़ते रहें और अपना हित सिद्ध कर सकें।

कोशकारों ने नीति के तीस से भी अधिक अर्थ किए हैं परन्तु जीवन के व्यावहारिक ज्ञान तथा सफल जीवन-यापन की कला का अर्थ ही सर्वोपयुक्त है। नीति-अर्थात् ऐसी रीति या कला जिस पर आचरण करके जीवन में सफलता मिलती है। नीति के कई भेद किए जा सकते हैं। विषय के आधार पर यह अर्थनीति, शिक्षा नीति, विज्ञान नीति, व्यापार नीति, प्रशासन नीति तथा युद्ध नीति आदि भी हो सकती है। इसी प्रकार बाल नीति, पुत्र नीति, पिता नीति, सखा नीति आदि भेद भी किए जा सकते हैं।

अतः नीति का एक पक्ष तो मार्ग निर्धारण या चिंतन का है और दूसरा आचरण और अभ्यास का। नीति और नीति काव्य मानव जीवन के लिए परम उपयोगी और परम आवश्यक होते हैं। यही कारण है कि वैदिक युग से नीति काव्य की यह परम्परा निरंतर जीवंत और प्रवहमान है। वैदिक साहित्य, दर्शन ग्रंथ, स्मृति-ग्रंथ, पुराण ग्रंथ तथा संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में नीति साहित्य देखने को मिलता है। यही नहीं, इसके पश्चात् पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होकर हिंदी के आदिकाल तक भी यह काव्य धारा इसी प्रकार जीवित रही। इसमें संदेह नहीं कि संस्कृत का अधिकांश साहित्य नीति का भंडार है परन्तु आदिकाल में चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो का जगनिक के आल्ह खंड तथा बीसलदेव रासो का नीति काव्य मात्रा में कम होकर भी सम्पूर्ण नीति साहित्य में अपना महत्वपूर्ण

स्थान रखता है। इसी प्रकार भक्तिकाल में कबीर पूर्व युग में जयदेव, वैणी, नामदेव तथा स्वामी रामानन्द जैसे नीति कवि प्रमुख थे। कबीर का नीति साहित्य तो जग-प्रसिद्ध है ही। कबीर के नीति काव्य का विचार पक्ष कितना प्रौढ़ है, उदाहरण देखिए :

भय बिनु भाव न ऊपजै, भाव बिना नहिं प्रीति।
जब हृदय सौ भय गया, मिटी सकल रस रीति।।

साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम समाई।
मैं भी भूखौ ना रहों, साधु न भूखो जाइ।।

इसी प्रकार रैदास गुरु नानकदेव, संत फरीद, मलूकदास, चरनदास, पलूट तथा रज्जब जैसे संतों ने भी मानवतावादी नीति धारा को गति दी। संतों के साथ ही सूफी साधकों में मौलाना, दाउद, कुतुबन, जायसी, मंझन तथा उसमान आदि भी ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने अपने नीति ज्ञान के समय-समय पर अवगत कराया। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

बाँभन बैस सूद्र अरु ख्यत्री डोम चंडाल मलेच्छ किन सोई।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते आणु तारि तरै कुल दोइ।।

-रैदास

जाग रे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागे नानका, जब सोवउ पाँव पसारि।।

-गुरु नानकदेव

ओछे जानि के काहुहि, जनि कोइ गरब करेइ।
ओछे ऊपर देउ है, जीत-पत्र तेइ देइ।

-जायसी

सूफ़ी काव्यधारा तथा प्रवाहमान नीति काव्य की यह धारा असूफी प्रेम काव्य 'ढोला-मारुरा-दूहा' तथा 'माधवानल कामकंदला' जैसे प्रेमाख्यानक काव्य को भी सींचती रही। इसके पश्चात् मध्ययुगीन रामभक्त तथा कृष्ण भक्त कवियों ने आध्यात्मिक नीति के साथ-साथ व्यावहारिक नीति को अपनाते हुए काव्य विषयों में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किया। क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाले इन कवियों में तुलसी प्रमुख रहे। अन्य कवियों में गंग, नरहरि, बीरबल, टोडरमल तथा रहीम आदि इस दिशा में उच्चाधिकारी सिद्ध हुए। जिस प्रकार तुलसी अपने युग की सभी शक्तियों में काव्य-सृजन कर रहे थे उसी प्रकार रहीम ने भी युगीन समस्त विषयों को कविता का आधार बनाया। ज्योतिष, भक्ति, श्रृंगार, नायिका वर्णन, नीति तथा प्रकृति आदि सभी विषयों में रहीम की पर्वतोन्मुखी प्रतिभा उन्हें तुलसी के समकक्ष ठहराती है। वास्तव में रहीम और तुलसी एक ही युग के दो युग पुरुष कहे जा सकते हैं। नीति की दृष्टि से तुलसी ने अध्यात्म नीति, धर्मनीति, प्रेम नीति, सामान्य नीति तथा राजनीति का विस्तार से वर्णन किया है। एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है जहाँ रामचरित मानस के अयोध्या काण्ड में सती सीता पति-पत्नी के संबंधों को व्याख्यायित करती है :

मातृ-पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद-समुदाई।
सनु धनु धरमु धरनि पुर राजू। पति विहीन सबु सोक समाजु।।
भोग रोग सम भूषण भारन। जम जातना सरिस संसारन।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी।।

स्पष्ट है कि तुलसी के काव्य में नीति को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। ऐसे अनेकों उदाहरण प्रमाणस्वरूप दिए जा सकते हैं जिनमें तुलसी का महान तथा प्रौढ़ विचार पक्ष

प्रभावित करता है। रामभक्त कवियों में केशव का नीतिकाव्य भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कृष्ण भक्त कवियों में यह नीति परम्परा सूरदास, नन्ददास, मीरा तथा रसखान के काव्य में भी प्रवाहमान है। इनके अतिरिक्त श्रीभट्ट, हरिदास, ध्रुवदास, साईंदास, व्यास आदि कवियों ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया। कुछ उदाहरण देखिए-

गुरु बिनु ऐसी कौन करै?
भव सागर तै बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।

-सूरदास

रस हूँ लगि कल संत सौ, कलह न कीजै काउ।
कानहि जो ऊनौ करै, सो सोनौ जरि जाउ।

-नन्ददास

कोयल कागा एक सरीसा कोयल किसको कहिये रे।
कोयलपण तो जब ही जाना, मीठा वचन सुणइये रे।।

-मीरा

दंपति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इन तैं परै बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखानि।।

-रसखान

इनके अतिरिक्त अकबर दरबार के पदाधिकारी कवियों ने तो नीति काव्य परम्परा में अपना महान योगदान दिया ही है जिनमें नरहरि, बीरबल, राजा टोडरमल, तानसेन आदि की चर्चा की जा चुकी है। इनमें गंग का नीतिकाव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके अनुभव की विशालता, ज्ञान और प्रतिभा के योग से उसे विशिष्ट बना देती है-

लहसुन गांठ कपूर के नीर में, बार पचासक धोइ मंगाई।
केसर के पुट दै दै कै फेरि, सु चंदन वृच्छ की छांह सुखाई।।
मोगरे मगहं खपेरि धरी गंग, बास सुबास न आवे न आई
ऐसहि नीच को ऊँच की संगति, कोटि करो पै कुटेव न जाई।

भक्तिकाल के बाद अगर रीतिकालीन कविता पर नजर डालें तो नीति काव्य परम्परा किसी न किसी रूप में वहाँ भी विद्यमान रही। वृन्द तथा गिरधर कवि ने पर्याप्त नीति काव्य निर्मित किया और यह अपने आप में प्रेरणा स्रोत भी बना है।

नीति काव्य की इस पूरी परम्परा को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के मध्ययुगीन नीति काव्य के सम्राट रहीम ही हैं। संस्कृत के नीति साहित्य में जो स्थान भर्तृहरि को प्राप्त है हिंदी में रहीम उसी स्थान के अधिकारी कहे जा सकते हैं।

**बोध प्रश्न 1**

1. नीचे दिए गए प्रश्नों के साथ कुछ कथन दिए जा रहे हैं जिनमें से कुछ सही हैं, कुछ गलत। आप सही कथन पर (✓) का चिह्न लगाइए।

   i) रहीम का जन्म किस सन् में हुआ था। (सन् 1652 में, सन् 1520 में, सन् 1556 में)

   ii) रहीम को दस लाख रुपये, बारह हजार सवार तथा सर्वोत्तम घोड़ा किसने दिया? (बादशाह अकबर ने, जहाँगीर ने, शाहजहाँ ने)

   iii) रहीम को राजद्रोही घोषित करने वाले बादशाह का नाम क्या था? (शाहजहाँ, अकबर, जहाँगीर)

   iv) रहीम की जीवन यात्रा किस सन् में समाप्त हुई? (सन् 1627 में, सन् 1599 में, सन् 1630 में)

2. अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए-

i) रहीम को छोड़कर अकबर दरबार के अन्य चार नीतिकारों के नाम लिखिए :

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

ii) आदिकालीन साहित्य में नीति की परम्परा किन कृतियों में देखी जा सकती है?

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

iii) रहीम युग के कौन से ऐसे कवि थे जिन्होंने रहीम की तरह ही युगीन समस्त विषयों को काव्य का आधार बनाया?

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

iv) वृन्द और गिरधर किस काल के नीति कवि थे?

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 9.6 भाव पक्ष

किसी घटना, विचार, वस्तु अथवा दृश्य विधान को देखकर हमारी चेतना पर जो प्रतिक्रिया होती रहती है, वहीं अनुभूति कहलाती है। यह अनुभूति जितनी तीव्र होती है अभिव्यक्ति उतनी ही समर्थ होती है। इस भाग में रहीम के अनुभूति जन्य भावों की विवेचना ही हमारा उद्देश्य रहेगा।

### 9.6.1 अनुभूति प्रक्रिया और लोक जीवन की अभिव्यक्ति

रहीम स्वभाव से ही भावुक थे। किसी पर भी प्रसन्न होकर उसे लाखों के पुरस्कार दे देना, निर्धन की दीनता देख आर्द्र होना या करुणा से भर जाना, वीरता या मित्रता को सही अर्थों में पहचानना, उसकी सराहना या निंदा करना, सौन्दर्य पर रीझ उठना, कला और प्रवृत्ति पर मोहित हो जाना उनकी इसी मनोवृत्ति के सूचक हैं। अपने समय को पहचानने और दूरदृष्टि से भविष्य को आँकने वाले इस कलाकार की काव्य भूमि का प्रमुख तत्व था युगीन जीवन और समाज। अपने नेत्र दीपकों से, बाहर और भीतर के रोग-अनुराग को देखा, विचार तथा ध्वनि, वर्ण और शब्दों को स्वर एवं लय में पिरोकर भाषिक आवरण में बाँध दिया। संवेदनाओं को मन और चिंतन की भट्टी में तपाकर काव्य के रूप में अभिव्यक्त कर दिया। भाव ने उसे कविता का रूप दिया और सामाजिक चेतना ने उसे नीति की उपादेयता दे डाली।

परिणामतः अनुभूति विधान के अद्भुत उदाहरण साकार हो गए। समय और स्थिति को सूक्ष्मता से देखने और भोगने वाले कवि की पकड़ कितनी मज़बूत और गहरी है, इस उदाहरण से देखा जा सकता है-

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यौ, हन्यौ सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात।।

जो रहीम दीपक दसा तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है वाहि पट की चोट।।

समय का चक्र निरन्तर चलता रहता है। कभी अच्छा है तो कभी बुरा भी। यही नहीं, रहीम ने यह भी देखा कि जो कभी मित्र है वह शत्रु भी हो सकता है। इसीलिए कहा कि समय एक-सा नहीं रहता। कवि नारी को आँचल में दीपक छिपाकर ले जाते देखता है। रात्रि में दीपक की उपयोगिता और आवश्यकता उसे चुचकार के जीवित रखती है। आँचल की ओट उसे बुझने से बचाती है और प्रातः होते ही वह नारी, उस आँचल के तेज झटके से उसे बुझा देती है। कल का रक्षक ही आज भक्षक बन जाता है। यह सब काल की देन है तभी वे कहते हैं - 'काज परे कछु और है काज सरे कछु और।' जीवन को नज़दीक से देखने वाला व्यक्ति प्रत्येक घटना से कैसे-कैसे निष्कर्ष निकाल लेता है, रहीम की अनुभूति इसका प्रबल प्रमाण है। एक अन्य उदाहरण देखिए-

रहिमन अंसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।

रावण ने विभीषण को घर से निकाल दिया और विभीषण ने सारा भेद कह डाला। रहीम ने देखा व्यक्ति के दुख और उसकी पीड़ा का भेद खोलने वाले आँसू ही हैं। इस सूक्ष्म-दृष्टा कवि ने अपनी तरल अनुभूति से कितना सार्वभौमिक तथ्य उजागर किया है। समाज, समूह, जाति, देष, व्यक्ति तथा राष्ट्र सभी के लिए यह सत्य कितना महत्वपूर्ण है। लोक भूमि की गंध और प्रकृति की सुगंधित-ष्वास में कवि कितना डूबा हुआ है, एक-एक दोहा इसका साक्षी है। नीच की संगति बहुत बुरी है। भले ही आप कितने भी अच्छे हों, फिर भी नीच के साथ से अवश्य बचिए। शराबी कितना भी भला या अच्छा बन जाए और भले ही वह दूध जैसा अमृत भी हाथ में ले जा रहा हो, लोग यही समझेंगे कि वह शराब ले जा रहा है-

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहि सब ताहि।

अब हम रहीम की काव्य भूमि के उन प्रमुख पक्षों की चर्चा करेंगे जिनके कारण उनकी सर्वोन्मुखी तथा वैविध्यमयी दृष्टि का परिचय मिलता है।

### 9.6.2 नीति

सत्य और शिव की कल्याणमयी प्रतिभा को प्रतिष्ठित करने वाली नीति, धर्म की आधार शक्ति मानी जाती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि प्रौढ़ विचार पक्ष तथा प्रबल और मूल्यों वाली नीति, साधारण मानव जीवन को प्रत्येक दिशा में प्रगति पर ले जाती है। महाकवि रहीम के नीति काव्य के विषय भी जीवन की विविधताओं की तरह अनन्त हैं। उनमें व्यावहारिकता और गंभीरता एक साथ मिलती है। कवि ने एक स्थान पर शरीर की क्षणभंगुरता को रेत की गठरी से आँका है-

रहिमन ठठरी धूरि की रही पवन तें पूरि।
गाँठ युक्ति की खुल गई अन्त धूरि की धूरि।।

रहीम ने जीवन की असारता के साथ-साथ प्रेम की निष्कलुषता, अस्थिरता तथा वैभव विलास के प्रति उदासीनता आदि भावों को उभारा है तो ईश्वर, धर्म, आचार-विचार, लोक व्यवहार, गुरु, सन्त, माया, मान-अपमान, प्रेम, सन्तोष, परोपकार, नियति, त्याग, मर्यादा, राजकर्तव्य आदि विषयों पर भी अनूठे नीति वचन कहे हैं। कहीं वे मानव प्रकृति की बात करते हैं-

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकल कुसंग।
चन्दन विषय व्याप्त नहीं लपटे रहे भुजंग।।

तो कहीं उपकार के विषय में सुन्दर सादृश्य प्रस्तुत करते हैं। जैसे मेंहदी लगाने वाले के अपने हाथ लाल हो जाते हैं उसी प्रकार उपकार करने वाले का भी अपना भला पहले होता है। प्रेम के विषय में उने अपने ही सिद्धांत और मानदंड हैं-

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे तें फिर न जुरै, जुरै गाँठ परि जाय।।

अनुभव-रस से रहीम की नीति ने प्रभावशाली रूप ग्रहण किया है, यथा-

रहिमन चुप ह्वै बैठिये देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं बेर।।

फिर सभी दुखों और कष्टों का एक ही रामबाण इलाज है-सन्तोष-

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए वे ही सहनसाह।।

इसी प्रकार निर्धनता, अभिमान, चिंता, कुसंगति, नीचता, याचकता, कपट, स्वार्थ, आत्मप्रशंसा, चापलूसी आदि बहुत से संदर्भों को भी कवि अपनी पैनी दृष्टि और लेखनी का निशाना बनाता है।

कुछ उदाहरण देखिए-

रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।।

खीरा सिर तें काटिए मलिए लोन लगाय।
रहिमन करुबे मुखन को चहियत यही सजाय।।

अर्थात् निजी सम्पति के बिना कोइ भी सगा-संबंधी या सहायक नहीं होता। बेटा, बाप, माँ, भाई, पत्नी सभी पैसे के संबंध हैं जैसे सब कुछ होने पर भी बिना पानी के कमल को सूर्य नहीं बचा सकता। दूसरे उदाहरण में, खीरे का स्वभाव कड़वा होता है। उसका मुख-मर्दन कर नमक डाला जाता है और कड़वाहट खत्म कर दी जाती है। रहीम का सुंदर सा दृश्य है कि कड़वे मुखवालों के साथ यही व्यवहार उचित हैं लातों के भूत बातों से नहीं मानते। मर्यादा उत्तम चरित्र का आभूषण है। व्यक्ति का मान-सम्मान ही उसका वज़न और पहचान है इसीलिए रहीम ने आलंकारिक शैली में 'पानी' शब्द का प्रयोग किया :

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुष चून।।

पानी के यहाँ तीन अर्थ है। पहला अर्थ है आभा या चमक जो मोती के संदर्भ में है। दूसरा अर्थ है इज्जत या मान, जो मनुष्य के संदर्भ में है और तीसरा अर्थ है जल या पानी जो कि आटे (चून) के संदर्भ में है। इसलिए रहीम कहते हैं पानी (मर्यादा) अवश्य रखना चाहिए। बिना पानी के तीनों ही व्यर्थ हो जाते हैं।

अतः धर्मनीति, अर्थनीति, कामनीति और मोक्षनीति के साथ अन्य सभी विषयों का रहीम ने अत्यंत समृद्ध निरूपण किया है। सरस अनुभूति और लौकिक अनुभव की विशालता उन्हें किसी वर्ग विशेष में नहीं रहने देते और वे नीति काव्य को एक नवीन दिशा देते हुए प्रत्येक श्रेणी के लोक-हृदय को छू लेते हैं। सरलता, स्वाभाविकता और मार्मिकता ही रहीम की लोकप्रियता का कारण भी बनी है।

### 9.6.3 भक्ति

हिंदी साहित्य के लिए अकबर-काल वरदान सिद्ध हुआ था। सगुण भक्ति की वह धारा जिसके प्रवाह में उस युग का हिन्दू समाज बड़े वेग से बह रहा था, अकबर की उदार धर्म नीति की ही देन थी। धर्म, भक्ति, कला, दर्शन, संस्कृति तथा भक्ति भावना की सूर, तुलसी जैसी महान विभूतियाँ जिस युग में अपना वैभव बिखेर रही थी, रहीम का जन्म भी उसी स्वर्णिम समय में हुआ था। रहीम के हृदय में भी वैष्णव भक्ति का अथाह सागर हिलोरें ले रहा था। दरबारी वातावरण में रहकर भी कवि ने श्रद्धापूर्वक भक्ति और भगवान का गुणगान किया तथा बरवै, दोहे, सोरठे, सवैये आदि के माध्यम से सभी प्रमुख भक्ति स्रोतों का परिचय दिया। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, गंगा, सरस्वती, हनुमान आदि की वन्दना कवि ने तन्मयता से की है। ईश्वर में कवि का अटल और अटूट विश्वास है-

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान।

धर्मनिरपेक्षता के वर्तमान युग में रहीम के भक्ति काव्य का अपार महत्व है। नीति और भक्ति का अद्भुत मिश्रण कवि की प्रतिभा का परिचायक है। कवि राम और कृष्ण जैसे इष्ट देवों होते हुए पूर्णतः निश्चिंत है। ज्वारी, चोर या लबार (ठग) उनका क्या बिगाड़ सकते हैं, सबकी पत (खबर) रखने वाला भगवान (श्रीकृष्ण) उनके साथ हैं-

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत-राखन हार है, माखन-चाखन हार।।

रहीम अपने अवगुण अर्थात् अकरुणत्व (पाषाणता), बुद्धिहीनता (पशुता) तथा अकुलीनता (जातीयता) का हवाला कैसे अप्रत्यक्ष रूप से देते हैं कि ईश्वर उनका उद्धार करने से बच भी नहीं सकते-

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनो तारे राम जू, तीनो मेरे अंग।।

भगवान राम ने पत्थर बनी अहिल्या का उद्धार किया, हनुमानादि वानरों का उद्धार किया तथा अकुलीन निषादराज का उद्धार किया, फिर भला कवि के भीतर बसे इन तीनों अवगुणों से मुक्ति कैसे नहीं होगी।

रहीम किसी सम्प्रदाय विशेष में बंधकर कविता नहीं करते किन्तु फिर भी उनके काव्य में निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, सूफी भक्ति और यहाँ तक कि सुख्य, दास्य, शांत, श्रृंगार भक्ति के दर्शन भी होते हैं। भक्ति के प्रकारों में कवि ने कीर्तन, स्मरण, वन्दन, अर्चन, पाद सेवन तथा गुण कथन आदि का वर्णन भी पूरे मनोयोग के साथ किया है-

**स्मरण**

ते रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारू चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर।।

**गुण कथन**

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।

**वन्दन**

पुन-पुन वन्दौं गुरु के पद जलजात।
जिहि प्रताप तें मन के तिमिर बिलात।।

**ध्यान**

ध्यावहुँ सोत विमोचन गिरिजा ईस।
नगर भरन त्रिलोचन सुरसरि सीस।।

यही नहीं, उस आदि रूप की परम द्युति तो घट-घट में समाई हुई है। उसके साक्षात्कार का अनन्त आनन्द अवर्णनीय है। आत्मा-परमात्मा के इस रहस्यमय अमर मिलन के सुख को कौन बखान सकता है। जो इस रहस्य को जानता है वह कह नहीं सकता और जो कहता फिरता है, वह इस सत्य को जानता ही नहीं। कैसी विवशता है। आंखों ने देखा है पर वे बखान नहीं कर सकतीं और जिह्वा बखान करती है तो उसने देखा नहीं है-

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं कहत ते जानत नाहिं।।

वह ब्रह्म विराट है। सीमा से परे है। वही जीव-जगत का मूलाधार है। विनयशील और गुण ग्राही कवि का कथन है कि भक्ति मार्ग अत्यंत सुलभ और सुन्दर है। अपने अहं की बलि देकर द्वैत को मिटा देना ही प्रकाश की पुण्य प्राप्ति करना है। इस प्रेमा भक्ति का तो पथ इतना संकरा है कि निजत्व को तज कर ही इसमें प्रवेश पाया जा सकता है। स्नेह और ज्योति की प्राप्ति के लिए अशुद्धता और अंधकार को तजना अनिवार्य है-

रहिमन गली है साँकरी दूजो ना ठहराहि।
आपु अहै तो हरि नहिं हरि तो आपनु नाहि।।

इस प्रकार करूणानिधि, भक्त वत्सल और दीन बन्धु के प्रति कवि का अनन्य स्नेह है। कहीं वे साधिकार भगवान पर मीठा व्यंग्य भी कर देते हैं तो कहीं उन्हें उपालम्भ दे देते

हैं। अपनी दीनता और भक्ति की याचना करते हुए ईश्वर को उसकी प्रभुता का स्मरण करा देना कवि की बौद्धिक युक्ति का परिचायक है-

तेरोई कहायकै रहीम कहै दीनबन्धु
आपनी विपत्ति जाय काके द्वार कहिबी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो
ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहाँ साहिबी।।

अगर अपनी विपत्ति किसी अन्य के आगे जाकर कहूँ या मेरी जीविका का दायित्व किसी और के हाथ में सौंप दिया तो हे प्रभु! तुम्हें क्योंकर भगवान मानूँ? फिर भला तुम काहे के साहिब ठहरे? ये भक्त की चुनौती है जो भगवान को नंगे पाँव दौड़े चले आने पर मजबूर कर देती है। स्पष्ट है कि रहीम का काव्य भक्त हृदय की ही सृष्टि है। युगीन भावना को उन्होंने श्रद्धा सहित स्वीकार किया और नीति की लोकोपयोगी धारा में भक्ति को मिश्रित कर डाला। भक्ति की दृष्टि से वे सूर और तुलसी से किसी भी अर्थ में कम नहीं ठहरते। भक्ति की महत्ता, भक्त की दीनता, धार्मिक उदारता तथा एक्य भावना, हृदयगत विशालता, ईश्वर के अनुग्रह की प्राप्ति तथा श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का अद्भुत मिश्रण, सभी दृष्टियों से रहीम उच्च और श्रेष्ठ हैं।

### 9.6.4 शृंगार तथा अन्य रस

रहीम रसिक हृदय तो थे ही, अतः स्वाभाविक है कि नीति के साथ प्रीति और सौन्दर्य के साथ शृंगार का सरस तथा मोहक वर्णन वे करते रहे। उनके शृंगार वर्णन में उन्माद है और उल्लास भी। मानव जीवन के सहज स्वाभाविक भावों को परखने और निरखने की अद्भुत क्षमता उनके पास थी। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को वे युग और समाज के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए पूरी योग्यता से प्रतिबिम्बित करते हैं तो दूसरी तरफ शांत, हास्य, अद्भुत, वीभत्स और वीर आदि रसों के वर्णन में भी अपना कवि कौशल दिखाते हैं। रहीम के शृंगार की विशिष्टता यह है कि एक तरफ वह लोक भूमि का स्पर्श करता है तो दूसरी तरफ शास्त्रीय छोर को छूता है। नगर-शोभा, शृंगार-सोरठा और बरवै नायिका भेद जैसी कृतियों में कवि की शृंगारिक सूझ-बूझ तथा पकड़ को सविस्तार देख जा सकता है। लोक-अग्नि और प्रेम-अग्नि के अंतर को कवि कितनी सहजता से अलग करके देखता है। लोक अग्नि तो जल कर बझ जाती है पर प्रेम की अग्नि तो बकुझ-बुझ कर जलती है। सुलग-सुलग कर हृदय को गुदगुदाती है-

जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहि।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि कै सुलगाहिं।।

रहीम के शृंगार वर्णन की सर्वाधिक महत्ता इसी में है कि उसमें वासना की गंध नहीं है। शृंगार वर्णनों में शब्दों का संयमन तथा भावों की मर्यादा रहीम को भंगारी कवियों से पूर्णतः पृथक खड़ा करती है

नैन सलोने अधर मधु, कह रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पै, अरु मीठे पै लौन।।

नेत्रों की दीर्घता तथा सलोनापन बाकी चितवन और अधरों की मिठास कैसा उन्माद पैदा करते हैं। प्यास बुझती ही नहीं। मीठे पर नमकीन और नमकीन पर मीठा खाने की लालसा निरंतर बनी रहती है।

रहीम का युग काफी हद तक विलासिता, नजाकत, साज-सज्जा, हास-परिहास, महफिल तथा बेगमों और राजकुमारियों के नेत्र मिलन का युग था। दुकानों पर स्त्रियाँ, बागों में स्त्रियाँ, पहरे पर स्त्रियाँ तथा मीना बाजार की नुमाइश में स्त्रियाँ देखकर कवि ने नगर शोभा में विभिन्न जातियों की पेशेवाली नारियों के कर्म, व्यापार, स्वभाव और सौंदर्य आदि का मादक एवं श्रृंगारिक चित्रण भी किया है।

नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, प्रेम वर्णन तथा अन्य कई स्थलों पर संयोग श्रृंगार के सरस तथा मर्यादित वर्णन कवि ने किए हैं। विप्रलम्भ श्रृंगार में भी कवि ने बरवै और दोहों के माध्यम से संपूर्ण वास्तविकता को बनाए रखा है। विरह की कल्पना ही प्रेमी के प्राणों पर आ बनती है। सावन के महीने में प्रियतम का जाना अत्यंत दारुण है-

उमड़ि उमड़ि घन घुमड़े दिसि बिदिसान।<br>
सावन दिन मनभावन करत पयान।।<br>
झूमि झूमि चहुँ ओरन बरसत मेह।<br>
त्यों त्यों प्रिय बिन सजनी तरफत देह।।

वियोगिनी नायिका भूख-प्यास, सुख-चौन, सुध-बुध सब गंवा बैठी है। रात दिन केवल ठंडी और लम्बी साँसे भरती हैः

जबतें बिछुरे मोहन भूख न प्यास।<br>
बेरि बेरि बढ़ि आवत बड़े उसाँस।।<br>
जब ते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।<br>
रहत भरयौ हित साँसन, आँसुन नैन।।

रहीम का वियोग वर्णन संयोग की तुलना में अधिक सफल और मोहक है। विप्रलम्भ की सभी दशाएँ एवं अवस्थाएँ रहीम के काव्य में मिल जाती। हृदयगत भावों का सरल, सहज, स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी उफान कवि ने हृदय द्रावक शब्दों में बांध दिया है। अनेकों ऐसे वर्णन हैं जिन्हें यहाँ उद्धृत किया जा सकता है परन्तु विषय विस्तार की सीमा के कारण यह संभव नहीं। रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों की विरह भावना संभवतः रहीम के इसी विरह वर्णन से प्ररित रही होगी ।

वीभत्स, वीर और अद्‌भुत के उदाहरण भी रहीम के काव्य में देखे जा सकते हैं। अतः कुल मिलाकर कह सकते हैं कि रहीम का जीवनानुभव अत्यंत व्यापक और गहन होने के साथ पुराण, शास्त्र और प्रकृति के सूक्ष्म व्यापारों से पुष्ट भी था।

### 9.6.5 प्रकृति

रहीम-काव्य में मानवीय अनुभूति की चिर सहचरी प्रकृति की छवि-छटा भी बिखरी मिलती है। कवि इस प्रकृति वर्णन को भावोद्‌दीपक तथा उपदेशात्मक रूपों में प्रस्तुत करता है। रहीम के प्राकृतिक उपकरणों में नगर-ग्राम, विष चंदन, चन्द्र-चकोर, पेड़-पत्ते, पशु-पक्षी, दादुर-मोर. काक-पिक, जल-मीन, फल-फूल, खग-मृग, मेंहदी-रंग, सिन्धु-बिन्दु, दिवा-ससि, ग्रीष्म-शरद विष-अमृत इत्यादि से संबंधित वर्णन किए गए हैं।

रहीम ने प्रकृति वर्णन में कहीं परम्परागत दृष्टि रखी तो कहीं पूर्णतः मौलिक। कथ्य सामग्री प्राचीन है तो कवि के निष्कर्ष नवीन हैं। प्रकृति प्रयोग की सूक्ष्मता तथा अनुभूतिगत विशिष्टता कवि को एक खास पहचान देती है। कवि कभी तो प्राकृतिक घटनाओं को देखकर नैतिक निष्कर्ष निकालता है तो कभी अपने निष्कर्षों के लिए प्रकृति को उदाहरण

बना लेता है-

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहे घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हूँ सरुवर को कछु नाँह।
तरुवर फल नाहि खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपत्ति संचहि सुजान।।

जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते उसी प्रकार सज्जन लोग भी पर हित के लिए सम्पत्ति संचित करते हैं। दूसरी तरफ क्वार माह के बादल जैसे गरज-गरज कर चले जाते हैं उसी प्रकार धनी पुरुष भी निर्धन हो जाने पर निराधार बातें ही बनाते हैं-

थोथे बादर क्वार के जो रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात।।

इसी प्रकार रहीम की सूझ देखिए, कौवा और कोयल वसन्त ऋतु के अवसर पर एक से ही जान पड़ते हैं परन्तु बोलते ही ज्ञात होता है कि कोयल और कौवे में क्या अंतर है:

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसन्त के माँहि।।

**बोध प्रश्न 2**

1. रहीम की किन्हीं पाँच प्रामाणिक रचनाओं के नाम तथा उनका मूल-कथ्य बताइए।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

2. रहीम के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

3. उत्तम प्रकृति के लोगों पर कुसंग का असर नहीं होता। रहीम ने इस कथन को कैसे सिद्ध किया है?

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

4. रहीम के भक्ति संबंधी भावों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

5. रहीम के विप्रलम्भ श्रृंगार संबंधी दो दोहे लिखिए।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

6. रहीम ने श्रृंगार से इतर अन्य किन-किन रसों का वर्णन किया है।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 9.7 अभिव्यक्ति कौशल

जिस प्रकार मानव जीवन में अपने भावों और विचारों को शब्दबद्ध करने की अनिवार्यता है उसी प्रकार साहित्य में भी अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति-कौशल का अत्यंत महत्व है। वास्तव में भावों विचारों की अभिव्यक्ति मानव की मूलभूत प्रवृति है और इसी कारण अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य विशिष्ट भी ठहरता है। उसके विचारों और भावों की तीव्रता उसे बाधित करती कि वह उन्हें आजाद करे और इसी दबाव की तीव्रता में वह अलग-अलग माध्यमों में उन्हें ढाल कर अभिव्यक्त कर देता है।

### 9.7.1 काव्य भाषा तथा शैली

भाषा, मनुष्य की सर्वाधिक उपयोगी उपलब्धि है। मनुष्य की पूरी सभ्यता, संस्कृति, उन्नति तथा उपलब्धियों का रहस्य इसी में छिपा है। इसी प्रकार शैली, कवि, कलाकार या साहित्यकार के मनोगत भावों और विचारों को साकार बनाने का सहज उपकरण है। कवि या कलाकार के व्यक्तित्व और उसके काव्य या कला में घनिष्ठ संबंध होता है और इसी घनिष्ठता का दर्पण बनती है शैली। अकबरी युग के हिंदी काव्य निर्माताओं में रहीम का नाम प्रमुख है। कलाप्रवीण तथा प्रतिभाशाली इस मुसलमान कवि ने हिंदी भाषा तथा साहित्य की उन्नति एवं श्रीवृद्धि की। रहीम के युग में मुख्य रूप से दो साहित्यिक भाषाएँ अपने उत्कर्ष पर थीं-अवधी और ब्रजभाषा। रहीम ने इन दो भाषाओं को अपने योगदान से समृद्ध करने के साथ ही खड़ी बोली, भोजपुरी, कन्नौजी, राजस्थानी. बुन्देलखंडी, अरबी, फारसी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया। रहीम के ही बरवै भी संभवतः बिहारी के दोहों की प्रेरणा बने। गागर में सागर भरने की कला में निपुण

रहीम की भाषा मृदुल भी है और संगीत प्रधान भी। उसमें अर्थ की गरिमा भी है और सुन्दर भावों की प्रौढ़ता भी। रहीम भावों और विचारों को ब्रजभाषा द्वारा तन्मयता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा में काफी हद तक सफल रहे हैं। रहीम से पहले का कोई भी कवि अपने दोहों में ब्रजभाषा का वह आकर्षण, सहजता, चमत्कार, विचार-गरिमा वहन करने की शक्ति तथा सरलता नहीं ला सका, जो रहीम के दोहों में मिलती है। हालांकि ब्रजभाषा में भी कवि ने बहुत सी भाषाओं के शब्द मिला कर प्रयोग किए हैं। तत्सम, तद्भव, अर्द्धतत्सम आदि शब्दों का स्वच्छंद प्रयोग भी किया है। भक्त को 'भगत' और लवण को 'लोन' कर देने वाले इस कवि का शब्द चयन अत्यंत सटीक एवं सुन्दर है। ब्रज में संस्कृत, फारसी, तुर्की, खड़ी बोली, अवधी तथा ठेठ ग्रामीण भाषा के शब्द भी सफलता से मिला दिए हैं। अच्युत, सुरसरी, मनसिज, भूप, सरोवर, यद्यपि तथा अवनि आदि तत्सम शब्द हैं तो दुरदिन, हूजत, लागत, दीरघ, अरथ, आखर आदि तद्भव भी उपलब्ध हैं। फरजी, साह, तासीर, वजीर आदि अरबी-फारसी के शब्द भी ब्रजभाषा में मिश्रित हैं। किसी भी भाषा में ये शब्द ऐसे घुल-मिल कर आए हैं कि इनकी अपनी पहचान भी उसी में समा जाती है। आचार्य शुक्ल ने रहीम की भाषा के संदर्भ में लिखा भी है-''भाषा पर तुलसी का सा ही अधिकार हम रहीम का भी पाते हैं।'' इसी प्रकार अवधी भाषा की उन्नति और श्रीवृद्धि में भी रहीम का महत्वपूर्ण योगदान है। तुलसी और जायसी की सी मर्मज्ञता रहीम के पास भी है। अवधी के सर्वप्रमख छंद बरवै के जनक भी रहीम ही हैं। बरवै लेखन में तो रहीम जायसी और तुलसी की अवधी से भी अधिक मिठास और सरसता भर देते हैं-

चूनत-फूल गुलबवा, डार कटील।
टुटिगौ बन्द अंगिअवा, फटु पट नील।।

भाषा की शुद्धता और माधुर्य, संस्कृतनिष्ठता और प्रांजलता रहीम की खास पहचान है। कहीं इसमें भोजपुरी आ मिलती है तो कहीं ग्रामीण व अवधी। रहीम ने नीतिकाव्य में कुछ ऐसी भाषा भी प्रयुक्त की जो बड़ी बोली के बहुत निकट है। 'मदनाष्टक' की भाषा में भी ऐसा ही देखा जा सकता है। शब्द यहाँ भले ही तत्सम, तद्भव या किसी अन्य भाषा के हो पर काफी हद तक खड़ी बोली का सा लगता है। ''कान्हा वंशी बजाई'', ''परम प्यारे साँवरे को मिलाओ', जवाहिर जड़ा था'', तथा ''चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था'' ऐसे प्रयोग हैं। बड़ी बोली के प्रचार-प्रसार-अभियान की पृष्ठभूमि में रहीम की भूमिका महत्वपूर्ण है। हममें कहीं-कहीं वीरगाथा काल की सुप्रसिद्ध काव्य भाषा डिंगल का भी प्रयोग किया है। रहसी , जासी, नहचौ, राखो आदि शब्द इसके प्रमाण है। रहीम राजस्थानी ही नहीं कन्नौजी, गुजराती, मराठी तथा पंजाबी आदि भाषाएँ भी अच्छी तरह जानते थे। पश्तो भाषा पर भी उनका अधिकार का।

रहीम ने कवि हृदय की विशालता से संस्कृत के भी कई श्लोक लिखे। ज्योतिष, नक्षत्र तथा खगोल शास्त्र संबंधी 'खेट-कौतुकम' की भाषा संस्कृत ही है। यह मुसलमान कवि देववाणी संस्कृत को अपनाकर हिन्दू धर्म-शास्त्रों के प्रति श्रद्धावनत था। इसी प्रकार रहीम उर्दू, तुर्की तथा अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के भी प्रकांड विद्वान थे। रहीम इन भाषाओं के शब्दों का मिला-जुला प्रयोग भी किया था तथा अलग से भी। गुल, बाग, घायल जैसे उर्दू के शब्द प्रयुक्त हैं तो अलबेला, यार, रोशनी तथा चमन आदि अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया।

अतः शब्द-चयन-क्षमता तथा व्यापक दृष्टिकोण रहीम की भाषा नीति के प्रमुख चरण हैं। व्याकरण सम्मत पकड़ तथा प्रसंगानुकूल शब्द प्रयोग कवि भी प्रतिभा के परिचायक हैं। एक भी दोहा ऐसा नहीं दिखाई देता जिसमें गति टूटती हो और प्रवाह खंडित होता हो। बिना किसी बाधा या रुकावट के साफ-सुथरी भाषा, रहीम की अपनी खास पहचान बनाती है। छंदों में लय और संगीत का कारण भी- यह सुन्दर और सटीक शब्द प्रयोग ही है।

छोटे-छोटे शब्द कवि को शब्द-शिल्पी ठहरा देते हैं। ऐसा लगता है जैसे एक से फूलों की मनोहारी माला पिरो दी गई हो-

खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीति मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान।।

आकार ही नहीं, शब्दों के अर्थ और प्रयोग करने की कला भी अद्‌भुत है। जैसे-जैसे पढ़ते चलें, अर्थ स्वयं ही खुलना चलता है। अर्थ सौंदर्य मोहित करता चलता है। आनन्द इस बात का है कि रस, ध्वनि, अलकार, व्यंग्य, शब्द-शक्ति और उस पर विषय का गांर्भीय सभी एक साथ जीवंत बने रहते हैं। समय को कवि पहचानता है और उसी के अनुकूल आचरण करता है-

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।

रहीम की भाषा में सर्जनात्मकता की गहन शक्ति है। इसमें प्रौढ़ता, गंभीरता, सरसता और सूक्षमता सहज ही मिल जाती है। कई भाषाओं पर अधिकार रखने वाला यह कवि अभिव्यक्ति कौशल में समर्थ एवं सक्षम था।

शैलीः भाव, विचार, विषय तथा परिस्थितियों के अनुकूल ही प्रत्येक व्यक्ति की शैली भी बदल जाती है। रहीम ने इन चारों तत्वों के अनुसार समय-समय पर अपनी शैली को भी बदला है। कभी वह सरल और सहज शैली हो जाती है तो कभी अलंकृत। रहीम ने दृष्टान्त शैली, तथ्यात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, उपदेशात्मक शैली, अलंकृत शैली, प्रश्नात्मक शैली, सुबोध शैली तथा प्रतीक शैली जैसी न जाने कितनी ही शैलियों को अपनाया और सभी में अपनी सिद्धता भी प्रमाणित की। रहीम को दृष्टान्त शैली तो अत्यंत प्रिय थी। यहाँ रामायण तथा पुराण के दृष्टांत से कैसी मर्मयुक्त उक्ति है-

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहूँ, होत आपुने हाथ।।
छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्‌यो, जो भृगु मारी लात।।

पौराणिक उदाहरणों से कवि अपनी बात पुष्ट भी कर देता है और साहित्य को समद्ध भी बनाता है। कवि ने सैकड़ों दृष्टांत अपनाए हैं जिनसे उनकी सूझ-बूझ तथा मनोवैज्ञानिक पकड़ का भी पता चलता है। इसी प्रकार कुछ अन्य शैलियाँ भी रहीम की कविता में देखी जा सकती हैं-

**प्रतीक शैली**

सर सूखे पच्छी उड़ै, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के कहु रहीम कहँ जाई।।

**अलंकृत शैली**

रहिमन यह तन सूप है. लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै गरुए राखि बटोर।।

**प्रश्न शैली**

कही रहीम धन बढ़ि घटे, जाति धनिन की बात।
बढे घटै उनको कहा, घास बेचि जे खात।।

रहीम ने विषय के अनुकूल विभिन्न नीति-शैलियों को अपनाया है।

### 9.7.2 मुहावरे और लोकोक्तियाँ

रहीम की असाधारण प्रतिभा उनके मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भी देखी जा सकती है। भाषा को सशस्त करने वाले इन उपकरणों का तिरस्कार, रहीम जैसा लोक-कवि कैसे कर सकता था। रहीम ने अपनी भाषा ही अधिकांशतः मुहावरेदार रखी है, परन्तु सहजता उसका धर्म रहा है। रहीम ने बलि-बलि जाना, फजीहत होना, कसौटी कसना काज सरना, कड़ुए मुख होना, रमे रहना, स्वर देना, सौ बार टूटना, दुर्दिन पड़ना, लाख टका मोल लेना, बात बिगड़ना, भाड़ झौंक़ना, अति करना, पीठ दिखाना, तथा पावक में चलना, जैसे न जाने कितने ही मुहावरों का सुंदर एवं सटीक प्रयोग करते हुए भावों को रूपायित कर दिया है। कुछ उदाहरण देखिए जिसमें कई मुहावरे एक साथ दिए गए हैं-

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दांत दिखावन दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक।।

ऐसे सैकडों उदाहरण जुटाए जा सकते हैं जिनमें मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा व्यंग्योक्तियाँ एक साथ देखी जाती हैं। कहीं एक ही छंद में चार-पाँच मुहावरे भी हैं तो कहीं एक या दो भी ।

कवि ने अपनी गहरी सूझ, अनूठी कल्पना एवं शब्दार्थ तथा लक्षणा-व्यंजना शक्ति के प्रयोग से लोक ज्ञान और अनुभव को भर-भर कर मुट्ठी बाँटा एवं लुटाया है। भाव, विषय तथा वर्णन कौशल के अनुरूप मुहावरे और उक्तियों का चयन रहीम को बेजोड़ बना देता है।

### 9.7.3 कल्पना, ध्वनि और शब्द शक्ति

रहीम के काव्य में रमणीयता तथा प्रभावोत्पाकता का श्रेय, उनकी कल्पनात्मक क्षमता, ध्वन्यर्थपरक सूक्ष्मता तथा शब्द प्रयोग की शक्तियों को ही जाता है। शब्दार्थ में जहाँ तक कल्पना का क्षेत्र है. रहीम इसके द्वारा नीरस को सरस बना देते हैं दुर्बोध को सहज बना देते हैं. अरुचिकर में रुचि पैदा कर देते हैं। जन-जीवन और लोक अनुभव की छोटी या बड़ी किसी भी घटना के माध्यम से नीति को प्रतिपादित कर देना उनकी कल्पना शक्ति का ही कमाल है। ये मौलिक कल्पनाओं में भी दक्ष हैं तथा सरल और संश्लिष्ट कल्पनाओं में भी पुराण और इतिहास से भी प्रेरणा लेते हैं। रहीम की मौलिक तथा सटीक कल्पना के दो एक उदाहरण देखिए। दीपक की लौ जलते ही पूरे अंधकार को खा जाती है और उगलती है सज्जल (कालिमा)। अर्थात् जैसा खाना, वैसा उगलना-

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय।।

इसी प्रकार एक अन्य कल्पना देखिए। बादल का पिता सागर है। उसका जल खारा होता है अतः कोई पीना नहीं चाहता। इसी के कारण सागर का बेटा बादल भी अपयश का भागी बना। आकाश तक ऊँचा उठकर भी वह काले मुख वाला ही रहता है। अर्थात् पिता की करनी और भरनी-

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय।।

ध्वनि के बिना काव्यत्व असंभव माना जाता है। ध्वनि को काव्य की आत्मा भी कहा जाता है। रहीम के काव्य में भी ध्वनि के विभिन्न भेद-उपभेद के दर्शन होते हैं। यहाँ ध्वनि के सैंकड़ों भेद के चक्कर में न पड़कर हम केवल इतना स्पष्ट करना चाहेंगे कि चाहे

अभिधामूला ध्वनि हो या अर्थशक्ति संभवा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि, रहीम की पकड़ अत्यंत मजबूत है। कहीं वे 'रहिमन पानी राखिए', से पूरी बात को कह डालते हैं तो कहीं 'रहिमन अंसुआ नयन ढरि' के माध्यम से। अर्थ शक्ति-संभवा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि में किसी शब्द विशेष पर बल न देकर उसके अर्थ की शक्ति द्वारा व्यंग्य ध्वनित होता है। एक उदाहरण देखिए। रहीम का ध्वन्यार्थ कितनी गहरी पकड़ रखता है। अधिक लोभ और लालसा के परिणाम स्वरूप ही हाथी की यह दुर्गति है-

> बड़े पेट के भरन को, कै रहीम दुख बाढ़ि।
> यातें हाथिहि हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि।।

इसी प्रकार रहीम का शब्द शक्ति व्यापार भी अत्यंत सराहनीय है। अभिधा हो, लक्षणा या व्यंजना, कवि का बल सहजता पर ही रहा। यों मूलतः वे अभिधा के कवि ही है। सीधा सरल अर्थ सम्प्रेषित करना ही उनका अभिप्रेत भी है। अभिधा का सीधा-सहज उदाहरण देखिए-

> रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहचानि।
> परबस परे पड़ोस बस, परे मामला जानि।।

रहीम की लक्षणा शक्ति संबंधी सूझ-बूझ उस उदाहरण में देखी जा सकती है जहाँ वे कहते हैं कि कुसंग में रहकर कुशलता चाहने वाले मूर्ख हैं। समुद्र की महिमा भी रावण के पड़ोस में बसने से घट गई थी। उसे भी राम की क्रोधाग्नि का शिकार होना पड़ा था। एक अन्य उदाहरण देखिए, कितना सुंदर अर्थ भर दिया है कवि ने। एक दीप से चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है। फिर भला नेत्र रूपी दो-दो दीपक जलने पर तन की द्युति कैसे छिप सकती है? तन-स्नेह कहकर रहीम ने सहज-अर्थ को विशिष्ट बना दिया-

> कह रहीम एक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
> तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जुरी दोय।।

इसी प्रकार एकाधिक अर्थों को व्यजित करने की कला में भी रहीम बेजोड़ है। व्यंजना का चमत्कार कहीं 'रहिमन पानी राखिए' में मिलता है तो कहीं 'ज्यों रहीम गति दीप की' में। भगत-भगत (भक्त और भागते-भागते) की सटीक व्यंजना देखिए-

> कह रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
> भगत-भगत कोउ बचि गयो, चरन कमल की ओट।।

अतः स्पष्ट है कि रहीम के काव्य में कल्पना, ध्वनि तथा शब्द शक्ति व्यापार के भी सूक्ष्म तथा शास्त्रनुकूल दर्शन होते हैं। नपे-तुले और सशक्त प्रयोग से रहीम उत्कृष्ट कवि बन जाते हैं।

### 9.7.4 अलंकार और छंद

अलंकार और छंद योजना भी अभिव्यक्ति कौशल के महत्वपूर्ण अंग हैं। रहीम ने इन दोनों उपकरणों से भी अपनी काव्य प्रतिभा को सुसज्जित किया है। रहीम द्वारा प्रयुक्त अधिकांश अलंकार स्वाभाविक तथा सौंदर्यवर्द्धक बन गए हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, तथा पुनरुक्ति-प्रकाश आदि अलंकार देखे जा सकते हैं तो अर्थालंकारों में कवि के सर्वप्रिय अलंकार दृष्टान्त, उदाहरण, उपमा, रूपक, दीपक, स्वभावोक्ति, निदर्शना, असंगति, विशेषोक्ति. उत्प्रेक्षा. तद्‌गुण तथा मीलित आदि हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

एक ही वर्ण की आवृत्ति एकाधिक बार हो तो **अनुप्रास** अलंकार होता है-

सिस की सीतल चाँदनी, सुन्दर सबहिं सुहाय।

एक ही शब्द की आवृत्ति एकाधिक बार हो और हर बार अर्थ भी भिन्न हो तो **यमक-**

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कहयो समझाय।
जो तू **अनखाय** रहे, तो सों को **अनखाय**।।

यहाँ पहले 'अनखाय' से तात्पर्य है बिना खाए और दूसरे 'अनखाय' से अर्थ है बुरा मानना या घृणा करना।

इसी प्रकार जहाँ एक शब्द का प्रयोग एक ही बार हो पर उसके एकाधिक अर्थ हों- वहाँ श्लेष-

रहिमन **पानी** राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून।।

यहाँ पानी शब्द-चमक, इज्जत या शर्म तथा जल के लिए प्रयुक्त है।

अर्थालंकारों में दृष्टान्त अलंकार कवि का सर्वप्रिय अलंकार है। वास्तव में रहीम की काव्य शैली की विशिष्टता ही दृष्टांत में उभरती है। दो समान वाक्य जब परस्पर बिम्ब, प्रतिबिम्ब भाव पैदा करें तो दृष्टांत अलंकार बनता है। अर्थात पहले एक कथन प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसकी पुष्टि करने वाला दूसरा कथन। रहीम के सैंकड़ों दोहे इसी प्रकार के हैं-

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथै न माखन होय।।

जे गरीब पर हित करै, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।

इसी प्रकार **उदाहरण** अलंकार भी रहीम का प्रिय अलंकार है। पहले कथन की पुष्टि मतें ज्यों (अर्थात् जिस प्रकार) कहकर जहाँ दूसरा कथन रखा जाता है वहाँ उदाहरण अलंकार देखा जा सकता है। बाँटन बारे को लगे, ज्यों मेंहदी कौ रंग, जैसे कई उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं।

दो वस्तुएँ विभिन्न या असमान होकर भी जहाँ साधर्म्य द्वारा साम्यमूलक संबंध स्थापित करती हैं वहाँ उ**पमा** अलंकार होता है। रहीम के नीति काव्य में इसके अधिकांश उदाहरण मिलते हैं। सम, की सी, ऐसे, जैसे आदि प्रयोगों से कवि ने उपमाओं का भंडार जुटाया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

धरती की सी रीति है, सीत घाम अरु मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह।।

रहीम की अन्योक्ति का तो जवाब ही नहीं है। जीवन साधना और गहन अनुभूति का प्रखर रंग इनमें भरा है। विशिष्ट भावों से ओत-प्रोत तथा सौंदर्यमयी एक अन्योक्ति देखिए-

पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन।।

रहीम का युग, छंद-बद्ध कविता का युग था। छंद योजना कौशल में सिद्धहस्त रहीम भला इस दिशा में कैसे पीछे रहते। अन्य प्रचलित छंदों का सार्थक एवं सटीक प्रयोग करने वाले इस कवि ने तो 'बरवै' जैसे नवीन छंद को जन्म भी दिया। रहीम की छंद योजना भाषा

में स्वर-सारस्य, लय-साम्य तथा नाद की मधुरता भर देती है। लय और तुक का सम्मिश्रण छंदबद्ध भाव को जन-जन के प्राणों में उतार देता है। नायिका-भेद का सर्वथा नवीन छंद में विस्तृत विवेचन करने वाले इस आचार्य-कवि ने बरवै के महत्व को स्पष्ट भी किया है-

> बेधक अनियारो बड़ो, समुझैं चतुर सुजान।
> सुनत जात चित चाव पै, यह बरवै के बान।।

रहीम का छंद-शास्त्रीय ज्ञान व्यापक तथा गहन था। मात्रिक एवं वर्णिक दोनों ही प्रकार के छंदों तथा उनके भेद-उपभेदों को कवि ने अपनाया है। दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया मत्तगयन्द, सुन्दरि, किरीट, दुर्मिल, घनाक्षरी तथा मालिनी आदि छंदों का कवि ने उत्कृष्ट प्रयोग किया है। नीति-उपदेश तथा नगर शोभा वर्णन वे दोहों में करते हैं। नायिका भेद बरवै में, शृंगारिक रचनाएँ सवैये और सोरठे में तथा मदनाष्टक मालिनी छंद में रची गई हैं।

## 9.8 आदान-प्रदान

रहीम तथा उनके काव्य के इसके इस समस्त विवेचन के पश्चात संक्षेप में यह चर्चा करना भी अनिवार्य सा लगता है कि रहीम साहित्य पर किन-किन का प्रभाव रहा और रहीम ने किसे-किसे प्रभावित किया। इतना तो स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती परम्परा में रहीम संस्कृत के नीतिकाव्य से अत्यंत प्रभावित हैं। उन्होंने वहाँ से बहुत कुछ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में लिया भी है। जीवन की लगभग प्रत्येक स्थिति, घटना, वातावरण तथा व्यवहार की अभिव्यक्ति संस्कृत साहित्य में हुई है। अतः संस्कृत काव्य की छाया का हिंदी साहित्य में आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। भर्तृहरि के बहुत से श्लोकों का प्रभाव रहीम पर दिखाई देता है। कहीं कहीं ऐसा लगता है जैसे रहीम ने भाषांतरण अथवा अनुवाद खुद कर दिया हो। राम न जाते हिरन संग, महिमा घटि समुद्र की, रावन बसौ परोस, जो रहीम उत्तम प्रकृति आदि कई छंद हैं जिन पर स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। इसी प्रकार चाणक्य नीति, हनुमन्नाष्टक, पंचतंत्र, विदुर-नीति, रामायण तथा वेद पुराण आदि का प्रभाव भी स्पष्ट है।

हिंदी के मध्यकाल में भी बहुत से कवियों का रहीम से भाव साम्य देखा जा सकता है। कबीर तथा सूरदास का प्रभाव भी रहीम पर स्पष्ट ही मिलता है। इसी प्रकार तुलसी और रहीम समसामयिक कवि थे अतः दोनों में बहुत सी जगह भाव साम्य मिलता है। इन दोनों कवियों का परस्पर पत्र-व्यवहार तथा रहीम के बरवै छंद पर तुलसी का 'बरवै रामायण' रचना भी इसी तथ्य का सूचक है। तुलसी के रामचरित मानस का प्रभाव भी रहीम पर है। दोनों कवि एक दूसरे के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। कुछ उदाहरण भाव-साम्य के देखिए-

> नीच निचाई नहिं तजै, सज्जनहू के संग।
> तुलसी चंदन विटप बसि, विष बिनु भये न भुजंग।

-तुलसीदास

> जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत-कुसंग।
> चंदन विष व्याप्त नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

-रहीम

इस प्रकार-

> तुलसी पावस के समय धरी कोकिला मौन।
> अब तो दादुर बोलिहैं, हमहि पूछिहैं कौन।।

-तुलसीदास

पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हम कौं पूछत कौन।।

-रहीम

यही नहीं, इसी प्रकार के लगभग बीस-पच्चीस दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जहाँ परस्पर दोनों कवियों का भाव, विषय, कथ्य, भाषा तथा शैली आदि भी एक से लगते हैं। यह कहना कठिन है कि कौन किसे कहाँ प्रभावित करता है, पर परस्पर ये दोनों महान कवि भाव की समानता रखते थे।

मित्रता, विचार तथा साहित्य-भावों का आदान-प्रदान इन दोनों कवियों में चलता रहा। वास्तव में दोहों के स्तर की समानता इन दोनों में ही हो सकती है। दोनों भक्त, संस्कृत के पंडित तथा भारतीयता के प्रतीक हैं। दोनों की भाषा जन-भाषा है तथा दोनों का ब्रज और अवधी पर भी समान अधिकार है। राम भक्ति परम्परा में जो तुलसी का स्थान है, नीति काव्य परम्परा में वही भूमिका रहीम की भी रही है।

इनके अतिरिक्त भक्त कवि व्यास, रसमयी कविता के सर्जक रसखान, रीति के प्रमुख कवि बिहारी, मतिराम, रसनिधि, वृंद तथा गिरधर आदि कवियों में भी रहीम के कथ्य और भावों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। रहीम की शब्द रचना तथा वर्णन शैली ने भी बाद के बहुत से कवियों को प्रभावित किया है।

## 9.9 मूल्यांकन

कुल मिलाकर रहीम के समग्र भाव-सौंदर्य तथा अभिव्यक्ति कौशल को देखकर उनकी प्रतिभा-शक्ति के चमत्कार का लोहा मानना पड़ता है। कवि रहीम, मन की आँखों से युग धाराओं की तह में बसे जीवन रूपों तथा मूल्यों का सूक्ष्म एवं गहन दर्शन कर रहे थे। इसी का परिणाम है कि नीति, भक्ति, शृंगार, प्रकृति, आध्यात्म, शास्त्र, लोक, साहित्य, भाषा तथा अन्य अभिव्यक्ति कौशल आदि में कवि की गहन अनुभूति पाठकों को संवेदनशील बना कर कवि के विराट व्यक्तित्व को साकार कर देती है। कवि, संस्कृत के भाव सौन्दर्य को भी अपनी कल्पना तथा भाव शक्ति से यथावत प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल रहा है। विशिष्ट दृष्टि, मौलिक चिंतन तथा नैतिक मूल्य स्वयं ही कवि का मूल्यांकन कर देते हैं। दूसरे कवियों से प्रेरणा और प्रभाव लेने वाले इस कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा तथा गहन भावुक अनुभूति से उस भाव और विचार को नवीनतम बना दिया। शैली और दृष्टिकोण की मौलिकता तो रहीम का खास गुण है। यही उनकी काव्य-निपुणता का सूचक भी है। मतिराम, रसखान, गंग, बिहारी आदि कवि विषय वस्तु भाषा-शैली तथा भाव-योजना आदि अनेक दृष्टियों से रहीम के प्रभाव को ग्रहण करते हैं। गहरी अनुभूति, अद्‌भुत तथा सरल भावाभिव्यंजना कवि के कथ्य को सहज ही सम्प्रेषणीय बना देते हैं।

**बोध प्रश्न 3**

**नोट** : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर मिलाइए।

1. रहीम बहुभाषाओं के विद्वान थे बताइए वे कौन-कौन सी प्रमुख भाषाएँ जानते थे?

1) भोजन के तीन कार्य बताइए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2. रहीम ने बहुत सी शैलियाँ अपनाई। कुछ प्रमुख काव्य-शैलियों के नाम बताइए?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3. रहीम द्वारा प्रयुक्त किन्हीं पाँच मुहावरों का अर्थ सहित उल्लेख करें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

4. रहीम द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में से किन्हीं दो के उदाहरण देकर उन्हें सिद्ध करें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

5. रहीम ने कौन-कौन से प्रमुख छंद अपनाए तथा उन्होंने कौन सा मौलिक छंद दिया?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 9.10 रहीम के काव्य का वाचन और व्याख्या

अब आप पूर्व मध्यकाल अर्थात भक्तिकाल के महान कवि तथा नीतिकार के व्यक्तित्व और कृतित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। इसी महाकवि के काव्यांशों की व्याख्या किस प्रकार की जानी चाहिए, इसके लिए हम रहीम के कुछ पदों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके बाद कुछ पद अभ्यास के लिए भी दिए जा रहे हैं जिनकी संदर्भ सहित व्याख्या आप स्वयं करेंगे।

1. **रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।**
   **जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग :** प्रस्तुत वाक्यांश महान नीतिकार तथा दूरदृष्टा कवि रहीम के नीति-संगह 'दोहावली' से लिया गया है। युग कवि रहीम अपने से पहले की पूरी काव्य तथा

लोक परम्परा को देखकर जो ठोस एवं प्रेरक अनुभव बटोर रहे थे उन्हें कविता में ढाल कर, आने वाले युगों के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करते रहे। इस दोहे में जीवन का ऐसा ही एक कटु सत्य है जिससे मानव जाति को शिक्षा लेनी चाहिए। घर से निकाले गए व्यक्ति से क्या हानि होती या हो सकती है, उसी की चर्चा की गई है।

**व्याख्या** : रहीम कहते हैं कि नेत्रों में घर बनाकर रहने वाले आँसू जब ढुलक कर बाहर आ बैठते हैं तो किसी भी जीव के हृदय के भीरत छिपे दुख, दर्द, पीड़ा या उसकी वेदना का रहस्य खोल देते हैं। अर्थात वह व्यक्ति या जीव दुखी था तभी इन अश्रुओं के बाहर आने की नौबत आई। इन अश्रुओं ने मौन रहकर भी दुख और वेदना की बात पूरे संसार से कह दी। फिर कवि तर्क देता है कि ऐसा भला क्यों न होता? जिसे घर से निकालेंगे वह भला आपके भेद या रहस्य को क्यों नहीं खोलेगा? वह तो ऐसा करेगा ही।

**विशेष** :

1. कवि ने इतिहास सम्मत विभीषण के उदाहरण तथा युग-सम्मत सत्य को, अद्भुत कौशल से एक दूसरे का पूरक बना दिया है।
2. नेत्र, आँसुओं का घर होते हैं। इसलिए अश्रु वहाँ छिपे रहते हैं। कवि की कल्पना-शक्ति अत्यंत प्रखर है।
3. 'जाहि निकारो' कहकर रहीम ने समस्त जड़-चेतन को इसमें समाहित कर लिया। जिसे भी घर से निकाला जाएगा वह तो भेद कहेगा ही। ठीक वैसे ही जैसे विभीषण को रावण ने घर से निकाल दिया था। हालाँकि विभीषण प्रसंग की चर्चा भी यहाँ नहीं, परन्तु कवि की व्यंजना-शक्ति इसे मुखर कर देती है।
4. 'कस न' का प्रयोग करके कवि यह कहना चाहता है कि यह तो स्वाभाविक ही है। 'कैसे नहीं' कहेगा वह इस रहस्य को?
5. कवि दृष्टान्त पहले देकर दूसरे कथन में अपनी बात को पुष्ट करता है।
6. एक छोटे से दोहे में जीवन सत्य को कवि ने बाँध दिया है।
7. नीति के इस संदेश को कवि अत्यंत सहज, सरल तथा लोक जीवन में प्रचलित 'ब्रजभाषा' से सम्प्रेषित करता है।

2. **रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।**
**पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग** : प्रस्तुत पंक्तियाँ इस दोहे में रहीम ने 'पानी'' शब्द के चमत्कारी अर्थ से जन-जीवन के तीन महत्वपूर्ण पक्षों क्षेत्रों और दिशाओं को स्पष्ट किया है। रहीम ने अनुभव के आधार पर यह बताया कि किसके अभाव में मोती, मनुष्य तथा आटे का होना व्यर्थ है।

**व्याख्या** : कवि कहता है कि जीवन में 'पानी' की रक्षा करते हुए उसे सदैव सुरक्षित रखना चाहिए। क्योंकि पानी के बिना तो 'सब कुछ'सूना और व्यर्थ है। दूसरी पंक्ति में कवि ने दृष्टांत दिया कि पानी चुक जाने पर मोती, मनुष्य और चून (आटा) का होना भी व्यर्थ है अर्थात बिना पानी के उनका कल्याण या उद्धार भी नहीं हो सकता। 'पानी' शब्द के तीन अर्थ हैं और ये तीनों अर्थ मोती, मनुष्य और आटे के संदर्भ में लिए गए है। 'पानी का पहला अर्थ चमक। अक्सर कहा जाता है कि इन मोतियों का पानी उतर गया है या इन आभूषणों पर पानी चढ़वा दी। स्पष्ट है कि जिन मोतियों का पानी उतर गया है वे

बेकार हैं। इसी प्रकार दूसरे अर्थ पानी का - इज्जत या मान है। यह अर्थ मनुष्य के संदर्भ में प्रयुक्त है। कहा जाता है कि 'इस व्यक्ति की आँखों का पानी (शर्म) मर गया है। स्पष्ट है कि जिस मनुष्य की शर्म, इज्जत या मान नहीं रहे, वह भी व्यर्थ हो गया है। इसी प्रकार चून या आटा जो पानी अर्थात जल (पेय पदार्थ) के अभाव में बेकार है। बिना पानी के आटा खाया नहीं जा सकता। अतः कवि ने युगों-युगों तक मान्य रहने वाले इस सूक्ष्म सत्य को सहज ही व्यक्त कर दिया।

**विशेष :**

1. रहीम ने इस महत्वपूर्ण तथा अत्यंत प्रसिद्ध दोहे में सहज तथा स्वाभाविक शैली में अपना संदेश व्यक्त कर दिया है।
2. ब्रज भाषा की सम्प्रेषण शक्ति को निखारते हुए कवि ने 'पानी' शब्द को चमत्कारी बना दिया है।
3. 'पानी'शब्द के प्रयोग में श्लेष अलंकार की शोभा देखी जा सकती है, जिसमें तीन तीन अर्थ चिपके हुए हैं।
4. 'पानी गये न ऊबरे' कहकर कवि यह कहना चाहता है कि बिना पानी के ये तीनों डूब जाएँगे और पार नहीं लग सकेंगे।

**नोट** : अब हम नीति के ही दो अन्य दोहे कुछ संकेत देकर प्रस्तुत कर रहे हैं। आप इनकी संदर्भ व्याख्या का प्रयास कीजिए :

3. **जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।**
**चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग** : ये पद्यांश ........................................................................ प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति अर्थात स्वभाव की चर्चा यहाँ की गई है। जो उत्तम स्वभाव के ..........................................................................................बुरा संग या साथ भी ........................................................................... .......................अप्रभावी ............................................................................................................................। कवि का अनुभव-ज्ञान....................................................................................प्रेरक प्रसंग.........................................................................................................शिक्षा प्रद दृष्टि..........................................................................................................।

**व्याख्या** : उत्तम प्रकृति .......................................................................................... संग...........................................................................................चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं परन्तु चन्दन विष नहीं बनता या दुष्प्रभाव ग्रहण नहीं करता ............................................................................................ इसी प्रकार बुरी संगत में भी ..................................................................................उत्तम प्रकृति के लोग ..................................................................................।

**विशेष :**

1. भाव-योजना का सौंदर्य
2. भाषागत सहजता
3. दृष्टांत कौशल

4. प्रकृति या स्वभाव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

5. प्रेरणा तथा शिक्षाप्रद दृष्टिकोण

4. **रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न विपत्ति सहाय।**
**बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग** : प्रस्तुत दोहा ..........................................................................
है। रहीम का अनुभव है कि बिना अपनी सम्पत्ति के ..................................................
कोई सहायक नहीं ..............................................................................................।
अपना खून अपना ही ...........................................................................................
भाव ...............................................................................................आप मरे बिन स्वर्ग
न ..............................................................................................भाई बहन, पत्नी, पिता
सभी संबंधी पैसे के .........................................................................................

**व्याख्या** : विपत्ति की कसौटी ............................. ...............................................
पैसा और वह भी अपना .........................................................................................
अन्यथा सभी रिश्ते, संबंध व्यर्थ। स्नेह, प्रेम, आत्मीयता सभी पैसे के बिना व्यर्थ हैं जैसे- पानी के अभाव में कमल की रक्षा सूर्य भी नहीं कर सकते। हवा, गर्मी, मिट्टी सब है- पर बिना पानी के वह मृतप्राय है।

**विशेष** :

1. जीवन का कटु सत्य-अनुभवी दृष्टि
2. भाषिक सामर्थ्य तथा शक्ति
3. 'उदाहरण' अलंकार का सौन्दर्य

5. **नैन सलौने अधर मधु, कह रहीम घटि कौन।**
**मीठो भावै लौन पै, अरू मीठै पै लोन।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग** : यह पद्य नीतिकाव्य में अपना अद्वितीय स्थान रखने वाले तथा रीतिकालीन श्रृंगार की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले महाकवि रहीम की सृजन शक्ति की देन है। 'दोहावली' रहीम की काव्य-प्रतिभा का अन्यतम उदाहरण है। कवि ने नायिका भेद में तो अपनी रसिक तथा श्रृंगारी दृष्टि की परतें खोली ही हैं, नायिका के रूप-सौन्दर्य का भी अत्यंत उन्माद भरा तथा स्वभावतः सहज एवं विश्वनसनीय वर्णन भी किया है। इनकी नायिका का सौन्दर्य रीतिमुक्त कवियों की नायिका सा सलौना और रिझाने वाला पावन सौन्दर्य है, जिसमें वासना की गंध नहीं। यहाँ कवि की रसिक दृष्टि देखिए :

**व्याख्या** : नायिका के नयन सलौने हैं तथा होंठ शहद के समान मीठे। समय अनुसार दोनों का अपना अपना विशिष्ट महत्व होता है। नमक की आवश्यकता मधु से कम नहीं होती तथा मधु (मीठे) की उपयोगिता नमक से कम नहीं। इसीलिए रहीम कहते हैं इन दोनों में से कौन कम है? अर्थात दोनों एक दूसरे से बढ़कर हैं। अपने इस कथन को कवि कितनी सहजता से पुष्ट कर देता है, यही रहीम की अपनी खूबी है। अत्यंत नमकीन खा लेने पर भी मनुष्य का जी भर सा जाता है और मीठा खाने की लालसा उसे कुरेदती रहती है। इसी प्रकार मीठा अधिक खाने पर भी मनुष्य को नमकीन खाने की इच्छा बलवती हो जाती है। महत्वपूर्ण यह भी है कि शरीर में आँख और होंठ, दोनों का ही खास महत्व और स्थान है। कोई किसी से कम नहीं नहीं है। दोनों एक-दूसरे से बढ़कर हैं।

**विशेष** :

1. मानव शरीर में नेत्रों और होठों का महत्व असंदिग्ध है। नायिका के सौंदर्य में चार-चाँद लगाने वाले इन दो महत्वपूर्ण अंगों की सलौनी-कसक कवि के हृदय में विराजमान है।
2. मानव स्वभाव का कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। मीठा और नमकीन परस्पर विपरीत आस्वाद वाले हैं और इनका एक दूसरे की तरफ आकर्षण कवि को प्रेरित करता है।
3. 'सलौने' विशेषण, रूप या यौवन का होता है। पर रहीम ने यह लावण्य नेत्रों में अनुभव किया है। अधरों की मिठास जग विदित है।
4. 'मीठो भावै लोन पै, अरु मीठे पै लोन' में अनुप्रास अलंकार है।
5. ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार कवि ने श्रृंगार प्रसंग का सरस वर्णन किया है।

6. **जब तै बिछुरै मितवा, कहू कस चैन।**
**रहत भरयौ हिय साँसन, आँसुन नैन।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग** : रहीम श्रृंगार के संयोग वर्णन में तो कुशल हैं ही, उसके विप्रलम्भ पक्ष की सूक्ष्म अनुभूति भी उनकी विशिष्टता है। 'बरवै' छंद क`जनक रहीम ने बरवै-नायिका-भेद में नायिका के विरह को भी अत्यंत सहृदयता से अनुभव किया तथा अन्य दिग्गज कवियों की तरह उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की। रहीम का विरह-वर्णन बिहारी की श्वासों से उड़ने वाली नायिका का सा हास्यास्पद विरह नहीं, उसमें जीवन की सच्ची-वेदना और तड़पता-विछोह है। नायक का विछोह और उस पर सावन का महीना, नायिका पर वज्रापात है। कवि की कुशल अभिव्यक्ति देखिए :

**व्याख्या** : मीत' शब्द प्रेमी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। नायिका अपने प्रेमी (मितवा) से बिछुड़ गई है और इस विछोह या दूरी ने उसे बेचैन कर रखा है। वह इस विकल स्थिति में पूछती है कि भला ऐसी स्थिति में जब प्रियतम बिछुड़े हों, चैन कैसे मिल सकता है ? यही नहीं, दुर्भाग्य यह है कि कामदेव की अग्नि को और भड़काने वाला यह सावन का महीना हृदय की साँसों को और तेज कर देता है। यह तेज साँसें कामाग्नि को हवा देकर नित्य बढ़ाती जा रही है। दूसरी तरफ नयन निरंतर अश्रु गिरा रहे हैं। प्रिय दर्शन के अभाव में, नेत्र भी रो रहे हैं।

**विशेष** :

1. 'मितवा' शब्द अत्यंत सटीक प्रयोग है जो कवि के मूल कथ्य को सम्प्रेषित करने में पूर्णतः समर्थ है।
2. विरहिणी नायिका के हृदयगत भाव की सच्ची अनुभूति कवि ने की है।
3. सावन के महीने में वर्षा होती रहती है। नायिका के नेत्र भी निरंतर बरस रहे हैं।
4. कवि ने नायिका की विडम्बना को अत्यंत सूक्ष्म-दृष्टि से देखा है। एक तरफ तो नेत्र, अश्रुजल निरंतर बरसा कर कामाग्नि को बुझाना चाहते हैं जबकि दूसरी तरफ साँसें तेज चलकर उसे और प्रज्ज्वलित कर रही हैं।
5. सूर ने भी इसी प्रकार के भाव सौंदर्य की अभिव्यक्ति की है। 'निस दिन बरसत नयन हमारे' कहकर।
6. 'रहत भरयौ' कहकर कवि यह बताना चाहता है कि निसदिन तेज साँसें चलती हैं, हवा सी बहती है और नेत्रों से अश्रु निरंतर गिरते हैं पर न तो हृदय ही श्वासों से खाली होता है और न ही नेत्र अश्रुओं से।

7. 13-7, 13-7 मात्राओं के क्रम वाला 'बरवै' रहीम की शास्त्रीय देन का परिचायक है। लय और गति इस छंद की अद्भुत पहचान है लेकिन भावों की जीवंत अभिव्यक्ति इसकी खास पहचान है।

7. **पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।**
**अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन।।**

**संदर्भ तथा प्रसंग :** प्रस्तुत पंक्तियाँ जीवन-साधक और गहन-अनुभूति का रंग भरने वाले, भाव एवं कला निपुण नीति, श्रृंगार, भक्ति तथा प्रकृति का सजीव और जीवंत वर्णन करने वाले महाकवि रहीम की लेखनी से जन्मी है। रहीम केवल युग दृष्टा ही नहीं भविष्य-दृष्टा भी थे। वे समय, परिवेश और व्यक्ति को खूब पहचानते थे। दिनों का फेर उन्हें अलग अलग रूप में प्रभावित करता रहा है। यहाँ भी वे समय की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। जब समय बुरा हो तो समाज और लोक की रुचि भी बदल जाती है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि की गहरी पकड़ देखिए :

**व्याख्या :** रहीम कहते हैं कि वर्षा ऋतु में कानों को अमृत दिलाने वाली कोयल अपनी मधुर एवं कर्णप्रिय ध्वनि को उच्चरित न करके मौन हो बैठी है वह मन ही मन सोचती है कि यह समय का ही चक्र है कि कल तक मेरी मीठी वाणी से आनन्दित होने वाले सभ्य लोग भी अब मुझे नहीं सुनते या सुनना चाहते। क्योंकि वर्षा ऋतु में मेंढक भी टर्र-टर्र करने लगते हैं। ऐसे में जब बेढब और असभ्य लोग अपनी कंठ ध्वनि का बेसुरा-राग अलापने लगते हैं तो सभ्य और सुरमय-स्वर स्वतः ही खामोश हो जाना चाहता है। रहीम ने अप्रत्यक्ष रूप से इस कथन के द्वारा समाज के सभी क्षेत्रों में होने वाले अन्याय और भ्रष्टाचार का कारण स्पष्ट कर दिया है। विशेष रूप से राजनीति के क्षेत्र में। कोयल सोचती है कि जब में एक अब वक्ता बन गए हैं तो उसे कौन पूछेगा। अर्थात् जिसकी लाठी में ताकत होगी, वही कार्य सिद्ध कर सकेगा।

**विशेष** :

1. कवि ने ब्रजभाषा के इस दोहे में जीवन और समाज की विडम्बनाओं के मूल कारण को अपनी व्यंजना-शक्ति से अभिव्यक्ति दी है।
2. कोयल सभ्यता और सहजता की प्रतीक है तो मेंढक असभ्यता और कर्कशता का।
3. आज की राजनीति पर यह दोहा अत्यंत सटीक एवं सार्थक चोट करता है।
4. रहीम ने बदलते हुए मूल्यों और नैतिक-पतन की ओर संकेत किया है।
5. अन्योक्ति अलंकार का यह अन्यतम उदाहरण है।
6. तुलसी ने भी लगभग इसी प्रकार के एक दोहे का सृजन किया है दोनों कवियों में कई जगह पर पर्याप्त भाव-साम्य मिलता है।

## 9.11 सारांश

इस प्रकार इस पूरी इकाई में आपने रहीम तथा उनके काव्य के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। रहीम की जीवन यात्रा के बहुत से पड़ाव तथा उनके व्यक्तित्व और प्रतिभा के क्षेत्रों एवं दिशाओं का भी परिचय कराया गया। जन्म, शिक्षा, लालन-पालन, पारिवारिक एवं राजनैतिक जीवन, सेनापतित्व तथा नेतृत्व, कला-प्रेम, लोक-जीवन में रुचि, भाषा-प्रेम, कवि की विभिन्न कृतियों का परिचय, नीति काव्य परम्परा तथा रहीम के स्थान की भी सविस्तार चर्चा की गई। इसके अतिरिक्त आपने भावुक, वीर कला-पारखी, दूरदृष्टा तथा नीति, भक्ति, श्रृंगार और प्रकृति आदि पर अपनी काव्य-प्रतिभा की छाप लगाने वाले

महाकवि रहीम के भाव-पक्ष की विशेषताओं का अध्ययन किया। अभिव्यक्ति-कौशल के विभिन्न उपकरणों के जादूगर रहीम की काव्य-भाषा, विभिन्न शैलियाँ, भाषा में प्रयोग होने वाले विभिन्न मुहावरे तथा लोकोक्तियों की समीक्षा भी की गई। कवि की अद्भुत कल्पना, शक्ति, शब्दशक्ति, व्यंग्य तथा ध्वनि प्रयोग, अलंकारों और छंदों की सौन्दर्य विवेचना के बाद कवि पर पूर्ववर्ती काव्य के प्रभाव को भी प्रभावित किया है। उनकी जानकारी हासिल करते हुए रहीम के समग्र कार्य का मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया गया। अतः इस समग्र अध्ययन के बाद आप निश्चित ही रहीम तथा उनके साहित्य की गहरी जानकारी हासिल कर चुके हैं। रहीम के काव्यांशों की व्याख्या करनी भी आप अब समझ चुके हैं। इस इकाई में प्रयुक्त रहीम के अन्य दोहों की सप्रसंग व्याख्या का अभ्यास अब स्वतः कीजिए।

## 9.12 शब्दावली

**बहुभाषाविद्** : बहुत सी भाषाओं को जाने वाला विद्वान व्यक्ति।

**काव्य-प्रतिभा** : कविता लिखने की वह मौलिक शक्ति जो ईश्वरीय देन होती है।

**देदीप्यमान** : अत्यंत प्रकाशवान या चमकता-दमकता हुआ।

**कुशाग्र बुद्धि** : कुशा अर्थात नोकीली, छोटी घास की आगे की नोक की तरह तेज बुद्धि।

**कल्पतरु** : समुद्र मंथन से निकला ऐसा वृक्ष जो कुछ भी माँगने पर देता है।

**सर्वतोन्मुखी** : जो सभी दिशाओं की तरफ उन्मुख या अग्रसर हो।

**बैकुण्ठ** : स्वर्ग

**शमशीर** : तलवार

**पूर्वानुराग** : नायक-नायिका में श्रवण, दर्शन आदि के कारण मिलने से पहले जो राग उत्पन्न होता है।

**कपोल-कल्पित** : मनगढंत या बिना किसी प्रामाणिक आधार के कही गई बात।

**प्रणय-प्रसंग** : प्रेम की चर्चा या संदर्भ।

**शब्द-शिल्पी** : शब्दों को शिल्पकार की तरह सँवारने वाला।

**दुंदुभी** : नगाड़ा (एक प्रकार का वाद्य यंत्र)।

**प्रभावोत्पादकता** : भाव को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर प्रभाव पैदा करना।

## 9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रहीम ग्रन्थावली, सम्पादक, विद्यानिवास मिश्र तथा गोबिन्द रजनीश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2

रहीम रत्नावली, सम्पादक मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, बनारस।

अब्दुर्रहीम खानखाना; डॉ. समर बहादुर सिंह; झांसी

## 9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1. i) सन्, 1556

   ii) जहाँगीर ने

   iii) जहाँगीर ने

   iv) सन् 1627 में

2. i) देखिए : भाग 9.4

   ii) देखिए : भाग 9.4

   iii) देखिए : भाग 9.4

   iv) देखिए : भाग 9.4

**बोध प्रश्न 2**

1. देखिए : भाग 9.5
2. देखिए : अनुभाग 9.6.1
3. देखिए : अनुभाग 9.6.2
4. देखिए : अनुभाग 9.6.3
5. देखिए : अनुभाग 9.6.4
6. देखिए : अनुभाग 9.6.4

**बोध प्रश्न 3**

1. देखिए : अनुभाग 9.7.1
2. देखिए : अनुभाग 9.7.1
3. देखिए : अनुभाग 9.7.2
4. देखिए : अनुभाग 9.7.4
5. देखिए : अनुभाग 9.7.4

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 10 बिहारी का काव्य

## इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्‌देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 बिहारी का जीवन परिचय

10.2.1 युगीन परिवेश, कवि व्यक्तित्व और रचना

10.2.2 सतसई परंपरा और 'बिहारी सतसई'

10.3 बिहारी की कविता में श्रृंगार, सौंदर्य और प्रेम

10.3.1 संयोग और वियोग श्रृंगार

10.3.2 सौंदर्य और प्रेम–चित्रण

10.4 बिहारी की कविता में भक्ति, नीति और लोक

10.5 बिहारी की कविता की काव्य भाषा और काव्य रूप

10.5.1 काव्य भाषा

10.5.2 काव्य रूप

10.6 बिहारी के काव्य का वाचन और व्याख्या

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 उपयोगी पुस्तकें

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

## 10.0 उद्‌देश्य

इस इकाई में रीतिसिद्ध कवि बिहारी के व्यक्तिव और कृतित्व का अध्ययन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बिहारी के युगीन परिवेश, उनका जीवन परिचय और कृतित्व का परिचय दे सकेंगे;
- सतसई और मुक्तक काव्य परंपरा में 'बिहारी सतसई' के महत्व का प्रदिपादन कर सकेंगे;
- बिहारी के काव्य में व्यक्त प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार के स्वरूप को स्पष्ट कर पायेंगे;
- बिहारी के काव्य में लोक जीवन के विविध रंगों का विवेचन करते हुए नीतिकाव्य और भक्तिकाव्य के तत्व तलाश सकेंगे; तथा
- बिहारी की कविता के काव्यशिल्प-भाषा, अलंकार और छंद से परिचित हो सकेंगे।

## 10.1 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। रीतिकाल के आलोचकों और इतिहासकारों ने कवि बिहारी अथवा बिहारीलाल को 'रीतिसिद्ध' काव्यधारा का कवि माना है। रीतिसिद्ध अर्थात रीतिकविता की वह धारा जिसका कवि रीति प्रणाली तथा सिद्धांत का अनुगमन न कर उसे आत्मसात कर लेता है दूसरी ओर वह रीति से मुक्त होने का प्रयास भी करता है। यों वह

रीति प्रणाली से न पूरी तरह आबद्ध होता है न ही मुक्त। कह सकते हैं कि बिहारी रीतिशास्त्र की बँधी लीक और स्वच्छंद रीतिकाव्य के बीच के कवि हैं। बिहारी के काव्य में युगीन परिवेश का दरबारीपन है, भक्ति की तासीर है और सौंदर्य और प्रेम की गहराई भी है। श्रृंगार के संयोग और वियोग की संवेदना तो है ही। नायिका भेद, अलंकार, सौंदर्य, प्रेम भक्ति, नीति की कविता लिखते हुए बिहारी की कविता रीतिकालीन बँधी-बँधाई रीति से अलग मौलिकता के रंग में रंगी है। छोटे से छंद दोहे में बिहारी कमाल की कला का परिचय देते हैं। कविता के बाह्य चमत्कार, श्रृंगार के साथ प्रेम और सौंदर्य की गहराई जैसी बिहारी में है वैसी उस युग के दूसरे कवियों में न थी। नागर बोध और सामंती विलासी चेतना से भरे नायक-नायिका के हाव-भाव से बिहारी युगीन सामंती संस्कृति का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। श्रृंगार के ऐंद्रिक चित्रण में पतनशील सामंती प्रवृत्ति का दर्शन होता है। भक्तिकाल के नायक-नायिका कृष्ण और राधा बिहारी के यहाँ ईश्वरत्व छोड़कर, सदाचार और नैतिकता से मुक्त होकर प्रेम करते हैं। जीवन के बाह्य श्रृंगार और सौंदर्य के साथ बिहारी की कविता में कम ही सही प्रेम की गहराई भी है। बिहारी की बहुज्ञता ही उन्हें रीतिकाल का विरल कवि बनाती है। उनकी कविता में जीवन की विविध छवियाँ हैं। दोहा जैसे छोटे छंद में शब्दालंकार और अर्थालंकार की छटा देखने लायक है। शब्द प्रयोग और चित्रात्मकता तो अद्भुत है कविवर बिहारी का।

## 10.2 बिहारी का जीवन परिचय

रीतिकालीन मुक्तक परंपरा के कवि बिहारी का जन्म 1595 ई. को वसुआ गोविंदपुर गाँव, ग्वालियर में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। बचपन बुंदेलखंड में बीता और विवाह मथुरा में हुआ। खुद बिहारी ने लिखा भी है :

> जनम ग्वालियर जानिए, खंड बुंदेले बाल।
> तरुनाई आई सुखद, मथुरा बीस ससुराल।।

बिहारी जी के बचपन में पिता केशवराय इन्हें ग्वालियर से ओरछा ले गए। ओरछा में ही इन्होंने प्रसिद्ध रीतिकवि केशवदास से काव्य शिक्षा प्राप्त की। वहीं पर संस्कृत और प्राकृत भाषा के प्रमुख ग्रंथों का अध्ययन किया। बिहारी का अब्दुर्रहीम खानखाना से भी अच्छा सम्पर्क था। मुगल बादशाह शाहजहाँ की कृपा बिहारी को प्राप्त हुई तो जोधपुर, बूँदी आदि रियासतों से भी इन्हें प्रशंसा और वृत्ति मिली। जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि होने का गौरव बिहारी को प्राप्त हुआ। इस दरबार में इनको धन और यश दोनों मिला। जयपुर के राजकुमार रामसिंह को विद्यारंभ भी इन्होंने ही कराया। नरहरिदास और पं. जगन्नाथ के संपर्क से कवि बिहारी जी को अपने काव्य बोध को परिपक्त करने में सहयोग मिला। जीवन का अंतिम दौर निराशा से भरा रहा। सन् 1664 ई. में मथुरा में इनका निधन हुआ।

### 10.2.1 युगीन परिवेश, कवि व्यक्तित्व और रचना

किसी भी रचनाकार का रचनात्मक व्यक्तिव और उसकी रचना पर युगीन परिवेश का गहरा असर होता है। युग के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश से कवि व्यक्तित्व और दृष्टि का निर्माण होता है। बिहारी का समय मुगल सम्राट अकबर के उत्तर-समय से औरंगजेब के आरंभिक दौर तक था। इस तरह जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन सत्ता की रीति-नीति को बिहारी ने देखा। शाहजहाँ का काल तो स्थापत्य, चित्र और कला की दृष्टि से वैभव का काल था। उच्च वर्ग में भोग-विलास की अधिकता थी। निम्न वर्ग की जनता और उच्च वर्ग में बड़ा फर्क था। कलाकारों और कवियों को उच्च वर्ग में आश्रय मिला हुआ था। राजा, नवाब, मनसबदारों के दरबार में होने

से कलाकारों और कवियों का स्वतंत्र व्यक्तिव कम ही उभर पाया। दरबारों में रत्नों, आभूषणों और आमोद-प्रमोद का बाहुल्य था। अवध, दिल्ली, बुंदेलखंड, राजस्थान के राजाओं नवाबों के विलासिता के किस्सों का प्रमाण उस युग के कवियों की रचनाओं में साफ देखा जा सकता है। रीतिकाल के इस दौर में अधिकांश कवि सामंती वैभव की चमक-दमक की प्रशंसा करते हैं लेकिन बिहारी जैसे कुछ विरले कवि युगीन यथार्थ का चित्रण करते, उससे टकराते और आश्रयदाता को झकझोरते हुए अपने कवि व्यक्तित्व का विकास करते हैं। अपने आश्रयदाता जयपुर नरेश राजा जयसिंह द्वारा प्रजा विमुख होकर नवविवाहिता पत्नी के साथ अधिक आसक्त होने पर उन्हें चेताते हुए यह दोहा लिखना उस दौर में एक बड़े कवि के कवि व्यक्तिव का साहस ही कहा जा सकता है :

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिंकाल।
अली-कली हीं सौ बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।

मुगल राजाओं के संकेत पर मुगल विरोधियों का राजा जयसिंह द्वारा किए गए निर्मम व्यवहार से दुःखी होकर कविवर बिहारी ने अपने आश्रयदाता की इस नीति का प्रतिवाद किया। यह बिहारी के कवि व्यक्तिव का साहस ही था :

स्वास्थ सृकतन श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
वाज परपि पानि परि तू पंछी न मारि।।

युगीन सामंती विलास आमोद-प्रमोद, कबूतर, शतरंज, चौसा आदि खेल और विलासिता में डूबे उस सामंती युग पर कटाक्ष करते हुए बिहारी ने लिखा है :

ऊँचै चितै सराहिपत, गिरत कबूतर लेतु।
झलकित दृग मुलकिन वदनु, लघु पुलकित किहिं हेतु।।

भक्तिकालीन आध्यात्मिकता की जगह रीतिकालीन परिवेश में भक्ति का स्वरूप भी बदल गया। बिहारी के राधा-कृण प्रेम और सौंदर्य की सांसारिकता और भौतिकता के अधिक निकट हैं। शृंगार में भक्ति और भक्ति में शृंगार रीति काल की कविता की विशेषता है।

कवि बिहारी का व्यक्तिव सामंती परिवेश में निर्मित हुआ जिसमें नागर कला का आधिक्य था, लेकिन बिहारी अपने युग के अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह उस सामंती वैभव के प्रशंसक नहीं, आलोचक थे। जीवन के गहरे अनुभव और नागर के साथ लोक की गहरी समझ के कारण ही बिहारी अपने सामंती समाज और राजनीतिक संकीर्णता पर कठोर व्यंग्य और कटाक्ष कर पाते हैं।

बिहारी की रचना को 'बिहारी सतसई' नाम से जाना जाता है। इस रचना में 713 दोहे और सोरठे संग्रहीत हैं। यह मुक्तक परंपरा की रचना है। बिहारी सतसैय्या के दोहों के बारे यह दोहा प्रचलित है जो सतसई की महत्ता को बताता है :

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

बिहारी के दोहों की गूढ़ता-गंभीरता को ध्यान में रखकर इनकी सतसई को 'गागर में सागर' कहा गया है। 'बिहारी सतसई' में नायक-नायिका भेद और अलंकार को सिद्धांत-उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, लेकिन इनकी सुंदर छटा 'सतसई' में व्याप्त है। 'बिहारी सतसई' में शृंगार, सौंदर्य, प्रेम, भक्ति, नीति के साथ शास्त्र की विविध छवियाँ मौजूद हैं। भक्तिकाल में 'रामचरितमानस' की तरह रीतिकाल में 'बिहारी सतसई' को कवियों, आलोचकों और साहित्येतिहासकारों ने खूब सराहा है। इन रचनाओं पर कई

टीकाएँ भी लिखी गई है।

'बिहारी सतसई' की पहली टीका 1662 ई. में कृष्णलाल जी ने लिखा। अन्य प्रमुख टीकाओं में सन् 1717 में सुरति मिश्र ने 'अमर चंद्रिका', 1777 ई. में हरिचरणदास ने 'हरिप्रकाश', 1811 ई. में लल्लूलाल जी ने 'लाल चंद्रिका' नाम से 'सतसई' की टीका लिखी। हिंदी गद्य के विकास के साथ 'बिहारी सतसई' पर कई श्रेष्ठ भाष्य और टीका लेखन हुआ। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी बोधिनी', पं. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'बिहारी रत्नाकर' और पद्मसिंह शर्मा ने 'संजीवनी भाष्य' के नाम से 'बिहारी सतसई' की टीका लिखी। अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'बिहारी सतसई' का भाष्य लिखा गया।

## 10.2.2 सतसई परंपरा और 'बिहारी सतसई'

'सतसई' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' शब्द का अपभ्रंश है। साहित्य में मार्कंडेय पुराण में दर्ज 'दुर्गासप्तशती' सप्तशती श्रृंखला की आरंभिक रचना है किंतु यह रचना धार्मिक है। हिंदी की सतसई परंपरा ने जिस रचनाओं से प्रभाव ग्रहण किया उसमें प्रथम कृति हाल कृत 'गाथा सप्तशती' है। 700 गाथाओं की यह रचना प्राकृत भाषा में है। इस रचना में प्रेम और श्रृंगार का मनोहारी चित्रण है। संस्कृत के सतसई ग्रंथों में अनेक ग्रंथ शतक ग्रंथ हैं जो सतसई परंपरा में ही गिने जाते है। सतसई साहित्य में 'गाथा सप्तशती' के बाद भर्तृहरि का 'श्रृंगार शतक', 'वैराग्य शतक' और 'नीति शतक' का नाम शुमार किया जाता है।

इस कृतियों में श्रृंगार के ऐहिक वर्णन के साथ नीति कथन का आकर्षक वर्णन किया गया है। इसी परंपरा में कवि अमरूक का 'अमरूक शतक' का नाम लिया जाता है। अमरूक शतक में श्रृंगार का लालित्यपूर्ण चित्रण है। हिंदी की सतसई परंपरा पर 'अमरूक शतक' का सर्वाधिक प्रभाव है। हिंदी में सतसई परंपरा को दो श्रेणियों में बाँटा गया है। एक श्रेणी 'सूक्ति सतसई' की है जिसमें लोक और नीति की अधिकता है। इसी श्रेणी की रचनाओं मे 'तुलसी सतसई', 'रहीम सतसई' और 'वृंद सतसई' शामिल हैं। दूसरी श्रेणी की सतसई परंपरा को 'श्रृंगार सतसई' कहा गया। इस परंपरा में 'बिहारी सतसई' और 'मतिराम सतसई' जैसी रचनाएँ हैं।

हिंदी की सतसई की परंपरा में 'बिहारी सतसई' सर्वोत्कृष्ट रचना है। 'बिहारी सतसई' में श्रृंगार, प्रेम, नीति, भक्ति, ज्योतिष और सौंदर्य की सुंदर-प्रौढ़ अभिव्यक्ति है। भाषा की समाहार शक्ति की यह अद्‌भुत कृति है। दोहा जैसे लघु छंद में बिहारी ने लोक और शास्त्र, प्रेम और सौंदर्य, भक्ति और नीति का विरल संयोग किया है। भाव सघनता और वचन वक्रता का सुंदर काव्य है- 'बिहारी सतसई'। नायक-नायिका का हाव-भाव, प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार को भाषा की चित्रात्मकता में जैसा 'बिहारी सतसई' पेश किया गया वैसा उत्तर मध्यकाल के अन्य कवियों में दुर्लभ है। निम्नलिखित दोहे में देख लें जिसमें नायक-नायिका के द्वारा नेत्रों की भाषा का सुंदर प्रयोग है।

> कंहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
> भरे भौंन में करत हैं, नैनन ही सो बात।।

'बिहारी सतसई' मुक्तक परंपरा की भी सर्वोत्कृष्ट कृति है। 'बिहारी सतसई' अपनी समाहार शक्ति के कारण दोहे जैसे छोटे छंद में जीवन की, संवेदना की, प्रेम की, भक्ति की, श्रृंगार की, अलंकार की, रस की अद्‌भुत छटाएँ धारण किए हुए है। आधुनिक काल में सतसई परंपरा में जगन्नाथ दास रत्नाकर कृत 'उद्धव शतक' और वियोगी हरि का 'वीर सतसई' शामिल है, लेकिन इन रचनाओं में बिहारी सतसई जैसी विविधता और गहराई नहीं है।

## 10.3 बिहारी की कविता में शृंगार, सौंदर्य और प्रेम

शृंगार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति है। 'बिहारी सतसई' को शृंगार का श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी बिहारी की कविता की प्रधान प्रवृत्ति शृंगारी माना है किंतु उनकी कविता में वे प्रेम-दृष्टि का अभाव देखते हैं। उन्हीं के शब्दों में, ''कविता उनकी शृंगारी है, पर प्रेम की उच्च्य भूमि पर नहीं पहुँचती, नीचे रह जाती है।'' पर 'बिहारी सतसई' सूक्ष्म शृंगारिक काव्य नहीं है उसमें सौंदर्य और प्रेम की विविध छवियाँ हैं। वैसे भी शृंगार का प्रेम और सौंदर्य से गहरा रिश्ता है।

### 10.3.1 संयोग और वियोग शृंगार

शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' है। संयोग और वियोग शृंगार इसके दो भेद हैं। बिहारी का शृंगार वर्णन रीतिकाल में विरल है। संयोग शृंगार में बिहारी ने शृंगार की शास्त्रीय अभिव्यक्ति के साथ उससे अलग शृंगार की मौलिक छवियों का चित्रण भी किया है। नायक-नायिका के प्रेम प्रसंग उनके हाव भाव, मान-मनुहार और विविध आंगिक चेष्टाओं और मनोवृत्ति का सुंदर चित्रण बिहारी के दोहों में है। नायिका द्वारा नायक से संवाद और प्रेम-भाव का यह शृंगारिक चित्रण इस संयोग शृंगार के दोहे में देखा जा सकता है-

> बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
> सौंह करैं, भौंहन हंसे, दैन कहै, नटि जाय।।

नायक से बात करने की लालसा से मुरली को नायिका द्वारा छिपाया जाना, नायक द्वारा माँगने, पर भौंहों में हँसना, हास-परिहास, सौगंध खाना और फिर मुरली देने से इंकार करना; नायक-नायिका की आँगिक-चेष्टाओं और शृंगार के संयोग पक्ष का सुंदर चित्रण है। संयोग चित्रण में बिहारी ने बाहरी व्यापार चमत्कारिक वर्णन के साथ आन्तरिक हाव-भाव का भी सुंदर वर्णन किया है। नायक-नायिका द्वारा भरे भवन में नैनों के द्वारा आपसी संवाद का यह संयोग चित्रण विरल है -

> कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
> भरे भौंन में करत हैं, नैनन हीं सो बात।।

संयोग शृंगार में बिहारी ने बाहरी हाव-भाव और व्यापार के साथ नायक-नायिका के अंतर्मन में होने वाली आसक्ति और संवेदना का सुंदर चित्रण किया है।

विरह चित्रण शृंगार काव्य की कसौटी है। रीतिसिद्ध कवि होने से बिहारी की कविता में विरह की दशा का शास्त्रीय चित्रण भी है और विरह की स्वाभाविक और सहज अनुभूतियाँ भी। हालाँकि विरह का स्वच्छंद भाव कमतर है।

बिहारी के काव्य में शास्त्रीय दृष्टि से किया गया विरह चित्रण कृत्रिम और चमत्कारिक लगता है। स्वाभाविक विरह का वर्णन करते समय उनकी कविता में गहन भाव संवेदना होती है। विरह में अतिशयोक्ति और चमत्कारिक चित्रण का कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :

> इत आवत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
> चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनि साथ।।

अर्थात विरह में नायिका इतनी कृषकाय हो गई है कि वह कदम कहीं और रखती है और पड़ते कहीं और हैं। साँस लेने और छोड़ने के क्रम में अपनी जगह से सात हाथ पीछे और आगे चली जाती है। एक अन्य कविता में विरह-ताप के संदर्भ में लिखते हैं कि विरह में

नायिका का शरीर इतना दग्ध है कि उसे शीतल करने के लिए गुलाब जल की शीशी जो उसके ऊपर डाली जाती है वह बीच में ही सूख जाती है; शरीर पर उसकी एक बूँद भी नहीं पड़ती -

औंधाई सीसी, सुलखि विरह बरति बिललाल।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ हुयी न गात।।

प्रिय के विदेश चले जाने पर उसके प्रवास के दौरान ऊपजे विरह के चित्रण की 'बिहारी सतसई' में अधिकता है। प्रवास संबंधी विरह वर्णन में स्वाभाविकता और मार्मिकता भी अधिक है।

विरह की संवेदना का एक रंग यह है कि नायिका अपने प्रिय से यह शिकायत करती है कि आपने अपना मन तो मुझे दे दिया, वह मेरा हो गया है, अब कहीं और जाने को तैयार नहीं हैं; लेकिन आप हैं कि उसे सौतन के हाथ देना चाहते हैं, ऐसा जुल्म तो न कीजिए :

मोंहि दियों मेरे भयो, रहत जुमिल जिय साथ।
सो मन बाँधि न दीजिए, पिय सौतिन के हाथ।।

विरह में नायिका ने नायक के 'अरगजे' को 'अबीर' बना के लगा लिया; विरह संताप की यह उदात्तता बिहारी को रीतिकालीन कवियों में विरह के श्रेष्ठ कवि का दर्जा प्रदान करती है :

मैं लै दयौ लयौ सुकर, हुवत छनकि गौ नीर।
लाल तिहारों अरगजा उर ह्वै लग्यौ अबीर।।

बिहारी ने श्रृंगार चित्रण मे विशेष कर विरह चित्रण में कुछ ऐसी मौलिक उद्भावनाएँ की है जो उनकी कविता को उत्कृष्ट बनाती है। विरहणी की दशा को देखने के लिए बिहारी का यह आग्रह तो खूब है जिसमें वह विरहिणी के तन की दारुण दशा दिखाना चाहते हैं। विरह का यह विरल उदाहरण है :

जौ वाके तनकी दसा, देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नैकु बिलोकिए चाहि औचक चुपचाप।।

## 10.3.2 सौंदर्य और प्रेम-चित्रण

'बिहारी सतसई' श्रृंगार के साथ सौंदर्य की भी कृति है। श्रृंगार चित्रण में ऐंद्रियता को महत्व दिया जाता है, जबकि सौंदर्य में सौंदर्य के आंतरिक और बाह्य छवियों को चित्रित किया जाता है। बिहारी के श्रृंगार वर्णन में सौंदर्य बोध रचा गया है। श्रृंगार चित्रण करते समय बिहारी की कविताई सौंदर्य को अधिक तरजीह देती है। बिहारी की कविता में वस्तु, प्रकृति और मनुष्य का बहुविध सौंदर्य चित्रण किया गया है। वस्तु सौंदर्य में कृष्ण की बाँसुरी का सुंदर चित्रण हुआ है– कृष्ण के होठों पर हरे रंग की बाँसुरी की शोभा देखते ही बनती है। हरे रंग की बाँसुरी पर होंठो, आँखों और पीतांबर की आभा पड़ने पर बाँसुरी का रंग इंद्रधनुषी हो जाता है :

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पत जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र धनुष सी होति ।।

नायिका के कान में पहने गए तरौना का सुंदर चित्रण करते हुए बिहारी ने लिखा है कि नायिका के कान का यह आभूषण नायिका के सिर पर पड़े सफेद वस्त्र के बीच ऐसे हिल

रहा है जैसे धवल गंगा नदी के जल के बीच सूर्य अपने स्वर्णिम आभा के साथ प्रतिबिंबित हो रहा है:

लहस सेत सारी ढक्यो, तरल तउयौना कान।
पर्‌यो मनो सुरसरि-सलिल, रवि-प्रतिबिम्ब बिहान।।

यह बिहारी की कल्पना शक्ति का सामर्थ्य है जिसमें वह इन वस्तुओं का खूबसूरत सौंदर्य चित्रण करते हैं। प्रकृति का सौंदर्य चित्रण करते समय बिहारी जब अलंकारों का प्रयोग करते है, उसकी रंगत और गहरी हो जाती है। नायक और नायिका के सौंदर्य में प्रकृति के छवि सौंदर्य की कल्पना अद्‌भुत है। अलंकार का प्रयोग करते हुए प्रकृति सौंदर्य का यह उदाहरण देखिए :

सोहन ओढ़े पीतपट, स्याम सलोनि गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात।।

× ×

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पत झीन।
मानहुँ सुरसरिता बिमल, जल उछरत जुग मीन ।।

रीतिकालीन कवियों का प्रेम श्रृंगार से जुड़कर ही विकसित होता है। ऐंद्रिक प्रेम से अतींद्रिय प्रेम की छवि यहाँ देखी जा सकती है। बिहारी कवि-व्यक्तित्व भले ही नागर हो लेकिन उनमें किसानी और पशुपालन संस्कृति की भी झलक है। राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण करते हुए बिहारी की कविता की मनमोहक छवियों को देखा जा सकता है। प्रेम की गहन अनुभूति और पशुपालन संस्कृति का निम्नलिखित दोहा इसका प्रमाण है। इस दोहे में कृष्ण राधा से अपनी गाय के झुंडों में उनकी गाय न मिलाने का आग्रह करते हैं, लेकिन कृष्ण के प्रेम में मगन राधा कहाँ मानने वाली! वह गायें मिला देती हैं। फिर इस कार्यकलाप में दोनों शामिल हैं; दोनों की आँखें मिल जाती हैं तो मन भी मिल जाता है :

उन हरकी हसिंकै दूतै, इन सौंपी मुसकाय।
नैन मिलत मन मिलि गये, दोऊ मिलावत गाय।

प्रेम में प्रेमिका और प्रेमी को जग का ख्याल नहीं रहता। नायिका जगनिंदा के डर से प्रेमी के घर से बाहर जाती है लेकिन प्रेम की संवेदना इस कदर प्रभावी है कि वह बार-बार प्रेमी के घर ही पहुँच जा रही है :

चलत धैरू घर-घर तऊ, घरी न घर ठहराय।
समुझि वहै घर को चलै, भूलि वही घर जाय।।

प्रेम की इस विकलता और भावुकता को प्रेम का उन्माद या संकीर्णता कहना गलत होगा। यह प्रेम की विकलता का स्वाभाविक चित्रण है।

ऐहिक प्रेम की गहराई विरह की दशा में प्रेम के उदात्त भाव में रूपांतरित हो जाता है। यह सिर्फ भक्त कवियों में नहीं है, रीतिकवि बिहारी के काव्य में भी मौजूद है। कृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए हैं, राधा की आँखों मे विरह के उस क्षण में आँसू की कुछ बूँदें उनके सामने बहती यमुना नदी के जल में गिर जाती है और वह जल कुछ समय के लिए खारा हो जाता है। यह प्रेम की गहराई की ही अभिव्यक्ति है :

स्याम-सुरति करि राधिका नकति तरनिजा तीर।
अँसुवन करति तरौस को, खनिक खरौ हो नीर।।

बिहारी की प्रेम-दृष्टि रोमांटिक प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है जो उस युग के सामंती समाज के प्रभाव से नही उसके प्रतिरोध में साहसिक प्रेम कहा जाएगा।

**बोध प्रश्न**

1. निम्न वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   (क) बिहारी ................................................ धारा के कवि हैं।
   (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त)
   (ख) बिहारी का पूरा नाम ................................................ है।
   (बिहारीदास, बिहारी निधि, बिहारी लाल)
   (ग) बिहारी की काव्य भाषा ................................................ है।
   ( ब्रज, अवधी, बघेली)

2. निम्नलिखित वाक्यों में सही (✓) गलत (x) का निशान लगाइए।

   (क) बिहारी मुक्तक परंपरा के कवि हैं।

   (ख) बिहारी ने 'बिहारी सतसई' में दोहा छंद का प्रयोग किया है।

   (ग) बिहारी की कविता में शास्त्रीय परंपरा का पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

   (घ) बिहारी दरबारी परंपरा के कवि नहीं हैं।

3. बिहारी सतसई का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................

4. बिहारी की श्रृंगार भावना की विशिष्टताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................

5. बिहारी के प्रेम वर्णन पर प्रकाश डालिए। (लगभग आठ पंक्तियों में)

   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 10.4 बिहारी की कविता में भक्ति, नीति और लोक

'बिहारी सतसई' में श्रृंगार के साथ भक्ति और नीति के भी प्रचुर दोहे लिखे गए है। दोहे श्रृंगार के ही विस्तार लगते हैं। लोक जीवन का परिदृश्य भी इसी में घुला-मिला है।

बिहारी की कविता में भक्ति का चित्रण उनके श्रृंगार और सौंदर्य संबंधी दोहों के बीच उनकी काव्य शोभा को बढ़ाते हैं। सगुण-निर्गुण के विवाद में पड़े बिना वह अपनी कविता में भक्ति का चित्रण करते हैं। 'बिहारी सतसई' का प्रथम दोहा तो राधा को समर्पित है। राधा जो कृष्ण की सर्वस्व है, जिनकी छाया से कृष्ण की आभा सतरंगी हो जाती है।

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होय।।

बिहारी की भक्ति संबंधी कविता की यह विशेषता है कि वह कृष्ण भक्ति में उनके सौंदर्य की विरलता का चित्रण करते हुए अपनी भक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

बिहारी कहते हैं कि हे मुरारि! दुनिया भले ही मुझे ताने दे, मैं अपने टेढ़े स्वभाव को नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि आप की त्रिभंगी छवि को अगर मैं अपनी कविता में लाना चाहता हूँ तो उसमें भी विविध भावों का समावेश करना पड़ेगा। सहज और स्वाभाविक होने पर आपकी त्रिभंगी छवि न समा सकेगी। अतः मैं अपनी कुटिलता न त्यागूँगा :

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसंत त्रिभंगी लाल।।

बिहारी को लोक की गहरी पहचान है। नीति के दोहे में उनके लोक ज्ञान की परख होती है। मानवीय स्वभाव और जीवन बोध को उन्होंने कई दोहों में व्यक्त किया है :

कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराय जग, या पाये बौराय।।

इस दोहे में धतूरा और स्वर्ण की अधिकता की निंदा बिहारी ने की है। दोनों की अधिकता मनुष्य को पागल या बुद्धिहीन कर देती है। बिहारी को शासन-प्रशासन की गहरी समझ थी। उनके अनुसार जिस राज्य में दोहरा शासन होता है उसकी प्रजा दुःखी ही रहती है:

दुसह दुराज प्रजान कौ, क्यों न बढ़े दुख दंदु।
अधिक अँधेरौ जगकरत, मिलि मावस रवि चंदु।।

संसार में दुष्ट और खल व्यक्ति जिसमें बुरे गुण भरे हैं, उसका समाज में बड़ा आदर होता है जबकि सीधे और सरल व्यक्ति को यह संसार तवज्जो नहीं देता :

बसै बुराई जासु तनु ताहीं कौ सनमानु।
भलौ-भलौ कहिं छोडियै, खोटे ग्रह जपु दानु।।

बिहारी को प्रायः आलोचकों ने नागर संस्कृति का कवि कहा है। यों वह नागर कवि हैं भी लेकिन सिर्फ नागर जीवन का ही चित्रण उनकी कविता में नहीं है। बिहारी में लोक जीवन और लोक संस्कृति की गहरी समझ और संवेदना है। यमुना तट पर नायिका के स्नान करने, एड़ी घिसने और विरह में नायिका के बावलेपन के चित्रण में बिहारी के ग्राम्य-संस्कृति के सजग बोध का ही पता चलता है :

मुँह धोवति एँड़ी घँसति, हँसति अनंगवति तीर।
व्यंसति न इंदीवर नयनि, कालिंदी के नीर।।

× ×

हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाँव।
कहाँ जानि ये कहत हैं, ससहिं सीतकर नाँव।।

बिहारी के लोक संबंधी ज्ञान को वहाँ भी देखा जा सकता है जब वह जन साधारण में प्रचलित लोक रंजक खेलों, नृत्यों और क्रिया-कलापों का चित्रण करते हैं। पतंगबाजी, नट-विद्या, आँख-मिचौनी ऐसे ही खेल हैं जिनमें सामूहिकता में यह खेल अधिक आनंद की अनुभूति कराता है :

फूले फुदकत लै फरी, फल कटाच्छ करबार।
करत बचावत विय नयन, पाइक घाड हजार।।

× ×

इत तैं उत, उत हैं इतै, छिन न कहूँ ठहराति।
जन न परति, चकई भई, फिरि आवति, फिरि जाति।।

लोक जीवन की ये छवियाँ बिहारी को रीति काव्य का विशिष्ट कवि बनाती हैं।

## 10.5 बिहारी की कविता में काव्य भाषा और काव्य रूप

'बिहारी सतसई' ब्रजभाषा का प्रतिमान है। बिहारी ने रीतिशास्त्र पर ग्रंथ नहीं लिखा है लेकिन रीतिशास्त्र की कलात्मकता के वे पारखी हैं। दोहा जैसे छोटे छंद में उन्होंने भाषा की समाहार शक्ति और ध्वन्यात्मकता एवं वाक् वैवित्र्य का सुंदर प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, ''बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग-भंग किया है और कहीं-कहीं गलत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा बहुत कुछ इस दोष से भी मुक्त है।''

### 10.5.1 काव्य भाषा

बिहारी ने काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। भक्तिकाल में ब्रजभाषा का विकास अष्टछाप के कवियों सूर और नंददास के हाथों हो चुका था। बिहारी के यहाँ ब्रजभाषा की सर्जनात्मकता का चरम दिखाई देता है। बिहारी ने ब्रजभाषा में उसकी सहवर्ती जनपदीय भाषाओं का प्रयोग कर उसको समृद्ध बनाया है विशेष रूप से बुंदेलखंडी, अवधी शब्दों के चयन की सजगता और अलंकरण से बिहारी ने ब्रजभाषा का भाषिक सौंदर्य बढ़ाया। ब्रजभूमि की उत्सवी संस्कृति और कला की शास्त्रीय पद्धति से बिहारी ने भाषा में जो संस्कार पैदा किया वह रीतिकाल में अनूठी है। ब्रजभाषा को इस नए संस्कार से समृद्ध करने के संदर्भ में 'मध्यकालीन हिंदी भाषा' पुस्तक में रामस्वरूप

चतुर्वेदी ने सही लिखा है, ''ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और मुगलकालीन कला की बारीक पसंदी के समानांतर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य भाषा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।''

'उक्ति वैचित्र्य' और 'अर्थ गांभीर्य' के द्वारा बिहारी ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का कौशलपूर्ण प्रयोग किया है। छोटे और अर्थ गर्भित शब्दों के प्रयोग भाषा को विलक्षण बनाते हैं। उक्ति वैचित्र्य और 'अर्थ गांभीर्य' का यह दोहा नायाब है :

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौंन मैं करत है, नैननु ही सब बात।।

नेत्रों की भाषा का इसमें सांकेतिक प्रयोग है। आँखों ही आँखों में सारी बातें भरे भवन में करना, रीझना, खीझना, खिलना और अंत में नेत्रों के दो चार होने से लजाने की सुंदर अभिव्यक्ति यहाँ है। बिहारी अपनी समास पद्धति के लिए भी जाने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल सफल कवि में कल्पना की समाहार शक्ति और समास शक्ति का संयोजन आव यक मानते हैं। बिहारी में यह दोनों क्षमता विद्यमान हैं।

छोटे दोहे में पौराणिकता की सफल योजना, बड़े प्रसंगो का सफल नियोजन, उपमा, रूपक, सांग रूपक असंगति अलंकारो का सुंदर विधान बिहारी के समास पद्धति की विशेषता है। असंगति अलंकार का यह दोहा जिसमें प्रेम-व्यापार को दो पंक्तियों में कौशलपूर्वक रचा गया है :

दृग उरझत, टूटत.कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति।

बिहारी थोड़े में बहुत कहने वाले कवि के रूप में जाने जाते हैं। समास पद्धति की इसी विशेषता के कारण उन्हें 'गागर में सागर' भरने वाले कवि के रूप में जाना जाता है।

### 10.5.2 काव्य रूप

बिहारी प्रबंधकार नहीं मुक्तक काव्य के कवि हैं। दोहा जैसे मुक्तक काव्य रूप का प्रयोग वे मुख्य रूप से करते हैं। रहीम ने दोहा की खूबी में जो कहा वह बिहारी के दोहों पर पूरी तरह लागू किया जा सकता है :

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोड़े आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमंति कूदिं चलि जाहिं।।

बिहारी के दोहों के लिए कहा भी गया है- 'सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर'। बिहारी दोहा में समास पद्धति, व्यंग्य-वैचित्र्य और अर्थ गांभीर्य पिरोने वाले दक्ष कवि हैं। दोहा में सूक्तियों और मुहावरों का सुंदर प्रयोग बिहारी के यहाँ मौजूद है। इनका प्रयोग वह शब्द और अर्थ के चमत्कार लिए करते हैं, साथ ही दोहों में रस की व्याप्ति भी रखते हैं। उनके यहाँ दोहा में माधुर्य गुण की अधिकता है। अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन में भी आकर्षण है :

इत आवत चलि जात उत, चली छसातक हाथ

सूक्तियों का प्रयोग देखें :

नल बल जलु ऊँचों चढै, अन्त नीच को नीचु
× ×
बसै बुराई जासु तनु, ताहीं को सनमानु
× ×
अनबूडे-बूड़े तिरे, ते बूड़े सब अंग

बिहारी अपने अलंकार प्रयोग के लिए खूब सराहे गए हैं। रीतिकाल को कुछ आलोचक अलंकार की अधिकता के कारण अलंकृतकाल भी कहते हैं। बिहारी की कविता में कहीं-कहीं तो अलंकार चमत्कार उत्पन्न करने का काम करता है लेकिन प्रायः वह कविता की स्वाभाविक प्रकृति के अनुकूल होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों की सर्जनात्मक छवियाँ बिहारी के काव्य में मौजूद है। यमक और श्लेष तो उनका प्रिय अलंकार है। यमक अलंकार के उदाहरण के रूप में इस दोहे की चर्चा बार-बार की जाती है :

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
या पाये बौराय जग, या खाये बौराय।।

इसमें 'कनक' शब्द को 'स्वर्ण' और 'धतूरे' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसी तरह श्लेष अलंकार में सुमन का प्रयोग सुंदर मन और पुण्य के अर्थ में है। इसी प्रकार अनुप्रास तद्‌गुण, अतिशयोक्ति, विरोधाभास उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर विधान बिहारी के काव्य में है। बिहारी की कविता में उनके द्वारा प्रयोग किए गए अलंकार रूप और भाव दोनों को समृद्ध करते हैं।

**बोध प्रश्न**

6. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाइए।

   (क) बिहारी को प्रायः आलोचकों ने नागर संस्कृति का कवि कहा है।

   (ख) बिहारी ने धतूरे की तुलना पानी से की हैं।

   (ग) बिहारी की भाषा में मैथिली के भी शब्द आए हैं।

   (घ) 'कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय'। इस पंक्ति में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

7. 'बिहारी सिर्फ सौंदर्य और श्रृंगार के ही कवि नहीं है।' इस कथन पर अपना मत व्यक्त कीजिए। (उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।)

   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................

8. बिहारी की काव्य भाषा की विशिष्टताओं का वर्णन कीजिए। (उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।)

   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................
   ..........................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

10. बिहारी की 'बहुज्ञता' का संक्षिप्त विवेचन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

## 10.6 बिहारी के काव्य का वाचन और व्याख्या

1. **मेरी भव बाधा हरौ, राधा-नागरि सोई।**
**जा तन की झांई परे, स्याम हरित दुति होई।।**

यह भक्तिपरक दोहा 'बिहारी सतसई' से लिया गया है। रचनाकार रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं। यह 'बिहारी सतसई' का मंगलाचरण है। इस दोहे की यह विशेषता है कि इसमें कवि इष्ट रूप में 'राधा नागरी' की वंदना कर रहे हैं।

कवि बिहारी का कहना है कि राधा नागरी मेरी सभी बाधा और कष्टों को दूर करें जिनके गौर शरीर की छाया पड़ने से कृष्ण (काला) रंग के श्याम का रंग हरित हो जाता है। दूसरे अर्थ में कवि कहता है कि वह नागरी राधा मेरी सभी सांसारिक बाधाओं को दूर करें जिनके शरीर के छाया मात्र का ध्यान करके स्याम (कृष्ण) का मन प्रसन्न हो जाता है। उनके मन में प्रकाश फैल जाता है।

बिहारी के इस दोहे में 'गागर में सागर' वाली उक्ति पूरी तरह से लागू होती है। कवि का रंग बोध काबिले तारीफ है। 'झाँई', 'स्यामु', 'हरित' में श्लेष अलंकार है। 'झाँई का अर्थ है. छाया, झलक, 'स्यामु' का अर्थ है. कृष्ण और काला रंग और 'हरित' का अर्थ है हरा रंग।

विशेष – यहाँ सूर की रंग रची राधा रीतिकाव्य में पहुँचकर नागर हो जाती हैं। इसे युगीन परिवेश और बिहारी के नागर बोध से जोड़कर भी देखा जा सकता है।

2. **कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।**
**भरे भौन में करत है, नैनन ही सब बात।।**

बिहारी रचित 'बिहारी सतसई' के इस दोहे में चतुर नायक-नायिका के आँखों की चेष्टा से भावों की अभिव्यक्ति का सुंदर चित्रण है। भरे हुए भवन में नेत्रों के द्वारा ही संवाद हो

सकता है। इस दोहे में नायक नायिका से परिजनों से भरे भवन में प्रेम निवेदन करता है।

कवि कहता है कि देखो नायक और नायिका कितने चतुर हैं कि स्वजनों और गुरूजनों से भरे भवन में आँखों-आँखों में ही सारी अभीष्ट बातें कर लेते हैं। अपने मन की सारी बाते एक दूसरे से बिना बोले आँखों से कह लेते हैं। इस संवाद की प्रक्रिया में नायक के प्रणय निवेदन को नायिका मना कर देती है तो नायक उसकी इस अदा पर रीझ जाता है तब नायिका, नायक के रीझने की अदा पर खीझ जाती है, फिर दोनों मेल कर लेते हैं। नायिका के द्वारा प्रेम निवेदन स्वीकार कर लेने पर नायक पुनः हँस देता है जिससे नायिका लज्जित हो जाती है।

**विशेष** – इस दोहे में बिहारी की अद्भुत संवाद कला की दक्षता का पता चलता है। शब्द मैत्री भी सुंदर है।

3. **नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।**
   **अली, कली ही सौं बंध्यों, आगे कौन हवाल।।**

यह दोहा बिहारी का इतिहास प्रसिद्ध दोहा है। माना जाता है कि बिहारी ने यह दोहा राजा जय सिंह के पास लिखकर भिजवाया था। राजा इस दोहे के भाव सौंदर्य से बहुत प्रभावित हुआ था और उसने नवोढ़ा रानी के विलास से अपने को सावधान कर लिया था।

बिहारी कहते हैं कि ये भ्रमर, यह तो अभी कली है। इसमें न अभी पुष्प का पराग है, न मधुर रस है और न ही इसका अभी पूरी तरह विकास ही हुआ है। अभी से तू इस कली पर आसक्त होकर बँध गया है। आगे चलकर जब यह कली फूल बनेगी, तब तेरी आसक्ति का क्या हाल होगा ?

**विशेष** : इस दोहे में बिहारी ने राजा को कोरा उपदेश न देकर काव्यात्मक शैली में अर्थ व्यंजना से उपदेश दिया है। उन्हें ध्यान है कि कविता मात्र उपदेश नही है, वह सामान्य कथन होकर भी विशेष कथन है। समर्थ कवि उपदेशक न होकर अर्थ संकेत या भाव भंगिमा से बात करने में निपुण होता है।

4. **अधर धरत हरि कैं, परत ओठ–डीठि पर जोति।**
   **हरित बांस की बांसुरी, इंद्रधनुष रंग होति।।**

**प्रसंग** : श्रीकृष्ण की सर्वाधिक आकर्षक मुद्रा त्रिभंगीमुद्रा है। बिहारी ने इसी मुद्रा का इस दोहे में वर्णन किया है। वंशी वादन करते हुए श्री कृष्ण की इस मुद्रा पर कवि का चित्र अनुरक्त रहा है। बिहारी कहते हैं कि यह रंग–बिरंगी आभा लोकचित्त को मुग्ध कर लेती है।

**व्याख्या** : जिस समय श्री कृष्ण अधर पर मुरली रखकर बजाने को प्रस्तुत होते हैं, उस समय की अद्भुत छवि इंद्रधनुष के रंगों की भाँति रंग–बिरंगी आभा बिखेर देती है। इस आभा में वंशी का हरा रंग, ओठ का लाल रंग, आँखों का श्याम और पट (पीताम्बर) का पीला रंग मिलकर चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं।

**विशेष** :

क) इंद्रधनुष के सात रंग माने जाते हैं। किंतु यहाँ चार रंगों का ही वर्णन है। इस हेतु की दो व्याख्याएँ हैं। (1) इन चार रंगों के मेल से अन्य तीन रंग भी सहज ही झलक उठते हैं। (2) इंद्रधनुष से रंग–बिरंगी छवि का अर्थ लेना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

ख) निचले ओठ को अधर तथा ऊपर के ओठ को ''ओष्ठ'' कहते हैं। अधर शब्द का एक अर्थ आकाश भी है। इस दृष्टि से इंद्रधनुष ओठ (आकाश) पर सौंदर्य बिखेरता है।

ग) पूरे दोहे में तद्‌गुण अलंकार है।

**5. कौन भाँति रहि है बिरहु अब देखिबी मुरारि।**
**बींधे मोसों आइ कै, गीधे गीधहि तारि।।**

**प्रसंग :** बिहारी ने भक्तकालीन कवियों की भाँति उसी भाव परंपरा के बहुत से दोहे लिखे हैं। विद्वानों का विचार है कि बिहारी दरबारी प्रभाव में विवश होकर श्रृंगारी कविता लिखते अवश्य थे पर उनका मन भक्ति में ही रमता था। इस बात को इस तरह से भी कहा जा सकता है कि अपने अपराध बोध से पीड़ित बिहारी का मन भगवान की शरण खोजता रहा है। भक्त भगवान से प्रेम में हठ कर बैठता है, यही हालत यहाँ बिहारी की है। वे भगवान के विरुद्ध चुनौती देकर अपने उद्धार के लिए उकसाते हैं।

**व्याख्या :** हे कृष्ण! तुमने पतितों का उद्धार कर बड़ा यश कमाया है और तुम पतित पावन कहलाने लगे हो। मैं देखता हूँ कि अब तुम इस बार कैसे बचा पाते हो। मैं तुम्हारे समस्त यश को कलंकित कर दूँगा क्योंकि मुझ जैसे पापी का उद्धार नहीं कर पाओगे। एक बार एक गिद्ध संपाति को तारकर तुम्हें तारने का लालच लग गया है। इसी झोंक में भगवान तुम मुझे तारने का काम ले बैठे पर न तो मुझे तार ही सकोगे और न अपना यश ही बचा पाओगे।

**विशेष :**

1. ''सूरसागर'' में सूरदास ने इस दोहे के भावों में मिलते–जुलते अनेक पद प्रसंग वश दिए हैं। सूरदास बार–बार कहते हैं–'

   'कै प्रभु हरि मानि कै बैठो कै करौ विरुद्ध सही।''

2. मुरा नामक शत्रु का वध करने के कारण कृष्ण का एक नाम कृष्णावतार की कथाओं में ''मुरारी' मिलता है।

3. गिद्ध संपाति गिद्ध जटायु का भाई था जिसका उद्धार राम ने रामावतार की कथा में किया था।

4. बिहारी ने राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं किया है। यहाँ उनका संकेत विष्णु से है।

5. बिहारी ने ब्रजभाषा में अपनी सर्जनात्मकता का विस्तार करने के लिए देशी विदेशी शब्दों को खुलकर ग्रहण किया है। इस दोहे में गीधे–बीधे शब्द कन्नौजी–बुंदेलखंडी के प्रयोग में हैं।

6. चुनौती देते भक्त का बिंब इस दोहे का सौंदर्य है। दोहे की अर्थ–ध्वनि में बिहारी का अवचेतन मन झाँक रहा है।

निम्नलिखित दोहे की सप्रसंग व्याख्या स्वयं करने का प्रयत्न कीजिए :

**6. अजौं तर्‌यौना ही रहयो, श्रुति सेवत इक रंग।**
**नाक–बांस बेसरि लहयौ, बसि मुकुतनु कै संग।।**

**शब्दार्थ एवं संकेत** : अजौं–अब भी। तर्यौना–ठोस सोने का बना एक आभूषण जो कान में पहिना जाता है। नाक–स्वर्ग। बास–निवास। श्रुति सेवत–वेदों की साधना–सेवा, कानों की सेवा। इकरंग–निरंतर साधना या तप। मुकतनु–मुक्त पुरुष, संत, भक्त, परमहंस, मुक्ता। संग–संगीत। बेसरि–नाक में पहनने वाला आभूषण मोतियों वाली बारी।

तर्योना शब्द पर श्लेष हैं। एक अर्थ कान का आभूषण, दूसरा अर्थ–तर नहीं सका या उद्धार नहीं।

प्रसंग :

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

**व्याख्या :**

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 10.7 सारांश

बिहारी रीतिकाव्य के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनकी रचना 'बिहारी सतसई' रीतिकाल की प्रतिनिधि रचना है। बिहारी सतसई में 'गागर में सागर' की तरह दोहा जैसे छोटे छंद में उक्ति वैचित्र्य और अर्थ गांभीर्य का समावेश है। 'बिहारी सतसई' में सतसई और मुक्तक परंपरा का आत्मसात है तो इसमें मौलिकता का विधान भी है। भक्ति, नीति, ज्योतिष, कला, श्रृंगार, सौंदर्य और प्रेम का सुंदर निदर्शन बिहारी के काव्य की खूबी है। भाषा पर बिहारी का एकाधिकार है। भाषा की समाहार शक्ति और समास पद्धति में वह सिद्धहस्त हैं। शास्त्रीय परंपरा के आचार्य न होने पर भी रस, छंद, अलंकार, ध्वनि और शब्दों के प्रयोग में वह सफल कवि हैं। ब्रज भाषा की सर्जनात्मकता का उत्तम उदाहरण है बिहारी की कविता में। बिहारी नागर बोध के कवि हैं लेकिन उनमें लोक-व्यापार के भी सुंदर चित्र हैं।

## 10.8 शब्दावली

**सतसई** : सात सौ दोहों या छंदों की रचना

**रीतिसिद्ध** : रीतिशास्त्र का अनुकरण नहीं रीति परंपरा की व्याप्ति और मौलिक काव्य प्रयोग

**गागर में सागर** : थोड़े में बहुत

**भाव सघनता** : भाव की गहन संवेदना

**विरल** : विशेष

**ऐंद्रिक प्रेम** : शारीरिक या भौतिक प्रेम

## 10.9 उपयोगी पुस्तकें


- हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारीणी सभा, वाराणसी
- हिंदी साहित्य का अतीत-2 – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- रीतिकाव्य की भूमिका – डा. नगेंद्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- बिहारी काव्य का नया मूल्यांकन – डॉ. बच्चन सिंह; हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
- मध्यकालीन काव्य-भाषा – रामस्वरूप चतुर्वेदी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद


## 10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) रीति सिद्ध

   (ख) बिहारीलाल

   (ग) ब्रज

2. (क) (✓)

   (ख) (✓)

   (ग) (x)

   (घ) (x)

3. देखिए – भाग 10.2.2
4. देखिए – भाग 10.3.1
5. देखिए – भाग 10.3.2
6. (क) ✓

   (ख) ×

   (ग) ×

   (घ) ✓

7. देखिए – भाग 10.4
8. देखिए – भाग 10.5

10. उत्तर पूरे पाठ को पढ़कर तैयार कीजिए।

# इकाई 11 घनानंद का काव्य

## इकाई की रूपरेखा


11.0 उददेश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 युगीन परिवेश, जीवन परिचय और रचनाएँ

11.3 घनानंद की कविता में प्रेम, सौंदर्य और श्रृंगार

- 11.3.1 प्रेम निरूपण
- 11.3.2 सौंदर्य चित्रण
- 11.3.3 श्रृंगार

11.4 घनानंद के काव्य में लोक जीवन और भक्ति भावना

11.5 घनानंद की कविता का शिल्प पक्ष

- 11.5.1 काव्य भाषा
- 11.5.2 शब्द शक्ति
- 11.5.3 छंद एवं अलंकारों का प्रयोग

11.6 घनानंद के काव्य का वाचन और व्याख्या

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 उपयोगी पुस्तकें

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 11.0 उददेश्य

इस इकाई में आपको रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद के काव्य के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- घनानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझ सकेंगे;
- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में घनानंद के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे;
- घनानंद के स्वच्छंद प्रेम योजना और उनके सौंदर्य अभिव्यक्ति को समझा सकेंगे;
- घनानंद के काव्य में व्यक्त लोक जीवन और भक्ति-भावना को जान सकेंगे; तथा
- घनानंद के काव्य के शिल्पपक्ष की विशेषताएँ बता सकेंगे।

## 11.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा गया है। काव्य-शास्त्रीय लक्षणों-रस, अलंकार, ध्वनि, नायक-नायिका भेद के आधार काव्य-सृजन के कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाव्य' कहा गया। रीतिकाव्य में काव्यशास्त्र के रीति के आधार पर ही काव्य-

सृजन नहीं हुआ, उससे मुक्त होकर भी काव्य रचा गया। ऐसी काव्यधारा ही 'रीतिमुक्त' है। यह काव्यशास्त्र की बँधी-बँधायी परिपाटी से मुक्त स्वच्छंद प्रवृत्ति का काव्य है। इस काव्य धारा के कवियों में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर तथा द्विजदेव का नाम लिया जाता है। इस काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि घनानंद हैं। घनानंद की कविता में रीतियुगीन जड़ काव्यशास्त्र आधारित कविता का विरोध है। युगीन रूढ़िवादी सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति भी उनकी कविता में गहरा प्रतिरोध है। वह स्वच्छंद प्रेम के आग्रही कवि हैं। प्रेम घनानंद की कविता का केंद्रीय विषय है। स्वच्छंद प्रेम के इसी रूप में शृंगार और सौंदर्य की संवेदना भी अंतर्भुक्त है। प्रेम की स्वच्छंद अभिव्यक्ति विरह की शृंगारिक कविता में रूपायित होती है। प्रेम की आत्मानुभूति को कविता में रचने वाले घनानंद ने जीवन और कविता को अलग नहीं माना। उनके जीवन की अनुभूति ही कविता की अनुभूति है। उन्होंने लिखा भी है, 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत'। स्वानुभूति चेतना के कवि घनानंद की कविता में सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा का गहरा असर है। कवित्त, सवैय्या और कुंडलिया जैसे काव्यरूपों में घनानंद ने सर्जनात्मक काव्यभाषा का प्रयोग किया है। काव्यभाषा प्रयोग में भी घनानंद ने स्वछंद काव्य संवेदना का निरूपण किया है। इसी रूप में वह 'रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा' के प्रतिनिधि कवि हैं।

## 11.2 युगीन परिवेश : जीवन परिचय और रचनाएँ

रीतिकाल पतनशील सामंती समाज की देन है। युगीन दरबारी संस्कृति में शृंगारिकता का साहित्य अधिक लिखा गया। काव्यशास्त्रीय कसौटी को आधार बनाकर रस, अलंकार, नायिका भेद पर लिखे गए ग्रंथों में भी शृंगारिकता की प्रधानता थी। युगीन राजनीतिक परिवेश में भी इसी तरह के साहित्य-सृजन का अवकाश था। शृंगार के साथ भक्ति और वीरभाव की कविताएँ भी इस युग में रची गईं लेकिन उनमें पूववर्ती काव्यधाराओं-आदिकाल और भक्तिकाल का ताप न था। युगीन परिवेश का असर घनानंद के काव्य पर भी पड़ा। शृंगारिकता उनके काव्य का प्रधान विषय बना। स्वच्छंद व्यक्तिव और प्रेम की गहरी संवेदना के कारण वे युगीन रीतिकालीन शृंगारिक कविता का अतिक्रमण करते हैं। इसी रूप में वह 'स्वच्छंद प्रेम व्यंजना' और 'रीतिमुक्त काव्यधारा' के कवि कहलाए।

घनानंद का जन्म सन् 1689 ई. में ब्रजक्षेत्र में हुआ। वे फारसी साहित्य के गंभीर अध्येता थे। दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। वह मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में कवि के रूप में नहीं बल्कि प्रतिष्ठित मीर मुंशी के रूप में थे। घनानंद कवित्व से अधिक उस दरबार में अपने गायन कला के लिए जाने जाते थे। उसी दरबार की सुजान नामक वेश्या से अतिशय प्रेम करते थे। दरबार में घनानंद की प्रतिष्ठा के कारण कुछ कुचक्रियों ने उन्हें दरबार से बाहर निकालने के लिए एक कुचक्र रचा, जिसमें वे सफल भी हुए। दरबारियों ने राजा को बताया कि घनानंद बहुत अच्छा गाते हैं। राजा ने उन्हें गाने को कहा। उन्होंने गाने से मना कर दिया। दरबारियों ने राजा को बताया कि वह सुजान के कहने पर जरूर गाएँगे। सुजान को बुलाया गया। सुजान के अनुरोध पर घनानंद ने गाना गाया और गाते समय इतने भाव-विभोर हो गए कि मुँह सुजान की तरफ और पीठ राजा की तरफ कर लिया। इस अशिष्टता के कारण राजा ने घनानंद को दरबार से बाहर निकाल दिया। जाते समय घनानंद ने सुजान से साथ चलने का आग्रह किया लेकिन सुजान ने मना कर दिया। दुःखी होकर घनानंद वृंदावन चले गए। वृंदावन में वह निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए और 'सखी भाव' के उपासक बने। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण के दौरान 1761 ई मथुरा में घनानंद की हत्या कर दी गई।

घनानंद के नाम पर भी विवाद है। कवि ने अपने नाम का विविध रूपों में प्रयोग किया है।

घनानंद, आनंदघन और घनानंद उनके प्रमुख नाम हैं। साहित्य में वह घनानंद और आनंदघन नाम से प्रसिद्ध हुए। घनानंद ने कुल कितनी रचनाएँ रचीं इस पर भी पर्याप्त विवाद है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानंद ग्रंथावली' में घनानंद की 39 कृतियों को संकलित किया है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. सुजान हित | 11. अनुभव चंद्रिका | 21. कृष्ण कौमुदी | 31. मुरतिकामोद |
| 2. कृपाकंद | 12. रंग बधाई | 22. धाम चमत्कार | 32. मनोरथ मंजरी |
| 3. वियोगबेलि | 13. प्रेम-पद्धति | 23. प्रिया प्रसाद | 33. छंदास्तक |
| 4. इश्कलता | 14. वृषभानुपुर सुषमा वर्णन | 24. वृंदावन मुद्रा | 34. त्रिभंगी |
| 5. यमुनायश | 15. गोकुल गीता | 25. ब्रज स्वरूप | 35. परमहंस वंशावली |
| 6. प्रीति पावस | 16. नाम माधुरी | 26. गोकुल चरित्र | 36. ब्रज व्यवहार |
| 7. प्रेम पत्रिका | 17. गिरिपूजन | 27. प्रेम पहेली | 37. गिरिगाथा |
| 8. प्रेम सरोवर | 18. विचारसार | 28. रसना यश | 38. पदावली |
| 9. ब्रज-विलास | 19. दानघाट | 29. गोकुल विनोद | 39. प्रकीर्णक (स्फुट) |
| 10. सरस बसंत | 20. भावना प्रकाश | 30. ब्रज प्रसाद | |

प्रेम और भक्ति से संबंधित इन रचनाओं में 'सुजानहित', 'वियोगबेलि', 'इश्कलता', 'प्रेम-पत्रिका', 'दानघाट' तथा 'वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' प्रमुख हैं। इन रचनाओं में उन्होंने कवित्त, सवैय्या, कुंडलिया और दोहे-चौपाई का प्रयोग किया है।

घनानंद अपने समय के विवादास्पद और स्वच्छंद व्यक्तिव के प्रेमी कवि हैं। उनके काव्य की मूल प्रेरणा सुजान हैं। सुजान के वियोग ने उन्हें कवि बनाया। सामाजिक रीति-नीति का विरोध कर उन्होंने सुजान से प्रेम किया तो कविता की बनी-बनाई युगीन परिपाटी से अलग रीतिमुक्त काव्य संवेदना को ग्रहण किया। उनके समय में उनके निंदक भी थे तो प्रशंसक भी कम न थे। घनानंद की कविताई के प्रशंसक ब्रजनाथ, घनानंद के निंदकों को लक्षित करके उनके प्रति अपना प्रतिरोध प्रकट करते हुए लिखते हैं :

कोटि विषै करि ओट महा, नहिं नेह की चोटहिं जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत, मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।।
चाह प्रबाह अथाह परे नहिं, आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूँछ विषान बिना पसु जो, सु कहा घनआनंद बानी बखानै।।

घनानंद के सामयिक मित्र ब्रजनाथ ने घनानंद की कविताओं को संग्रहीत कर 'घनानंद कवित्त' में दर्ज किया है। इसमें लगभग 500 कवित्त-सवैय्ये हैं। घनानंद की कविता में प्रेम और श्रृंगार के साथ भक्ति का भी विरल स्वर है। घनानंद के सुधी आलोचक रामदेव शुक्ल इस संदर्भ में लिखते हैं, "रीतिकालीन काव्य को दूसरे दर्जे का साहित्य मानने वाले आलोचक भी घनानंद की जिस कविता के आधार पर उन्हें 'साक्षात रसमूर्ति' कहते हैं उसी काव्य को बकवास कहकर छोड़ देने वाले घनानंद का भक्तिकाव्य कितना समृद्ध है इसकी ओर अभी तक हिंदी साहित्य के विद्वानों का ध्यान नहीं जा सका है। 1057 पद तो केवल पदावली में ही हैं। इसके अतिरिक्त संप्रदाय की रीति-नीति के अनुसार घनानंद ने दर्जनों काव्यग्रंथों की रचना की है।"

## 11.3 घनानंद की कविता में प्रेम, सौंदर्य और शृंगार

### 11.3.1 प्रेम निरूपण

घनानंद प्रेम मार्ग के 'धीर पथिक' हैं। भारतीय शास्त्रीय-सामाजिक परंपरा में एकतरफा प्रेम को स्वीकृति नहीं मिली है जबकि फारसी काव्य परंपरा में सूफी प्रभाव में प्रेम के इस पद्धति को प्रशंसित किया गया है। घनानंद का प्रेम एकतरफा ही है। सुजान के प्रति उनके प्रेम में विरह की उदात्त छवि है। घनानंद के प्रेम निरूपण में फारसी साहित्य का अत्यधिक प्रभाव है। उनका प्रेम जो स्वच्छंद है, शास्त्रीय रूढ़ियों का प्रतिरोध करता दिखाई देता है। प्रेम में विरह की दशा को घनानंद ने एक नया उदात्त भाव लोक प्रदान किया। आचार्य रामचंद शुक्ल घनानंद की प्रेमदृष्टि की प्रशंसा करते हुए 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं,"विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम का पीर, लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

घनानंद के स्वच्छंद प्रेम काव्य में अनुभूतिपरकता और भावुकता की प्रधानता है। घनानंद का प्रेम विरह परक है। उनकी कविता में उनकी प्रेमिका सुजान केंद्र में है। रीतिकालीन वासनापरक प्रेम से अलग प्रेम की प्रगाढ़ता और साधानाभाव घनानंद के प्रेम का विषय है। उनके अनुसार प्रेम का मार्ग सीधा और सरल है उसमें कपट और चतुराई की जगह नहीं है। सयानेपन की जरूरत नहीं।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चले तजि आपनपौ झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौ, पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।

इस प्रेम के मार्ग में अहं के त्याग की आवश्यकता पर भी घनानंद ज़ोर देते हैं। रीतिकाल में ही नहीं समूची हिंदी कविता में प्रेम निरूपण की जैसी संवेदना घनानंद की कविता में है वह विरल है। प्रिय की निष्ठुरता को जानते और पहचानते हुए भी उसके प्रति उन्होंने एकनिष्ठ प्रेम भाव बनाए रखा तथा प्रेम को जीवन का मुख्य विषय मान लिया। प्रिय के प्रति घोर आसक्ति और तन्मयता इस प्रेम की संवेदना है। प्रिय की उपेक्षा और उससे उपजी पीड़ा को खुद सहना, प्रिय को दोषी न मानना बल्कि इस विरह को सहेजकर रखना, प्रिय की सदैव मंगल कामना करना, यह घनानंद के प्रेम की उदात्तता ही है।

इत बांट परी सुधि रावरे भूलनि कैसे उराहनौं दीजिए जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कहु मनमाई सु कीजिए जू।।
घनआनंद जीवन-प्रान सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीक रहौ तुम्हे चाड़ कहा पै असीस हमारियों लीजियै जू।।

घनानंद का प्रेम वासना रहित और निष्काम-प्रेम का अप्रतिम उदाहरण है। यह प्रेम का ऐसा मार्ग है जिसमें फकीराना अंदाज में बेलौस होकर ही चला जा सकता है। जैसे कि घनानंद चलते हैं। यह प्रेम की चरम दशा है जहाँ प्रेमी-प्रेमिका में फर्क नहीं रह गया है। वह दोनों एक हो गए हैं, अद्वैत हो गए हैं। आलोचक लल्लन राय 'घनानंद' पुस्तक में घनानंद के इस प्रेम तत्व का विवेचन करते हुए लिखते हैं, "विषम होकर भी इनके प्रेम में अंततः एक समता की स्थिति मिलती है जो प्रेमी को बहुत बड़ा बना देती है। वस्तुतः यह सूफी प्रेमादर्श है जिसमें फारसी प्रेम की एकनिष्ठता और एकांतिकता सूफियों की पीड़ा, भारतीयता का

आदर्श और भक्ति-भावना का सुंदर पुट मिलता है।'' प्रेम के इस स्वरूप पर घनानंद ने लिखा हैः

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताहि एकरस हौ बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेहि हरि-राधा जिन्हें देखें सरसायौ है।
ताकी कोउ, तरल तरंग-संग छूटयौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंड़ि उफनायौ है।
सोई घनआनंद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायो है।।

घनानंद ने अपने लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम को रूपायित कर दिया है। सुजान के प्रति उनका प्रेम भौतिक प्रेम से ईश्वरीय प्रेम में बदल गया। घनानंद के इस प्रेम में मध्यकालीन भक्ति की चेतना का तत्व भी निहित है।

## 11.3.2 सौंदर्य चित्रण

घनानंद की कविता में सौंदर्य का सूक्ष्म अंकन हुआ है। उनका सौंदर्य चित्रण अपने युगीन कवियों से भिन्न और अनूठा है। आत्मानुभूति के ठोस धरातल पर वह सौंदर्य का पुनर्सृजन करते हैं। घनानंद के सौंदर्य दृष्टि से बाह्य सौंदर्य के साथ आंतरिक सौंदर्य की हवा भी उतनी ही गहराई से चित्रित हुई है। घनानंद के प्रशंसक ब्रजनाथ ने लिखा है :

नेहि महाब्रज भाषा-प्रवीन और सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग वियोग की रीति में कोबिद, भावना भेद-सरूप को ठानै।।

अर्थात घनानंद की कविता में अभिव्यक्त सौंदर्य की सही परख वही कर सकता है जो खुद प्रेमी हो, ब्रजभाषा के मर्म को जानता हो, सुंदरता के भेदों की उसे परख हो। आत्मानुभूति और भावना के भेदों की सूक्ष्मता को जानता हो। घनानंद के सौंदर्य चित्रण में स्वानुभूति की संवेदना है। घनानंद का प्रेमी आलंबन के रूप-सौंदर्य में इस कदर घुल-मिल गया है कि दोनों एकमएक हो गए हैं। रूप सौंदर्य की आंतरिकता का चित्रण करते हुए नायिका के प्रति उनका भावुक प्रेमी मन तन्मय होकर अंतर सौंदर्य का उद्घाटन करता है :

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागै ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आंखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।

घनानंद नायिका के सौंदर्य का वायवीय चित्रण नहीं करते। भोक्ता के रूप में अंकन करते हैं। बाह्य सौंदर्य के साथ मानसिक सौंदर्य का चित्रण करते हुए वह नई भावना और कल्पना को रूपायित करते हैं। रूप सौंदर्य का एक अनूठा उदाहरण :

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छवि-फूलन की, बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।

यहाँ सौंदर्य का पारंपरिक रीतिकालीन सौंदर्य चित्रण नहीं है। कवि मुखमंडल, आँख, वाणी, लट, ग्रीवा के आकार-प्रकार का चित्रण करते हुए इनके सौंदर्य में निहित कांति और तेज का हृदय पर पड़ने वाले मनोहारी प्रभाव का अंकन करता है। अंतिम चरण का 'अंतिम पदबंध' - परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै' के आलोक में उसके ऊपर की तीनों पंक्तियों के

अंग सौंदर्य और हाव-भावों को देखने पर इस गतिशील सौंदर्य को समझा जा सकता है। सौंदर्य चित्रण में घनानंद रीतिकालीन अलंकारिक मार्ग से कुछ न कुछ ग्रहण करते हैं लेकिन उसे अपनी मौलिक प्रतिभा से अंगो के आंतरिक संवेदना के प्रभाव को अधिक लक्षित करते हैं। इसी रूप में वह अपने युगीन कवियों से अलग और विरल पहचान बनाते हैं।

### 11.3.3 श्रृंगार

घनानंद का काव्य विरह प्रधान प्रेम काव्य है। उनके काव्य में संयोग चित्रण कम, विरह का चित्र अधिक है। घनानंद के संयोग श्रृंगार में प्रिय से मिलन की, दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा है। प्रेम की गहराई की अधिकता के कारण घनानंद के संयोग और वियोग में बहुत अंतर नहीं हो पाता। यहाँ संयोग में भी वियोग-सा भाव बना रहता है। वियोग मिश्रित संयोग का यह चित्रण विरल है :

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहतु है।
दृग-आगेतें बैरी टरै न कहूँ जगि-जोहनि-अंतर जोहतु है।।
घनआनंद मीत सुजान मिलें बसि बीच तऊ मति मोहतु है।
यह कैसो संजोगन बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है।।

घनानंद को मूलतः 'प्रेम के पीर' का कवि कहा गया है। उनकी कथनी करनी में फर्क नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद के वियोग चित्रण की गंभीरता का विवेचन करते हुए लिखते हैं, ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों को लिया है पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक है। इसी से अनेक वियोग संबंधी पद ही प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिक अंतर्वृत्ति निरूपक है, वाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी ताप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है। बाहर से यह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है न सेज का आग की तरह से तपना, न उछल-उछल कर भागना।'' घनानंद का प्रेम एकनिष्ठ और एकपक्षीय है। यहाँ विरह की विलक्षण संवेदना है। प्रेमी की पीड़ा अनिर्वचनीय है। खुद इस संवेदना को घनानंद ने ''मौन मधि पुकार' कहा है। विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण उनके काव्य की पहचान है-

अंतर उदेग-दाह, आंखिन प्रवाह-आंसू,
देखी अटपटी चाह भीगनि-दहनि है।
सोयबो न जागिबो, हो हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आपही मैं चेटक लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनन्दघन,
बिरह-विषम-दसामूक लौं कहनि है।
जीवन-मरन, जीव-मीच बिना बन्यौ आनि
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।।''

घनानंद विरह को उदात्त भावभूमि पर प्रतिबिंबित करते हैं। आत्मभर्त्सना है परंतु प्रिय की अमंगल कामना नहीं है। जीवन के उत्तरार्द्ध में तो उन्होंने प्रेम साधना को ईश्वरीय बना दिया। इसलिए उनके यहाँ प्रेम की जाग्रत स्थिति बनी रहती है। रामचन्द्रशुक्ल घनानंद के विरह संवेदना की उदात्तता का चित्रण करते हुए सही लिखते हैं, ''घनानंद के श्रृंगार काव्य में विरहानुभूति के चित्र संयोग चित्रों की अपेक्षा कई गुना अधिक है। घनानंद के विरह वर्णन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह कवि विरह तीव्रता का चाहे जितना अनुभव करता और कराता हो 'निराशा' और 'विषाद' को वह पास फटकने नहीं देता। जिसकी दुहाई 'आलोचक प्रवर दिया करते हैं।''

शास्त्रों में विरह की दस अंतर दशाओं का वर्णन किया गया है- अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधिजड़ता और मरण। वियोग की ये शास्त्रीय दशाएँ आनंदघन या घनानंद के काव्य में सहजता से देखी जा सकती हैं। कुछ उदाहरण :

**अभिलाषा -** अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरूनीन रूमांच ह्वै कांपती हैं।
जब ते तुम आवनि औधि बदी तब ते अंखिया मग मापति हैं।।

प्रिय मिलन की अभिलाषा में मन में रोमांच है, शरीर काँप रहा है, सिहर रहा है प्रिय मिलन की आस में अँखिया उस मार्ग पर लगी रहती है जिस रस्ते प्रिय विदेश गया था।

**चिन्ता-** घनानंद की कविता में गंभीर विरह दुःख अनरूप चिंता का चित्रण किया गया है :

घनआनंद ऐसी दसानि थिरयौ
दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।

**स्मृति -** संयोग की सुखद स्मृतियाँ विरह में अधिक कष्ट देती है। संयोग के क्षण में जिन करील-कुंजो में प्रिय मिलन होता था उनकी सुखद स्मृतियाँ उन सुंदर दृश्यों को देखकर याद आ जाती हैं :

वेई कुंज-पुंज जिन तरे तन बाढ़त हो,
तिन छांह आए अब गहन सो गहिगौ।

घनानंद स्मृति चित्रण में मानसिक पक्ष पर अधिक तरजीह दिया करते है, इसलिए वह अधिक मार्मिकता से युक्त होता है। इसी प्रकार का चित्रण अन्य दशाओं में भी देखा जा सकता है :

**गुणकथन -** मैं तुम्हें मति कोऊ कहौ हितहीन, सुख या दुःख बीच अमीच करे।

**उद्वेग -** अंतर उदेग दाह, आंखिन प्रवाह आंसू
देखी अटपटी चाह भिजनी दहनि है।

**प्रलाप -** ऐसे घनआनंद बिहाय न बसाय दा
धीरज बिलाय बिललाय फिरौ हाय-हाय।

**उन्माद -** जान! तिहारी सों मेरी दसा यह को
समुझै अरु काहि सुनाऊँ।

**व्याधि -** कहाँ ऐसी रांचनि हरदि केसू केसरि में
जैसी पियराई गति पागियै रहति है।

**जड़ता -** रैनि-द्यौस जागें ऐसी लगी जु कहूँ न लागै
पन अनुरागै पागैं चंचलता च्वै गई।

**मरण -** बनी है कठिन महा, मोहिं घनानंद यों,
मीचो मरि गई आसरो न जित ढूकियै।

घनानंद के इन शास्त्रीय विरह दशा वर्णन में भी स्वाभाविकता है। उसमें कृत्रिमता रंच मात्र नहीं है क्योंकि उनका श्रृंगार वर्णन स्वच्छंद प्रेम की धनीभूत अभिव्यक्ति का ही प्रतिरूप है। शास्त्र का वह अनुकरण नहीं करते बल्कि वह उनकी स्वच्छंद प्रेम योजना का अंग है। श्रृंगार की स्वच्छंद अभिव्यक्ति में शास्त्रीय अभिव्यक्तियाँ फूटती हैं, व्यक्त होती हैं। घनानंद अपने प्रिय को सुजान, जानराय, ढरकों ही बानिवाले नाम से पुकारते हैं। वह प्रिय की निष्ठुरता पर खीजते नहीं, दुःखी नहीं होते, विरह में जीवन का रस ढूँढ़ते हैं। विरह

की मनोदशा उनके लिए प्रेम की कोमल स्थिति है। तभी तो वह लौकिक से आरंभ होकर अलौकिक प्रेम में तब्दील हो जाता है। अलौकिक प्रेम की यह संवेदना उन्हें सूफी काव्य के प्रेम चेतना से जोड़ता है, जिसमें प्रेमिका को ईश्वर का दर्जा दे दिया जाता है।

**बोध प्रश्न**

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-छह पंक्तियों में दीजिए-

(क) घनानंद की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

(ख) घनानंद की कविता में 'स्वच्छंद प्रेम दृष्टि' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए?

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

(ग) घनानंद के काव्य में व्यक्त सौंदर्य-चित्रण पर प्रकाश डालिए।

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

2. निम्नलिखित में सही (√) अथवा गलत (×) का चिह्न लगाकर उत्तर दीजिए।

(क) घनानंद रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। ( )

(क) घनानंद रीति निरूपण करने वाले कवि हैं। ( )

(क) 'वियोगबेलि' घनानंद की काव्य-कृति है। ( )

(घ) घनानंद अपने प्रेम को 'मौनमधि पुकार' कहते हैं। ( )

## 11.4 घनानंद के काव्य में लोक जीवन और भक्तिभावना

घनानंद के हृदय में वृंदावन का लोक समाया हुआ है। ब्रजभूमि की संस्कृति, कृष्ण की लीलाभूमि, गोकुल की लोक संस्कृति और वहाँ के जन-जन में व्याप्त प्रेम की व्याप्ति घनानंद को खूब भाई तभी तो उन्होंने 'ब्रज-व्यवहार', 'ब्रज-विलास', 'गोकुल-चरित्र', 'गोकुल-गीत', और 'गोकुल विनोद' जैसी काव्य रचनाओं में ब्रज की लोक संस्कृति की छटा बिखेरी है। 'कृष्ण-कौमुदी' में ब्रजलोक के नायक कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं तो 'यमुना-यश' में वह कृष्ण के नाम ब्रजवासियों की ओर से प्रेमपत्र लिखते हैं जिसमें कृष्ण को खूब ताने देते हैं। इस रचना में लोक के प्रेम और प्रतिरोध दोनों को देखा जा सकता है। 'राधा-कृष्ण' को केंद्रित कर 'सरस बसंत' नामक ग्रंथ में उन्होंने ब्रज के लता कुंजों, यमुना और वहाँ के लोक में रचे-बसे प्रेम और प्रकृति की अनोखी हवा का सुंदर वर्णन किया है :

बन बसंत बरनन मन फूल्यौ
लता-लता-झूलनि संग झूल्यौ।।
खगनि चुहक, पिक-कुहक सुहाई।
बन मनमय की फिरी दुहाई।
मलय -पवन-आगम सुखसार।
रोचक महा सुदेश सुठार।।
कुंजन के प्रकार बन्दु भाँति।
जमुना तीर बिराजति पाँति।
नव पल्लव दरपन-दुति दबै।
या बन की छवि या बन फवै।।

मूलतः प्रेम के कवि हैं घनानंद, लेकिन उनकी कविता में 'भक्ति-रस' भी कम नहीं है। जीवन के अंतिम दौर में वह भक्ति रचनाओं की ओर संलग्न हुए। दिल्ली दरबार से अपमानपूर्वक निकाले जाने और प्रेमिका सुजान द्वारा ठुकराए जाने पर उनके कविता में विरह की तीव्र अनुभूति फूटी और फिर भक्ति की ओर वह उन्मुख हुए। यों ऊपरी तौर पर उनकी कविता में 'शृंगार' और 'भक्ति' एक लगते हैं लेकिन विरह शृंगार से भक्ति की ओर वे क्रमशः बढ़ते हैं। विरह की आरंभिक कविताओं में विरह से दग्ध, प्रेम में डूबे प्रेमी की करुण पुकार है। धीरे-धीरे वह भक्ति में रूपांतरित हो जाती है। सुजान को ईश्वरीय दर्जा देकर वह 'राधाकृष्ण' की तरह उनको याद करते हैं। भक्ति का यह रूप 'दिव्य प्रेम' की अनुभूति कराने वाला है। रामदेव शुक्ल 'आनंदघन' पुस्तक में घनानंद की भक्ति के बारे में लिखते हैं, ''रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह शृंगार और भक्ति की खिचड़ी पकाने के स्थान पर आनंदघन ने अपना प्रेम-जीवन और भक्ति जीवन अलग-अलग रखकर दोनों को पूर्णता तक पहुँचाया है। इसी प्रकार प्रेम और भक्ति संबंधी उनकी रचनाओं के संसार भी अलग-अलग हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अपने शृंगार-भाव को आनंदघन किसी हीनता भाव या पाप बोध से नहीं जोड़ते। वे प्रकृत मनुष्य के स्तर पर उत्पन्न नैसर्गिक प्रेम को भी ईश्वरीय, अलौकिक और दिव्य प्रेम का ही अंश मानते हैं।''

घनानंद की कविता का केंद्र सुजान है। अंतिम समय में वह भक्तिपरक रचनाओं में राधा-कृष्ण को आधार बनाते हैं। आलोचकों का कहना है कि घनानंद विधिवत भक्ति संप्रदाय में दीक्षित हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वह निंबार्क संप्रदाय' में दीक्षित हुए तो लाला भगवानदीन का कहना है कि घनानंद 'सखी संप्रदाय' में दीक्षित हुए। यों घनानंद भले ही किसी संप्रदाय में दीक्षित हुए हों लेकिन उनकी कविता में व्यक्त उनकी स्वच्छंद और अलमस्त प्रवृत्ति इसके विपरीत लगती है। कहा जा सकता है कि संप्रदाय में दीक्षित

होते हुए भी वह अपनी कविता में उसका अनुसरण नहीं करते हैं वह उनके भक्ति में अनुस्यूत है। सुजान द्वारा उपेक्षित किए जाने पर वह लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख हुए। राधा-कृष्ण जिस दिव्य प्रेम के समुद्र में प्रेम का अवगाहन करते हैं। यह भक्ति का वह प्रेम है जिसमें एकनिष्ठता हो, उदारता हो, आत्मसमर्पण हो। ऐसा ही प्रेम है घनानंद का।

प्रेम की महोदधि अपार हेरि है, विचार
बापुरो हरि बार ही तें फिर आयो है
ताहीं एकरस हवै बिबस अवगाहै दोउ,
नेहि हरि राधा, जिन्हे देखे सरसायो है
ताकि कोऊ तरल तरंग संग छुटयौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमति उफनायो है
सोई घनआनंद सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायो है।

वैसे तो घनानंद का संपूर्ण रचनाओं में भक्तिपरक रस व्याप्त है लेकिन कुछ रचनाएँ भक्ति की दृष्टि से प्रमुख हैं इनमें 'प्रेम-पत्रिका' और 'पदावली' प्रमुख है। 'प्रेम पत्रिका' पढ़ते ही सूर के भ्रमरगीत का स्मरण हो आता है। सूर के भ्रमरगीत में गायिकाएँ कृष्ण के जाने के बाद कृष्ण की छवि, स्मृतियों से प्रेम करती हैं वही हाल घनानंद का है। सुजान द्वारा उनके प्यार को ठुकरा दिए जाने के बाद वह सुजान की स्मृति को प्यार करते हैं। अब वह ब्रजमंडल की भूमि और प्रकृति से प्रेम की अभिलाषा रखते हैं। 'पदावली' में उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम, लीला और जीवन की मोहक क्रीड़ाओं को चित्रित किया है। राधा-कृष्ण के प्रति उनकी प्रेम भक्ति विरल है। ब्रजमंडल और राधा-कृष्ण में उनका मन रमता है :

सहज सुगंध भाँति-भाँति भाव-फूल बिछे
सम रसरीति जानै केसरि को झोलना।
बिसद सुबास नाना विधि सो संवारि रच्यौ,
चौकस गुननि गस्यौ गूढ़ गाँठ खोलना।
राधा मनमोहन-विलास को सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठ बोलना।

'वियोग बेलि' और 'इश्कलता' जैसी उनकी रचनाओं में सूफी भक्ति भाव का प्रभाव है। वैसे आत्मा पुरुष और परमात्मा स्त्री का भाव तो घनानंद की कविता में मौजूद है। लेकिन घनानंद की भक्ति और प्रेम में इस सूफी भाव का अतिक्रमण भी है। वह 'इश्कमजाजी' से 'इश्कहकीकी' तक ही नहीं पहुँचते उसके पार भी जाते हैं। वह लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम से अलग नहीं करते, बल्कि उनकी भक्ति में लौकिक-अलौकिक प्रेम और भक्ति की आवाजाही होती रहती है। वे स्वच्छंद प्रेम के गायक हैं। अतः उनकी भक्ति में भी स्वच्छंद भक्ति का भाव है। स्वच्छंद प्रेमी और स्वच्छंद भक्ति के राही घनानंद जीवन भर बनी-बनाई लीक को तोड़ते रहे और नई राह सृजित करते रहे तभी तो वह कहते हैं, ''लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोंहि तो मेरे कबित्त बनावत''।

## 11.5 घनानंद की कविता का शिल्प पक्ष

घनानंद के समय ब्रजभाषा का विकास हो चुका था। घनानंद की काव्यभाषा में छंद और अलंकारों का प्रयोग भाषा की सर्जनात्मक शक्ति बढ़ाने वाला है, वह अलंकारों से चमत्कार नहीं पैदा करना चाहते उसको समृद्ध करना चाहते हैं।

### 11.5.1 काव्य भाषा

भाषा की संप्रेषणीयता पर बल देने वाले घनानंद ब्रजभाषा की मिठास, वक्रता और उसकी भाव व्यंजकता का भरपूर और सफल प्रयोग करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल घनानंद को काव्यभाषा की सामर्थ्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, ''इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलंभ श्रृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। ''प्रेम के पीर' को लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीरपथिक तथा जबांदानी का दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'' अतः इनके संबंध में निम्नलिखित पंक्ति बहुत ही संगत है-

नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद को जानै।
योग-वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै।।
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै
भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जू के कबित्त बखानै।।

घनानंद के समय जो ब्रजभाषा उन्हें प्राप्त हुई उसका विकास उन्होंने किया, उसमें कुछ जोड़ा उसे समृद्ध किया। कुछ उदाहरण- तद्भव देशज शब्द-बिवास, आंकू, सल, पैधक, बर न्यार; फारसी शब्दों में- निशान, मार, जान और हुस्न; संस्कृत शब्दों में- मीन, विध, नीर, लोचन जैसे उल्लेखनीय शब्दों का प्रयोग भाषा संबंधी उनके प्रयोगधर्मिता का परिचय देते हैं।

### 11.5.2 शब्द शक्ति

घनानंद की काव्यभाषा की यह विशेषता है कि उसमें अभिधा की जगह लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की अधिकता है। वैसे भी व्यंजना और लक्षणा से भरी भाषा को उत्तम कविता कहा जाता है। घनानंद की कविता में व्यंजना से अधिक लक्षणा का प्रयोग किया गया है। आचार्य रामचंद शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ में घनानंद के काव्य में लक्षणा के प्रयोग की प्रशंसा करते हुए लिखते भी हैं, ''लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिंदी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो हवा इनमें दिखाई पड़ी खेद है कि फिर वह पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्ध में अर्थात वर्तमान काल की नूतन काव्यधारा में ही, 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए हुए प्रगट हुई। घनानंद का प्रयोग वैचित्र्य दिखाने के लिए कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं-

(क) अरसानि गही वह बनि, सरसानि सो आनि निहोरत है।''

मुहावरों और लाक्षणिकता का सुंदर प्रयोग से वह कविता के भाव संप्रेषण को सामर्थ्यवान बनाते हैं। उनके द्वारा रचे गए प्रसिद्ध पद की ये काव्य पंक्तियाँ इसी की गवाही दे रही हैं-

तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो कहो, मन लेहु के देहुं छटांक नहीं।।

### 11.5.3 छंद एवं अलंकारों का प्रयोग

घनानंद कविता में छंद, अलंकार का विषय के अनुरूप प्रयोग करते हैं। वह अच्छे संगीतकार थे इस कारण उनकी कविता में छंदों और अलंकारों का सटीक प्रयोग किया गया है। घनानंद के काव्य में वैसे तो कवित्त, सवैय्या, त्रिलोकी, नाटक, निसानी, शोभन और त्रिभंगी का प्रयोग मिलता है लेकिन उनके प्रिय छंदो में कवित्त और सवैय्या है।

कविता के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए उन्होंने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों दोनों का प्रयोग किया है, लेकिन विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों में उनका मन अधिक रमा है। उपमा, अनुप्रास, असंगति और विरोधाभास उनके प्रिय अलंकार है जिनका प्रयोग बहुतायत में उनके काव्य में किया गया है।

**बोध प्रश्न**

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

5. घनानंद के काव्य में अभिव्यक्त भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

6. घनानंद की काव्य-भाषा की विशेषताएँ बताइए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

7. घनानंद अपनी कविता में किन अलंकारों और छंदों का प्रयोग करते हैं?

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

8. निम्नलिखित में रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

(क) घनानंद की काव्यभाषा ............................ है। (अवधी, ब्रज, बघेली)

(ख) घनानंद 'प्रेम के ................................. के कवि हैं। (पीर, उत्साह, संयोग)

(ग) घनानंद का प्रिय छंद कवित्त और ............................. है।
(त्रिभंगी, सवैया, त्रिलोकी)

(घ) घनानंद की कविता में श्रृंगार के ................................... का आधिक्य है।
(संयोग, करुण, वियोग)

## 11.6 घनानंद के काव्य का वाचन और व्याख्या

**1. अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नही।**
**तहाँ साँचे चलें तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।**
**घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तैं दूसरा आँक नहीं।**
**तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।**

**शब्दार्थ :**

सूधो- सरल; सीधा, सयानापन-चतुरता; बड़प्पन बाँक-टेढ़ा कुटिल; निसांक-बिना शंका के निःशंक; पाटी पढ़े-पट्‌टी पढ़ना या शिक्षा प्राप्त करना; मन-सेर या हृदय; छटाँक-सेर का सोलहवाँ भाग।

**प्रसंग :** 'प्रेम के पीर' के गायक घनानंद अपने इस पद में प्रेम मार्ग की निश्छलता और कठिनाई का वर्णन करते हैं। यहाँ प्रिया अपने प्रेमी को बता रही है कि प्रेम का मार्ग सरल और सहज है उसमें निष्कपटता आवश्यक है, कपट करने वाले इस मार्ग पर नहीं चल सकते।

**व्याख्या :** प्रिया अपने प्रिय को संबोधित कर कह रही है कि हे प्रिय सुनो प्रेम का स्नेह मार्ग का मार्ग सीधा -सरल है उसमें किसी सयानेपन अथवा सांसारिकता या दिखावेपन की आवश्यकता नहीं है। इस मार्ग पर वहीं प्रेमी जन चल सकते हैं जिन्होंने अपने अहंकार को, दंभ को, त्याग दिया है। जो कपटी है, शंकायुक्त है अर्थात् निःशंक नहीं है वह इस सीधे-सरल प्रेम मार्ग पर चलते झिझकते हैं। कारण ऐसे जन टेढ़े मार्ग पर चलने के आदती होते हैं सो सरल मार्ग पर चल नहीं सकते। प्रिया अपने प्रेमी को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हे सघन, गहरा आनंद देने वाले सुख देने वाले प्रिय, तुम सब कुछ जानते तो हो लेकिन तुम्हारी कथनी-करनी में भेद है। इसलिए हे प्यारे प्रिय सुजान सुनो कि इस धीर प्रेम के मार्ग में केवल एक अंक, एक ही रास्ता है, एक ही निश्चय है, दुसरा अंक या दूसरा मार्ग नहीं है। यहाँ काई चालाकी चल नहीं सकती। घनानंद कहते हैं कि वह मेरा प्रेमी बहुत ही चतुर है जो सबका मन ले लेता है पर अपना कुछ भी नहीं देता। क्या आप सिर्फ लेना जानते हैं देना नहीं। हे लला अथवा प्रेम क्रीड़ा के प्रेमी तुम कौन सी पाटी, या चतुरता का पाठ पढ़ लिया है कि दूसरे का सर्वस्व लेने के बाद अपना रंच मात्र भी देना नहीं चाहते। आपने मन तो ले लिया पर छटांक भी नहीं दिया यह सौदा तो ठीक नहीं। आपको तो हमने मन से हृदय से प्यार किया और आप हैं कि आप अपनी एक छटा या शोभा की एक झलक भी नहीं देना चाहते। यह तो प्रेम न हुआ।

**विशेष:**

(i) प्रेम मार्ग का विरल-विलक्षण चित्रण।

(ii) प्रेम में निष्कपटता का आग्रह।

(iii) 'परिवृत्ति' अलंकार। परिवृत्ति अर्थात् लेन-देन।

(iv) अंतिम 'पंक्तिमन' और 'छटांक' में श्लेष है 'मन' अर्थात् चालीस सेर और मन (चित्त) 'छटांक अर्थात् चालीस सेर का सोलहवां भाग और छटांक में छटा का अंक या झलक की भी व्याप्ति है।

(v) भाषा माधुर्य और वक्रता से भरी ब्रजभाषा।

2. **हीन भएं जलमीन अधीन, कहा कहु मो अकुलानि समानै।**
**नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।**
**प्रीत की रीति सु क्यौं समुझै जड़, मीत के पानि परै को प्रमानै।**
**या मन की जु दसा, घन आनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।**

**शब्दार्थ :**

| | |
|---|---|
| मीन- मछली। | हीन-छिछला, कमतर, छोटापन। |
| अकुलानि-तड़प, बेचैनी। | सनेही-प्रेमी। |
| कलंक-दाग। | कायर-डरपोक। |
| व्याघात-त्यागना, छोड़ना। | जड़-मंद बुद्धि, निष्ठुर। |
| मीत-प्रेमी, साथी। | प्रमाण-उदाहरण। |
| जु-जैसा, के समान। | |

**प्रसंग :** घनानंद रचनावली 'सुजानहित' के इस छंद में घनानंद या आनंद घन विरही की भाव दशा का सुंदर चित्रण करते हैं। इस प्रकार के छंदों में आश्रय रूप में स्त्री या पुरूष अथवा प्रेमी या प्रेमिका को मान लिया जाय तो भी अर्थबाधित नहीं होता।

**व्याख्या :** विरही प्रेमी अपने विरह से जलते हुए हृदय की तुलना मछली या मीन की तड़प से करता हुआ कहता है कि लोक में, संसार में मीन को इसलिए आदर्श प्रेमी माना जाता है क्योंकि जल से बाहर निकाले जाने पर वह तड़पकर अपनी जान दे देता है, लेकिन कवि का विरहाकुल प्रेमी मन लोक की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता और कहता है कि प्रेम के विरह से दग्ध होकर अपनी जान दे देना मीन के प्रेम की प्रगाढ़ता को नहीं प्रदर्शित करता बल्कि उसके छिछलेपन को दिखाता है। प्राण देकर प्रेम में मुक्ति पा लेने वाला हीन प्रेमी है। जो प्रेम में विरह को सहते हुए तड़पता है, वही असली प्रेमी है, इसकी तुलना जान देने वाले प्रेमी से कहाँ की जा सकती है। जल के वियोग में अपने प्राण त्याग देने वाला मीन अपने प्रेमी (जल) पर निष्ठुर होने का कलंक लगाता है जो उचित नहीं है। जल को नीरस नेही बना देता है। विरह की हर दशा को सहन कर सकने वाला प्रेमी कहता है कि मीन जल से अलग होकर इसलिए प्राण देता है क्योंकि वह कायर है। उसके भीतर प्रणय से उपजे दुःख और विरह को सहने की शक्ति नहीं है। प्रेम में आशा, विश्वास और साहस की आवश्यकता होती है जो जड़मति मीन के पास नहीं है, तभी तो वह विरह में अपनी जान तो ही देता है साथ ही प्रेमी जल के ऊपर नीरस और कठोर होने का आरोप भी लगा देता है। उसे कलंकित कर देता है। अपने प्राण त्याग कर मीन यह प्रमाणित कर देता है कि उसे प्रीति की रीति नहीं पता है। वह खुद तो मरता ही है प्रेमी को भी कलंकित कर देता है। वियोग से घबराकर, हारकर अपने प्राण त्याग देना यह तो प्रीति की रीति न हुई। यह तो प्रीति मार्ग की अनभिज्ञता है। यहाँ पर प्रेमी अपने विरह व्यथा की गंभीरता और उसको निरंतर सहते रहनें की बात करता है और कहता है कि जो संसारी लोग मीन को ही अपने प्रेम का आदर्श मानते हैं वह विरह की पीड़ा का अनुमान कैसे कर सकते हैं? यह स्वानुभूत का मामला है। विरह की इस असह्य किंतु दिव्य दुःख की अनुभूति करने वाला प्रेमी कहता है कि मेरे मन की अंतरदशा वह प्रेमी ही समझ सकता है जो मेरे प्राणों का प्राण है, जीवन का जीवन है। प्रिय तो सब कुछ जानता है, इसलिए मेरी पीड़ा को भी जान जाएगा।

**विशेष :**

(i) प्रेम के लोक-प्रसिद्ध आदर्श मीन के प्रेम और उसके प्राण-त्याग को घनानंद क्षुद्र और कमजोर घोषित करते हैं और प्रेम में विरह को सहते हुए जीवित रहने को प्रेम की उदात्त अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रेम का आदर्श अधिक संसारी और उदात्त है।

(ii) नीरस नेही में सभंग श्लेष है।

3. **घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ, जिहि भांतिन हौं दुख–सूल सहौं।**
**नहिं आवनि औधि न रांवरी आस, इतै पर एक सी बाट चहौं।**
**यह देखि अकारन मेरी दसा, कोउ बूझै तो ऊपर कौन कहौं।**
**जिय नेकु विचारि के देहु बताय, हहा पिय दूरितें पांय गहौं।**

**शब्दार्थ –**

इते-इतने पर भी,

अकारण-बिना कारण के

दूरितें-उतनी ही दूरी से

नेकु-थोड़ा या कुछ

**व्याख्या :** प्रिया का प्रिय के विरह में सहज जिज्ञासा का भाव है। प्रिय इतना निष्ठुर है, कि उसने अपने आने का न तो निश्चित समय तय किया है और न ही भविष्य में उसके आने की संभावना ही दीख रही है। फिर भी प्रेम का भाव इतना गहरा है कि प्रिया अपने उस निष्ठुर प्रेमी का निरंतर बाट जोह रही है। ऐसा देख आम जन के मन में यही विचार आता है कि इस तरह कोई किसी से कैसे प्रेम कर सकता है? अब प्रेम के इस आंतरिक भाव को प्रिया उन लोगों को कैसे बताए? अपने प्रेमी को उलाहना देते हुए कहती है कि यदि इस प्रेम के क्रिया–कलाप से प्रेमी को लगता है कि वह इस तरह अपने प्रेमी को बुलाना चाहती है तो वह निश्चिंत हो जाए कि आपको यहाँ (प्रेमिका के पास) आने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ प्रेम का वह भाव है जिसमें प्रेमिका, प्रेमी को ईश्वर का दर्जा देकर उसके भक्ति में लीन हो गई है, सो ऐसे में उसके भौतिक उपस्थिति की आवश्यकता नहीं, वह तो प्रेमिका के मन–मन्दिर में बस गया है।

4. **झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।**
**हँसि बोलन में छवि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति हवै।**
**लट लोल कपोल कलौल करै, कल कंठ बनी जलजावलि छवै।**
**अंग-अंग तरंग उठे दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।**

**प्रसंग :**

इस सवैये में कवि ने अपनी प्रिया ''सुजान'' के रूप सौंदर्य का स्वानुभूत वर्णन किया है।

**व्याख्या :**

कवि कहता है कि प्रिय (सुजान) का गोरा मुखड़ा इतना सुंदर है कि जिसे देख कर आँखें आश्चर्य से कानों तक खिंच जाती हैं। प्रिया जब बोलती है या हँसती है तो हृदय पर फूलों की वर्षा होने लगती है। उसके गाल पर बालों की एक लट ऐसी जान पड़ती है मानो वह गालों के साथ खेल रही हो। उसके गले में पड़ी मोतियों की दो लड़ी वाली माला उसके

सौंदर्य को और बढ़ा रही है। कवि प्रिया के सौंदर्य का चित्र खींचते हुए आगे कहता है कि उसके अंग–अंग से सौंदर्य फूट रहा है या उसके अंग–अंग से यौवन की उमंग की विद्युत उठ रही है। अर्थात् उसका सौंदर्य इतना मनोहर और चकाचौंध करने वाला है और ऐसा प्रतीत होता है मानो उसका रूप अभी धरती पर चू पड़ेगा अर्थात् उसकी प्रिया अति सुंदर है।

5. **तब तौ छवि पीवत जीवत है, अब सोचन लोचन, जात जरे।**
**हित–पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख–दोष भरे।**
**घन आनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख–साज–समाज टरे।**
**तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे।**

**शब्दार्थ :**

हित-प्रेम।

तोष-संतुष्टि, तुष्टि।

सु-भलीभाँति, विधिवत।

बिललात-व्याकुल हो रहे हैं, विरह दग्ध हो रहे हैं।

दोष-क्लेश, कष्ट।

टरे-हट गये।

हार-मोती की माला, कण्ठाहार।

विरह की असहनीय पीड़ा झेलते हुए विरहिणी प्रिया संयोग के क्षणों को याद करती है और अनुभूति करती है कि संयोग के क्षणों का पल जितना प्रगाढ़ होता है वियोग का क्षण उतना ही प्रतिकूल और असहनीय हो जाता है। संयोग में प्रेम करते समय प्रेमी युगल को हार पहाड़ की तरह लगते थे अब वियोग का पल पहाड़ जैसा हो गया जिसको पार कर पाना मुश्किल हो गया है।

## 11.7 सारांश

घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। वह स्वानुभूति प्रेम के स्वच्छंद भाव के कवि हैं। घनानंद का शृंगार और प्रेमवर्णन रीतिधारा की बँधी-बँधाई परिपाटी से अलग जीवन से निःसृत संवदेना है। घनानंद के प्रेम की प्रेरणा 'सुजान' हैं। इनकी कविता में संयोग का अवसर कम है, वियोग की, विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति की अधिकता है। स्वानुभूति प्रेम की इस गहन प्रेम अभिव्यक्ति को लक्षित करके आचार्य शुक्ल ने घनानंद के प्रेम को 'स्वच्छंद प्रेम' कहा है। सुजान से अलग होकर घनानंद के विरह की कविता में अलौकिक तत्त्व समाहित हो जाने से भक्ति की संवेदना की व्याप्ति है। घनानंद की कविता में विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, जिसके केंद्र में 'सुजान' है। भक्ति तो इसी विरह का सोपान है, जहाँ लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की यात्रा है। घनानंद पूर्णतया प्रेम के स्वच्छंद भाव के कवि हैं। उनके इस प्रेम-दृष्टि में सूफी कविता का प्रभाव है, ब्रजभाषा की काव्य परंपरा का भी प्रभाव है लेकिन घनानंद की कविता का केंद्र उनकी स्वानुभूति से जुड़ा है, जो बेहद मौलिक है, निजी है, प्रेम में विरह की विरल अनुभूति है। ब्रजभाषा का विकसित और निखरा रूप घनानंद की कविता की विशेषता है। कवित्त और सवैय्या उनके प्रिय छंद हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग घनानंद की कविता की शान हैं। घनानंद को

हिंदी काव्य-संस्कृति के स्वच्छंद भाव का प्रथम कवि कहा जाय तो गलत न होगा।



## 11.8 शब्दावली

**सूधो** : सीधा, सरल,

**बाँक** : सुंदर, तिरछा,

**नीके** : सुंदर, अच्छा,

**ललित** : मनोहर

**सयानप** : यानापन, प्रौढ़ता

आपनपौ : अपनापन।

**रसीली** : रस भरी, सुखदायी

## 11.9 उपयोगी पुस्तकें

1. घनानंद का काव्य - रामदेव शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. घनानंद और स्वच्छंद काव्य धारा - मनोहरलाल गौड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा
4. हिंदी साहित्य का अतीत भाग-2- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

## 11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए - भाग 11.2
   (ख) देखिए - भाग 11.3
   (ग) देखिए - भाग 11.3
2. (क) ×
   (ख) ×
   (ग) ✓
   (घ) ✓
3. देखिए - भाग 11.4
4. देखिए - भाग 11.5
5. देखिए - भाग 11.5
6. (क) ब्रज
   (ख) पीर
   (ग) सवैया
   (घ) वियोग

# इकाई 12 भूषण का काव्य

**इकाई का रूपरेखा**

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जीवन परिचय

12.3 भूषण की रचनाएँ

12.4 भूषण का युग बोध और ऐतिहासिक-चेतना

12.5 रीतिकालीन काव्य और भूषण का वीर-काव्य

12.5.1 रीतिकालीन वीर काव्य परिदृश्य में भूषण

12.5.2 भूषण के वीर काव्य में राष्ट्रीय भावना, प्रशस्ति-गान और नायकत्व की परिकल्पना

12.6 भूषण के काव्य की भाषा और शिल्प

12.6.1 भूषण की काव्य-भाषा

12.6.2 काव्य रूप, रस और अलंकार

12.7 रीतिकाल में भूषण-काव्य का महत्व

12.8 भूषण के काव्य का वाचन और व्याख्या

12.9 शब्दावली

12.10 सारांश

12.11 उपयोगी पुस्तकें

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 12.0 उद्देश्य

यह इकाई रीतिकालीन रीतिमुक्त कवि भूषण के काव्य पर आधारित है। भूषण ने वीर काव्य की रचना की है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रीतिकालीन कवि भूषण के जीवन और रचनाओं का परिचय दे सकेंगे;
- हिंदी कविता में वीरकाव्य की परंपरा का विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिकालीन वीरकाव्य की परंपरा में भूषण के काव्य का महत्व निर्धारित कर सकेंगे;
- वीरकाव्य के कवि के रूप में भूषण की कविताई का विवेचन कर सकेंगे;
- भूषण की कविता में राष्ट्रीय भावना और प्रशस्ति भावना के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे;
- भूषण के काव्य का शिल्प-पक्ष और काव्य भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- रीतिकालीन कविता में भूषण के कवि व्यक्तित्व और रचनाओं का महत्व बता सकेंगे।

## 12.1 प्रस्तावना

कवि भूषण रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवि हैं। रीतिकालीन कवियों में भूषण की कविताई विशिष्ट है। वीर काव्य परंपरा में भूषण की कविता को सबसे अधिक सराहा जाता है। उनकी कविता में वीरभाव और प्रशस्ति गान के उदात्त भाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। ; xqhu jkt uhfr d -सामाजिक और ऐतिहासिक घटनाओं का साहित्यिक प्रगटीकरण भूषण की कविता में हुआ है। छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल की प्रशस्ति में जो उन्होंने गान किया वह निर्मल और ओजपूर्ण वीरभाव की कविता का उदाहरण है। रीतिकालीन दरबारी संस्कृति का प्रभाव भूषण की कविता में भी है लेकिन वह एक रस नहीं है। ओज, आवेग और उदात्तता की विविध छवियाँ भूषण के काव्य की विशिष्टता है।

## 12.2 जीवन परिचय

रीतिकालीन कवि भूषण के जीवन और रचनाओं पर सर्वाधिक शोधपूर्ण कार्य मिश्र बन्धुओं ने किया है। इनके साथ ही भूषण के जीवन वृत्त के लिए इतिहास-ग्रंथों के साथ लोक की जनश्रुतियों को भी आधार बनाया गया है। मिश्रबन्धुओं ने 'भूषण-ग्रंथावली की भूमिका' में भूषण के जीवन पर प्रकाश डालते हुए भूषण के जन्म को सन् 1614 के आस-पास माना है। भूषण का जन्मस्थान तिकवांपुर (त्रिविक्रमपुर) था। भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर था। रीतिकालीन कवियों पर शोध करने वाले आलोचकों और इतिहासकारों में पं. कृष्ण बिहारी मिश्र, भगीरथ मिश्र और पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीति कवि मतिराम, चिंतामणि और भूषण को सगा भाई मानते हैं। भूषण के वास्तविक नाम पर इतिहासकारों में मत मतान्तर है। लेकिन उनको 'भूषण' की उपाधि चित्रकूट नरेश ने दिया इस बात को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। खुद कवि के कथन से यह बात प्रमाणित होती है-

> ''कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहसी-सील-समुद्र।
> कवि 'भूषन' पदवी दई, हृदैराम सुत रुद्र।।''

भूषण के जीवन को लेकर कई दिलचस्प कथाएँ हैं। एक कथा है जिसमें वह अपनी भाभी के द्वारा ताना मारे जाने से क्षुब्ध होकर घर छोड़कर चले गये दूसरी कथा भूषण की पत्नी को लेकर है जिसमें किसी पूजा में उनकी भाभी ने उनकी पत्नी के बहाने उन पर ताना मारा तो नाराज़ होकर वह दक्षिण चले गये; वहाँ उनकी भेंट शिवाजी से हुई। शिवाजी ने अपनी प्रशस्ति में भूषण द्वारा सुनाए गए कवित्त से इतने प्रसन्न हुए उनको ढेर सारा भेंट प्रदान किया है। कहते हैं- कि भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में 52 कवित्त सुनाया सो शिवाजी ने उन्हें 52 लाख रुपये, 52 हाथी और 52 गाँव पुरस्कार स्वरूप दिया। 52 हाथियों की प्राप्ति का उल्लेख तो कवि लोकनाथ ने भी किया है-

> ''भूषण निवाज्यो जैसे सिवा महाराजजू ने
> बारन दै बावन धरा पै जस हाय है।''

संभवतः संवत 1724 में भूषण रायगढ़ गए और छः वर्ष तक शिवाजी के आश्रय में समय बिताया। यहीं पर संवत 1730 में उन्होंने 'शिवभूषण' अथवा 'शिवराज भूषण' की रचना की। शिवाजी के दरबार से लौटने के बाद वह अन्य दरबारों में गए जिनमें छत्रसाल का नाम प्रमुख है जिनका प्रशस्ति गान भूषण की कविता में है। भूषण के काव्य में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि वह शिवाजी के समसामायिक थे। साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि भूषण की मृत्यु 1707 ई. से 1730 के बीच हुई। भूषण को देश भ्रमण प्रिय था। अनेक राजाओं से उनकी भेंट हुई इसका संकेत उनके इस कवित्त से भी होता है-

**मौरंग जाहु कि जाहु कुमाहु कि श्रीनगरै हु कवित्त बनाये।**
**बांधव जाहु कि जाहु अमेर कि जोधपुरें कि चित्तौरहिं धाये।**
**जाहु कुतुत्त की ए-दिल पै दिली सहु पै किन जाहु बुलाये।**
**भूषण ह्वै हों निहाल मही, गढ़पाल सिवाही की कीरति गाये।।**

## 12.3 भूषण की रचनाएँ

भूषण की एकमात्र प्रामाणिक रचना 'शिवभूषण' या 'शिवराज भूषण' है। 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' संपादकों द्वारा संगृहीत किया गया। ये दोनों ग्रंथ भूषण के मौलिक स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं हैं। भूषण पर शोध करने वाले विद्वानों में मिश्रबन्धुओं, बाबू ब्रजरत्नदास, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डाक्टर टीकम सिंह तोमर ने भूषण के प्रसिद्ध ग्रंथ 'शिवभूषण' का रचनाकाल संवत 1730 माना है। इस संदर्भ में शिवभूषण की प्रति में लिखे इस दोहे को आधार बनाया गया है।

''सम सत्रह सैंतीह (1730) पर सुचि बदि तेरसि भान।
भूषन सिवभूषन कियो, पढियों सुनो सुजान।।''

'शिवभूषण' की रचना शिवाजी के प्रश्रय में उनके प्रशस्ति गान के रूप में हुई भूषण इस रचना में लिखते हैं-

''देसनिं देसनि तें गुनी आवत जाचन ताहि
तिनमें आयौं एक कवि भूषन कहिए जाहि।।''

साहित्येतिहास ग्रंथों और अन्य स्रोतों के माध्यम से भूषण की जिन रचनाओं का उल्लेख मिलता है उनके नाम हैं-

1. शिवराज भूषण अथवा शिवभूषण
2. भूषण हजारा
3. भूषण उल्लास
4. दूषण उल्लास
5. शिवा बावनी
6. छत्रसाल दशक

इसके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं ने 'भूषण ग्रंथावली' में 'स्फुटकाव्य' शीर्षक से 54 पदों का संग्रह किया है। इनमें 'शिवराजभूषण' एकमात्र प्रामाणिक और भूषण की सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'शिवराजभूषण' के आरम्भ में गणेश जी की वंदना है फिर भवानी की स्तुति है। शिवाजी के पूर्वजों का परिचय है। शिवाजी के वीरभाव का प्रशस्ति गान है। कवि ने अंतिम अंशों में इस ग्रंथ की रचना के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला है-

सुकविन सों सुनि-सुनि कहुक
समुझि कबिन कौ पन्थ।
भूषन भूषन मय करत, सिव भूषन
सुभ ग्रंथ।।

## 12.4 भूषण का युग बोध और ऐतिहासिक चेतना

भूषण का समय उत्तरमध्यकाल का था। इस युग में मुगल बादशाह औरंगजेब का शासन था। दक्षिण के अस्थिर वातावरण में मराठों का शासन था। भूषण की सबसे प्रामाणिक

रचना 'शिवराजभूषण' में मुगल बादशाह औरंगजेब की तीखी आलोचना है और मराठा शासक शिवाजी की वीरता का प्रशस्तिगान है। वीर भाव की कविता होने के कारण भूषण के काव्य में चमत्कार खूब है लेकिन ऐतिहासिक तथ्य भी यहाँ कम नहीं हैं। इनकी कविता में शिवाजी नायक हैं तो औरंगजेब खलनायक। भूषण के काव्य में जहाँ औरंगजेब की अनीति का विरोध है वहीं मुगल बादशाह बाबर-अकबर की प्रशंसा है। भूषण शिवाजी के जिस साम्राज्य का चित्रण करते हैं उसमें आदर्श की अधिकता है लेकिन यथार्थ का अंश भी विद्यमान है। भूषण के काव्य में जो इतिहास है वह काल-क्रम से भले न हो उनमें उस युग के इतिहास की अनेक उल्लेखनीय घटनाएँ दर्ज हैं। भूषण के काव्य नायक शिवाजी हैं इसलिए शिवाजी से सम्बन्धित घटनाओं का जिक्र अधिक प्रामाणिक है। अफज़ल खान वध, शिवाजी की औरंगजेब से भेंट और साल्हेर के युद्ध का जीवन्त इतिहास भूषण की रचनाओं में दर्ज है। शिवाजी के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक दस्तावेज में 'शिवराज भूषण' एक प्रमुख कृति है। भूषण का काव्य शुद्ध वीर काव्य की श्रेणी में रखा जाता है जिसके नायक इतिहास प्रसिद्ध नायक शिवाजी और 'छत्रसाल' जैसे वीर शासक है। भूषण को हिन्दू जातीय चेतना का कवि कहना युक्तिसंगत होगा। शिवाजी के शासन और युगीन घटनाओं के द्वारा वह एक आदर्श राज्य की परिकल्पना करते हैं-

अतिमतवारे जहां दुरदै निहायरतु,
तुरगनहीं मैं चंचलाई परकीति है
भूषन भनत जहां पर लगैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहि माहि माहिं बिहुरन रीति है।

भूषण अपने समय की कई प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करते हैं। भारत का भौगोलिक ज्ञान भी उन्हें था। खुद उन्होंने एक वीर योद्धा की तरह उत्तर और दक्षिण की कई यात्राएँ कीं। स्पष्टवादी और साहसी व्यक्तित्व के धनी भूषण ने मुगल बादशाह औरंगजेब की जन विरोधी नीतियों का प्रतिरोध किया। भूषण को वीरकवि के साथ इतिहासकार कवि के रूप में भी याद किया जाना चाहिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

**बोध प्रश्न 1**

1. निम्नलिखित प्रश्नों का पांच पंक्तियों मे उत्तर दीजिए-

(क) भूषण की प्रमुख रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

(ख) भूषण के काव्य का युगीन परिवेश बताइए।

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

.........................................................................................

2. निम्नलिखित प्रश्नो में सही और गलत का चिन्ह लगाइए-

   (क) भूषण की प्रमुख रचना का नाम 'शिवराजभूषण' है। (सही / गलत)

   (ख) भूषण रीतिकालीन श्रृंगारिक परंपरा के प्रमुख कवि हैं। (सही / गलत)

   (ग) भूषण के समकालीन मुगल शासक 'औरंगजेब' थे। (सही / गलत)

   (घ) भूषण की मुख्य काव्य भाषा ब्रज है। (सही / गलत)

## 12.5 रीतिकालीन काव्य परिदृश्य और भूषण का वीर काव्य

भूषण जिस युग के कवि हैं, वह दौर श्रृगार रस का था। भूषण ने अपनी कविता में रीतिकालीन कविता का स्वर बदला। रीतिकालीन काव्य परिदृश्य में आचार्यत्व और श्रृंगारिकता की दृष्टि से भूषण के काव्य का उतना महत्व नहीं है जितना कि वीरभाव की कविता का। उनके प्रमुख ग्रंथ 'शिवराजभूषण' में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का निरूपण है लेकिन यह विवेचना उनके भाई मतिराम की रचना ललित-ललाम से प्रभावित है। वीररस उनकी कविता का केन्द्रीय भाव है यों उन्होंने रौद्र, वीभत्स और भयानक रस का भी चित्रण किया है।

### 12.5.1 रीतिकालीन वीरकाव्य परिदृश्य में भूषण

वीरकाव्य का संबंध प्रायः युग की यथार्थ पृभठभूमि से होता है। वीरकाव्यों में नायक युग संदर्भ में गढ़े जाते हैं। युग की हलचलों से सम्बन्धित नायकों को लेकर ही प्रायः वीरकाव्यों की रचनाएँ हुई हैं। भारतीय ही नहीं विश्व की अधिकांश भाषा का काव्य-इतिहास वीरभाव की कविता से भरा है। हिंदी में आदिकाल की अधिकांश रचनाएँ पृथ्वीराज रासो और परमालरासो का केन्द्रीय रस वीर ही है। यों आदिकालीन कवियों और रीतिकालीन कवि भूषण के वीर भाव की कविता के यथार्थ चित्रण में अन्तर है। आदिकालीन कवियों की रचनाओं के नायकों का अपने युग के यथार्थ से वैसा रिश्ता नहीं रहा जैसा कि भूषण के काव्य नायक शिवाजी का था। रीतिकाल में भूषण के वीरभाव की कविता का प्रभाव युगीन काव्य परिदृश्य पर भी पड़ा महाकवि भूषण के प्रभाव का विवेचन करते हुए भागीरथ दीक्षित ने लिखा है कि, ''इस महाकवि के प्रभाव से गोरेलाल, रतन, सदानन्द, भूधर, सारंग, नाथ आदि वीर रस के उत्कृष्ट कवियों का आविर्भाव हुआ था। यहाँ तक कि राजा भगवन्त राय खींची जैसे महानुभाव भी शासन की महत्ता बढ़ाने के साथ उच्चकोटि की वीररसमयी कविता करते दृष्टि गोचर होते हैं।''

भूषण के काव्य में युगीन सांस्कृतिक चेतना के साथ राजनीतिक-सामाजिक और ऐतिहासिक चेतना का भाव भी है। मध्यकाल में राजनीतिक रूप से सामाजिक समरसता की भावना को जाग्रत करने का काम अकबर ने किया तो कबीर ने साहित्यिक-सामाजिक तौर पर युगीन धार्मिक आडम्बर का विरोध किया। भूषण की कविता में इनका स्पष्ट प्रभाव है। भूषण ने अपने युगीन मुगल बादशाह औरंगजेब की जन-विरोधी नीतियों का मुखर विरोध किया। शिवाजी और औरंगजेब की भेंट का वर्णन भूषण के इसी वीर भाव की चेतना को प्रगट करता है। औरंगजेब के समक्ष शिवाजी के अनादर से शिवाजी के क्रोध और प्रतिरोध को भूषण ने मार्मिक ढंग से लिखा है।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,<br>
ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे।<br>
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मन,

कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमकतें लाल मुख सिवा के निरख भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह-मुख पियरे।।

### 12.5.2 भूषण के वीर काव्य में राष्ट्रीय भावना, प्रशस्ति-गान और नायकत्व की परिकल्पना

भूषण के काव्य को राष्ट्रीय काव्य कहा जाय या नहीं इस प्रश्न पर विचार करने से पहले राष्ट्रीय साहित्य की अवधारणा को समझना अनिवार्य है। साहित्यकोश के अनुसार राष्ट्रीयता की अवधारणा इस प्रकार है, ''सब समस्त साहित्य राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है जो किसी देश की जातीय विशेषताओं का परिचायक हो। इस प्रकार के साहित्य में जाति के समस्त रागात्मक स्वरूप, उसके उत्थान आदि का विवरण आ सकता है। इसका होना एक प्रकार से अनिवार्य ही है।'' इस अवधारणा के आलोक में भूषण को 'हिन्दू संस्कृति का जातीय कवि' कहना अधिक प्रासंगिक होगा इसके उदाहरण स्वरूप भूषण के काव्य मे अनेक पंक्तियाँ है। जैसे कि-

काज मही सिवराज बली हिन्दुवान बढ़ाइबे को ऊर उटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जुटै।।
हिन्दू बचाय-बचाय यही अमरेस चंदावत लौं कोई टूटे।
चन्द अलोक है लोक सुखी, यहि कोक उभागे को सोक न छूटै।।

भूषण के दौर में भारत कई छोटे राज्यों में विभक्त था। केन्द्रीय प्रशासन मुगलों का होने के बावजूद सम्पूर्ण भारत की आस्था उस केन्द्र के प्रति न थी। बृहद राष्ट्रीय चेतना की जैसी परिकल्पना ब्रिटिश राज्य में थी वैसी मुगल काल में नही थी। भूषण द्वारा शिवाजी की प्रशंसा को हिन्दू जातीय रक्षा के या जातीय चेतना का प्रतिफलन कहना अधिक प्रासंगिक होगा। ब्रजरत्नदास के इस कथन से भी यह बात प्रमाणित होती है, ''भूषण की कविता में जातीयता की भावना सर्वत्र व्याप्त है और वह तत्कालीन वातावरण तथा हिन्दुओं की मानसिक अवस्था की सच्ची परिचायक है। भूषण हिन्दुओं के प्रतिनिधि कवि हैं।'' भूषण के काव्य की इसी विशेषता की ओर हिंदी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास में संकेत करते हैं। यों भूषण की कविता में हिन्दू जातीयता का उदार और उदात्त भाव मे संकेत हुआ है क्योंकि उन्होने मुगल शासक अकबर की सामाजिक धार्मिक समरसता की खुलकर प्रशंसा की है। इस संदर्भ में भूषण को हिन्दू परंपरा की उदात्त जातीय चेतना का कवि कहना प्रासंगिक होगा लेकिन राष्ट्रीयता के व्यापक-बोध के आलोक में राष्ट्रीय कवि कहना भी कहा जा सकता है।

भूषण के काव्य में शिवाजी की प्रशस्ति है लेकिन वह संकीर्ण प्रशस्ति गान नही हैं। भूषण ने अपनी कविता में शिवाजी को युग-पुरुष के रूप में मान कर उनकी वीरता का प्रशस्ति-गान किया है। उन्होंने छत्रपति शिवाजी को ऐतिहासिक वीर नायक की तरह प्रस्तुत किया है। रीतिकाल के जिस परिदृश्य में भूषण ने प्रशस्ति गान लिखा है। उस दौर के बहुत से कवि मात्र अर्थ धन प्राप्ति के हेतु से राज या काव्य-नायक की प्रशंसा करते हैं जबकि भूषण का हेतु अर्थ प्राप्ति नहीं अपने काव्य-नायक छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल के वीर भाव और उदात्त कर्मो का वर्णन करना था। इस आलोक में भूषण का वीर काव्य 'शुद्ध वीर काव्य' की श्रेणी में रखा जा सकता है।

भूषण के वीर काव्य के नायक शिवाजी हैं। वह अपने युग की वीरता, ओज और शौर्य का प्रतिनिधित्व करने वाले काव्य-नायक हैं। भूषण के काव्य-नायक छत्रपति शिवाजी एक ओर अपने युग के उदात्त भावों को समाहित करते है वही भूषण उनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के वाहक की छवि भी तलाशते हैं। भूषण ने शिवाजी की तुलना भारत के उन नायकों से की है जिन्होने अपने समय की अमानवीय भाक्तियों का दमन कर अपनी श्रेष्ठता का और वीरता का परिचय दिया है। भूषण को शिवाजी के चरित्र में राम और कृष्ण का चरित्र दिखाई देता है-

दारून दहत हरना कुस बिदारिबे कौं,
भयो नर सिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यौं ही रावन के मारिबे कों,
रामचन्द्र भयौं रघुकुल-सरदार हैं।।
कंस के कुटिल बल-बसन बिध सिबे कौं,
भयो जटुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथ्वी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे कौं तेरो अवतार है।।

शिवाजी के चरित्र में भूषण ने जिस उदात्तता और व्यापकता का चित्रण किया है वह आदिकालीन राजपूत नायकों के वीर-चरित्र में नही हैं। शिवाजी के चरित्र की विशेषता को लक्षित करते हुए यदुनाथ सरकार और राजबली पांडेय जैसे इतिहासकारो ने भी अपने इतिहास-लेखन में उनकी प्रशंसा की है। भूषण ने शिवाजी के चरित्र के इन्ही उदात्त गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है-

राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन-गुनी में।
रज-लाज राजत आज है महाराज,
श्री सिवराज में।

वीरता का जो आदर्श भूषण ने अपनी कविता में शिवाजी के चरित्र मे सृजित किया है वह आज भी प्रासंगिक है।

## 12.6 भूषण के काव्य की भाषा और शिल्प

भूषण की रचनाओं में 'शिवराज भूषण' ही मात्र एक प्रामाणिक रचना है। 'छत्रसाल दशक' और 'शिवाबावनी' उनके फुटकर छंदों का संग्रह है। रीतिकालीन काव्य-परिदृश्य का अनुसरण करते हुए भूषण ने अपना काव्य लेखन तो किया है लेकिन वह उसका पूरी तरह से अनुसरण नहीं करते अतिक्रमण भी करते हैं और यही विशेषता उनके कविता की और काव्य-कला को विशिष्टता प्रदान करती है।

### 12.6.1 भूषण की काव्य भाषा

भूषण ने रीतिकालीन ब्रज भाषा को अपनी मौलिकता से समृद्ध किया। चूँकि भूषण यायावर प्रवृत्ति के थे इसलिए उनकी भाषा में अनेक बोलियों का सम्मिश्रण भी दिखाई देता है। उनकी ब्रज-भाषा में खड़ी बोली का यह मिश्रण रीतिकालीन कविता में विरल है। इस संदर्भ में भूषण की कविता का उदाहरण देखते हैं :

तेरो करवाल भयो जगत कौं ढाल अब,
सोई हाल म्लेच्छन के कालकौं करतु है।

ब्रज भाषा में अन्य बोलियों के पुट से भूषण की काव्य भाषा विशिष्ट बन पड़ी है। उनके काव्य-भाषा की इसी विशेषता को लक्षित करते हुए जगदीश गुप्त 'रीतिकाल' पुस्तक मे लिखते हैं,'' भाषा की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है। जिस ब्रजभाषा के सहज गुण कोमलता तथा मधुरता ही रहे हैं उसको उन्होंने सफलता के साथ ओजस्विता और पौरुष प्रदान किया। अवधी, बुंदेली और फारसी शब्दावली का मिश्रण स्थान-स्थान पर मिलता है। कहीं-कहीं पूरे का पूरा छंद खड़ीबोली में लिखा हुआ लगता है। कृत्रिम रूप से अपभ्रं ा का आभास देने का प्रयत्न भी उन्होंने किया है। कदाचित् उस युग के वीर रस के कवियो मे ऐसी परिपाटी प्रचलित रही होगी क्योंकि ब्रजभाषा की वीररस की कविता अपभ्रंश की अनुवर्तिनी है।''

लोक प्रचलित अधिकाधिक शब्दों के प्रयोग के कारण भूषण की कविताई की भाषा जीवंत है। ब्रजभाषा को जिन कवियों ने अपनी कविताई से समृद्ध और विकसित किया उसमें भूषण का नाम अग्रगण्य है। अरबी-फारसी के मिश्रण और खड़ी बोली के साथ मिलाकर ब्रजभाषा को नया रूप प्रदान करने का काम भूषण ने बड़ी सफलता के साथ किया। परिवेश के साथ भाषा का निर्माण करते हुए उन्होने अपने काव्य नायकों शिवाजी (मराठी) और छत्रसाल (बुंदेली) के स्थानीय बोली-बानी को मिलाकर अपनी काव्य-भाषा का निर्माण किया।

## 12.6.2 काव्य रूप, रस और अलंकार

भूषण के काव्य-शिल्प का आधार 'शिवराज भूषण' है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक नायक शिवाजी के प्रशस्ति गान पर आधारित इस ग्रंथ मे रीतिबद्ध काव्य रूप और वीर-भाव की परंपरा का अनुसरण किया गया है। 'शिवराज भूषण' को अलंकार प्रधान ग्रंथों की परंपरा में गिना जाता है। लक्षण उदाहरण परंपरा का अनुसरण तो किया है लेकिन प्रायः वह इस सीमा मे बंधकर नहीं चल पाते। जहाँ वह स्वाभाविक गति से अलंकार योजना करते हैं वह अलंकार योजना अधिक मौलिक और सर्जनात्मक है। शब्दालंकार और अर्था लंकार दोनो की योजना उनके ग्रंथ में है।

भूषण वीर भाव के कवि हैं सो उन्हे 'वीररस' सर्वाधिक पसंद हैं। यों उन्होंने वीरता के सभी रूपो का चित्रण किया है लेकिन 'युद्ध वीर' स्वरूप के चित्रण में उनका मन अधिक रमा है। युद्धवीर का उदाहरण-

उमड़ि कुडाल मैं खवास खान आये भति,<br>
भूषण त्यों धाये सिवराज पूरे मन के।<br>
सुनि मरदाने बजे हय हिहनाते घोर,<br>
मुद्दैं तररानें मुख वीर धीरजन के।।

वीररस का श्रृंगार रस से सह संबंध है अतः उसका वर्णन भी भूषण ने किया है। युद्ध का चित्रण करते हुए भयानक और रौद्र रस का चित्रण आना स्वाभाविक है। वैसे भूषण श्रृंगार संबंधी छंदों में भी युद्ध के रूपक अधिक प्रयोग करते हैं।

युद्ध वर्णन में छंद का ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और साथ ही उपमा अंलकार का सजीव चित्रण भूषण की इस कविता में देखा जा सकता है-

साजि चतुरंग वीर रंग मे तुरंग चढ़ि<br>
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।<br>
'भूषण' भनत नाद विहद नगारन के,<br>
नदी, नद मद गैबरन के रलत है।।

ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उलसत है।
तरा से तरनि धूरि धारा मे लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।''

## 12.7 रीतिकाल में भूषण-काव्य का महत्व

भूषण और उनके काव्य का आज भी क्या महत्व है अथवा वह आज भी प्रासंगिक काव्य है या नही? तो इसका उत्तर हाँ में ही होगा। भूषण की कविता की कई विशेषताएँ उन्हे रीतिकालीन कवियों में विरल कवि का दर्जा प्रदान करती हैं और हिंदी कविता की प्रदीर्घ काव्य-यात्रा में भूषण के काव्य का निजत्व उनको महत्वपूर्ण कवि की पहचान देता है। पहला तो भूषण का काव्य समसामयिक और ऐतिहासिक चेतना को स्थापित करता है। शिवाजी के प्रशस्तिगान के आलोक में वह उस युग की कई ऐतिहासिक घटनाओं का साहित्यिक रूपान्तरण करते नजर आते हैं। शिवाजी के व्यक्तित्व की प्रासंगिकता के बढ़ने के साथ ही भूषण के काव्य की प्रासंगिकता भी बढ़ी है।

भूषण की कविता आचार्यत्व की जगह वीरता, ओज और उदात्त मूल्यों के लिए याद की जाती है। अपने दौर की हर अमानवीय और जनविरोधी घटनाओं का उन्होने मुखर विरोध किया यहाँ तक कि उस युग में मुगल बादशाह औरंगजेब की गलत नीतियों का उन्होंने अपनी कविता द्वारा प्रतिकार किया। उनके वीरभाव की कविता में सिर्फ आवेग और ओज नहीं है उसका ऐतिहासिक और समसामयिक महत्व भी है। प्रतिरोध की मुखरता उनकी कविता का केन्द्रीय गुण है। पारम्परिक और ऐतिहासिक संदर्भों के साथ प्रयोग भी भूषण के काव्य को महत्वपूर्ण का बनाता है।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

**बोध प्रश्न**

3. निम्न लिखित प्रश्नों का दिए गए निर्देशों के आधार पर उत्तर दीजिए।

   क) वीर कवि के रूप में भूषण के काव्य की पाँच विशेषताएँ बताइए।

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ख) भूषण के काव्य-शिल्प की विशेषताएँ बताइए। (लगभग 8 पंक्तियों में)

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

ग) भूषण के काव्य में राष्ट्रीय चेतना अथवा जातीय चेतना के भाव पर विचार व्यक्त कीजिए। (लगभग 10 पंक्तियों में)

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

4. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) भूषण की कविता ................................ और .............................. मूल्यों के लिए याद की जाती है।

ii) भूषण की रचनाओं में .................................. ही एकमात्र प्रामाणिक रचना है।

iii) भूषण ने ........................................ और .......................... की कई यात्राएँ की थीं।

iv) भूषण की काव्य भाषा में ब्रज भाषा के साथ ..................... का भी पुष्ट है।

## 12.8 भूषण के काव्य का वाचन और व्याख्या

1. **इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सुअ ंभ पर।**
**रावन संदभ पर, रघुकुल राज है।।**
**पौन बारिबाहपर, संभु रतिनाहपर।**
**ज्यो सहस्रबाहु पर, राम द्विजराज है।।**
**दावा द्रुमदंड पर, चीता मृग झुंड पर।**
**भूषण वितुंड पर, जैसे मृगराज है।।**
**तेजतम अंस पर, कान्हजिमि कंस पर।**
**त्यों म्लेच्छ बंस पर,शेर सिवराज है।।**

### संदर्भ एवं प्रसंग

'शिवराज भूषण' नामक काव्य-ग्रन्थ में उद्धृत इस छन्द के रचयिता रीतिकाल के महत्वपूर्ण वीर-भाव के कवि 'भूषण' हैं। इन पंक्तियों में कवि अपने काव्य नायक शिवाजी की युद्ध वीरता का ओज पूर्ण चित्रण करता है।

### व्याख्या

भूषण अपने काव्य नायक शिवाजी के युद्ध वीरता की प्रशंसा करते हैं। शिवाजी की तुलना पौराणिक और ऐतिहासिक काव्य नायकों से करते हुए भूषण का लिखना है कि जिस प्रकार जंभासुर पर इन्द्र, भारी पड़ते हैं, समुद्र पर बड़वानल का प्रभाव होता है। रावण के दंभ पर

जैसे रघुकुल शिरोमणि राम ने प्रहार कर उसको पराजित किया। बादलों पर पवन का प्रभाव पड़ता है और वह छँट जाते हैं। रति के पति कामदेव पर शंभु अर्थात शिव का कोप भारी पड़ता है, सहस्रबाहु पर ब्राह्मणों के राम अर्थात परशुराम भारी पड़ते है। पेड़ों के तनो को दावानल भस्म कर देता है। हिरणों के झुंड पर काल बनकर चीता धावा बोलता है हाथी पर शेर और अंधेरे पर प्रकाश की एक किरण भारी पड़ती है। कंस पर कृष्ण भारी पड़ते है उसी प्रकार (मुगल) वंश पर वीर शिवाजी शेर के समान आक्रमण करते हैं और म्लेच्छों के दंभ को पराजित करते हैं।

**काव्य सौन्दर्य**

यह कविता वीर रस का सुन्दर उदाहरण है। उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर संयोजन है और ऐतिहासिक वर्णन है। ब्रज भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग। यह भूषण की सर्वाधिक प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं जिनमें युद्ध वीरता का चित्रण है।

**इन अंशों की व्याख्या संदर्भ सहित स्वयं करने का प्रयास कीजिए।**

2. **साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,**
**सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत हैं।**
**'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के**
**नदी-नद मद गब्बरन के रलत हैं।।**
**ऐल-फैल खैल-भैल खलक मैं गैल-गैल,**
**गजन की ठेल-पेल सैल उलसत हैं।**
**तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,**
**थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं।।**

3. **ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,**
**ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।**
**कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करै ं,**
**तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं।।**
**भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,**
**बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं।।**
**'भूषन' भनत शिवराज बीर तेरे त्रास,**
**नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं।।**

## 12.9 शब्दावली

- प्रशस्ति – प्रशंसा
- उदात्त – व्यापक, उदार भाव
- सरदार – मालिक

- कुटिल – टेढ़ा, कुत्सित
- अनुसरण – पीछे चलना
- अग्रगण्य – सबसे आगे

## 12.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद निम्न बातें स्पष्ट होती हैं-

- भूषण उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) के कवि हैं।
- वीर-भाव भूषण के काव्य का केन्द्रीय भाव है।
- 'शिवराज भूषण' भूषण की प्रमुख रचना है।
- भूषण राष्ट्रीय भावना के साथ हिन्दू-जातीय चेतना के कवि हैं।
- भूषण की कविता में ऐतिहासिकता का तत्व है।
- भूषण वीर भाव की उदात्त-चेतना के कवि हैं।
- भूषण की काव्य-भाषा में ब्रज के साथ अन्य बोलियों का मिश्रण है।

## 12.11 उपयोगी पुस्तकें


- हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभी काशी से प्रकाशित।
- भूषण : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत 2010।
- भूषण ग्रंथावली : मिश्र बंधु, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सप्तम संस्करण, संवत 2015।
- भूषण विमर्श : भगीरथ प्रसाद दीक्षित, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ।
- रीतिकाव्य : जगदीश गुप्त, वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- रीतिकाव्य : मूल्यांकन के नये आयाम, सम्पादक : प्रभाकर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016।


## 12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क) देखिए 12.3

   ख) देखिए 12.4

2. क) सही

   ख) गलत

   ग) सही

   घ) सही

3. क) देखिए 12.5.1

   ख) देखिए 12.5.6

   ग) देखिए 12.5.2

4. i) वीरता, ओज, उदात्त

   ii) शिवराज भूषण

   iii) उत्तर, दक्षिण

   iv) अन्य बोलियों

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# Notes

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# Notes

MPDD/IGNOU/P.O. 63K/December, 2019

BHDC - 132

मध्यकालीन हिंदी कविता (खंड 1 और 2)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

ISBN : 978-93-89668-62-9